पूर्णकुंभ

रानी चद

अनुवादक

हसकुमार तिवारी



नेशनल बुक ट्रस्ट, इडिया, नयी दिल्ली

1975 (शक 1896)

द्वितीय सस्करण 1985 (शाक 1907)

मूल बागला   रानी चद
हिंदी अनुवाद   नेशनल बुक ट्रस्ट, इडिया, 1975

रु 10 25

Original Title → Poorna Kumbha *(Bengali)*
Hindi Translation Poorna Kumbha

निदेशाक नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया ए–5 ग्रीन पार्क नयी दिल्ली–110016
द्वारा प्रकाशित और कपूर आर्ट प्रस ए 38/3 मायापरी नयी दिल्ली–110064

भूमिका

कोई गैर-बंगाली सुने, तो उसे शायद ताज्जुब होगा कि बंकिम बाबू से भलीभांति परिचित होने से पहले ही उन दिनों के बंगाली लड़के लड़कियों का जी चुराया करते थे उनके अग्रज संजीवचंद्र चट्टोपाध्याय। किताबों की अमोघ विधिलिपि से परे पढ़े लिखे साधारण बंगालियों की याददाश्त में कुछ जो वाक्य रह जाते हैं, उनमें से हैं—'वन्य वन में सुंदर लगते हैं। शिशु मां की गोद में।' 'बंगालवासी मात्र ही सज्जन हैं *बंगाल में सिर्फ पड़ोसी ही दुरात्मा हैं* 'ऋषि के आश्रम के *बगल में प्रतिवासी को बसा दो, तीन दिन में ऋषि का ऋषिपन हवा हो जाएगा।*' इत्यादि। संजीवचंद्र बंगाली किशोर किशोरियों को जिस पलामू की सैर को ले जाते हैं, उसका अस्तित्व हमारे पड़ोसी राज्य में तो है नहीं, शायद भूगोल में भी कहीं नहीं है। 'पलामू भ्रमण' इसलिए ऐसी आश्चर्यजनक कृति लगती है कि उसके आगे रामनाथ विश्वास का 'भू-पर्यटन' भी शायद फीका पड़ जाता है।

बंगाली घर घुसरू होते हैं, बंगालियों के लिए अगना ही परदेश है बंगाल में कभी मैगास्थनीज या ह्वेनसांग नहीं पैदा हुए—ये बातें किसे मालूम नहीं ? फिर भी, जैसा व्यक्ति चरित्र में वैसा ही जाति चरित्र में द्वैध नहीं रहता है क्या ? वरना अतीश दीपंकर के प्रति बंगाली क्या केवल पंडित के रूप में ही श्रद्धा रखते। हिमालय के बीहड़ रास्तों को पार करके यह बौद्ध पंडित पैदल तिब्बत यात्रा पर गये थे, यह बात बंगाली आज भी बड़े गर्व के साथ याद करते हैं। इधर परदादी के लगाये आम के पेड़ की छांह और सात पुश्त के जन्म मरण विवाह की साक्षी वाहिनी वसुधारा चर्चित घर की दीवार बंगालियों के दुरंत घुमक्कड़ मन को गांव की सरहद में लांघकर ज्यादा दूर जाने तो नहीं देती, फिर भी पिछली सदी के अंग्रेजी पढ़े लिखे बंगाली डाक्टरी और मास्टरी करने के लिए सारे हिंदुस्तान में फैल गये थे। या कभी विदेशी सरकार की दक्षिणा पाकर उनके सहचर-अनुचर

के रूप म और फिर आवहमान काल से बूढे बूढिया का तीथ दशन था खास कर हिमालय का। मगर घर की चारदीवारी क अन्दर पले बगाली भी भावुक हैं सुदूर विलासी हैं घर बैठे ही व सुदूर क प्यास हैं। एसा नही होता ता पिछली सदी मे सजीवचद्र की पालामौ (पलामू) इतनी लोकप्रिय नही होती।

पलामू फिर भी सभ्य जगत के उपात म था और अज्ञात का जानन के विस्मय और आनद ने उन्नीसवी सदी के बगालियो को प्रशसामुखर कर दिया था। लकिन राजसाही पबना, फरीदपुर नोआखाली चटगाव भी क्या बगालियो के लिए उतनी ही दूर था ? नदियो वाली वह भूमि तो वैसी अगम्य नही फिर भी ईश्वरचद्र की रचना से लगता है उन्होन किस गजब का कमाल किया था। 'पलामू' प्रकाशित होने के महज पच्चीस साल पहले ही कुछ समय क लिए सवाद प्रभाकर' का सपादन छोडकर ईश्वरगुप्त जब पयटक बन थे, तो उन्ही के पत्र म गौडजन न उनकी पयटन कथा आदर के साथ पढी— भ्रमणकारी बधु के पत्र । अपने स्वभावसिद्ध अहकार से यदि ईश्वरगुप्त न एक बार यह दावा किया था— कौन कहता है ईश्वर गुप्त है। वह चराचर म व्याप्त है' मगर वह चराचर उत्तर बगाल का एकाश और पूर्वी बगाल का विभिन्न इलाका भर ही है। नदी माग मे घूमनवाले इस सपादक ने विभिन्न आवश्यक सवादो के साथ-साथ कस कस उपयोगी और आश्चयजनक तथ्यो का प्रचार किया था। 'मेमसाहब जिन परवना की पोशाक पहनती हैं जिस चिडिया के पर को माथ म लगाती है उस चिडिया के पर का व्यवसाय यहा पबना म खूब होता है। कलकत्ते के स्टीमर को नोआखाली पहुचने म आठ दस दिन की देर हो गयी इसलिए कलकत्ते की ट्रेजरी को भेजे जानेवाले खजाने के आठ लाख रुपय यहा के खजान म बक्स म बद पडे है उसकी टाट को दो बार दीमक चाट गयी। बक्से म फिर स तीसरी बार नयी टाट लगायी गयी इस बार भी क्या हालत होगी कहा नही जा सकता।' भुलआ के अत पाती सदीप म बहुत से ब्राह्मण हैं व उपयोगी नही है क्योकि अजात स हैं। इसकी वजह है कि सदीप मे पहले एक मुसलमान मात्र राजा थे उन्होने यह नियम कर दिया कि विवाह-काय मे यहा जाति का विचार नही चलेगा। दुलहा यदि सुदर और गोरा हो तो उसके साथ गोरी और खूबसूरत लडकी को ब्याहना होगा। इस राज्य के न्याय और शासन म ब्राह्मण शूद्र की बात तो दूर पहले ब्राह्मण और मुसलमान मे शादी हुई थी।' 'बरीसाल म दुर्गा की प्रतिमा

म अजीब बात यह है कि दुर्गा के बाए गणेश हैं दाए कार्तिक । पद्रह से चालीस रुपये के अंदर मजे म दुर्गा पूजा हो जाती है।" 'बरीसाल में एक आना दक्षिणा पाने पर ब्राह्मण लोग बेझिझक शूद्रो के यहा भोजन करते हैं। "आनद का कोई भी काम हो, इधर की स्त्रिया उस सिलसिले म बड़े जोरो से लू लू लू (उलूध्वनि) किया करती हैं— उस उलूध्वनि का नाम है 'जाकर'।' कोलबस भी शायद रेड इडियनो के बारे म इससे ज्यादा चौकनेवाले तथ्यो का सग्रह नही कर सके थे। चटगाव के बारे म ईश्वरगुप्त ने बताया था— 'लेकिन इस तरफ का यह एक बहुत अच्छा गुण है कि नीच जाति की स्त्रिया भी राह-घाट बाजार म नही निकलती।"

'भ्रमणकारी के पत्र' को बगला साहित्य म विशिष्ट स्थान मिला है—उसके वर्णन-कौशल की आधुनिकता के कारण। लेकिन इससे काफी पुराना होने के बावजूद बहुवितर्कित 'गोविंददास का करचा' मानवीय मूल्य और तथ्य सपद म तुच्छ नही था जिसमे चैतन्य महाप्रभु के गया, काशी नीलाचल दक्षिण आदि भ्रमण की दैनंदिनी है। प्राचीनतम बगला साहित्य मे भ्रमण कहानी के स्वाद पाने के लिए बेशक मगल-काव्यो की शरण लेनी पडती है मगर वे वर्णन तथ्यपूर्ण और वास्तविक अनुभव से समृद्ध हैं यह दावा करना कठिन है। जिस बगाली राजकुमार ने लापरवाही स लका' को जीता था ऐसा हमारा विश्वास है अथवा जो सब बगाली सौदागर ससडिगा' सजाकर ताम्रलिप्ति स समुद्र यात्रा करते थे उनकी भ्रमण-कहानी नही, काव्य-कहानी मिलती है इन कहानियो का असली उद्देश्य देवी-देवताओ के माहात्म्य का प्रचार ही था। फिर भी यह कह सकते है कि उन मगल-काव्यों की कथा म आज के भ्रमण उपन्यासो का एक पूर्वाभास मिलता है।

प्राचीन बगला साहित्य म तीर्थ भ्रमण की कहानी कम-से-कम सख्या के लिहाज से नगण्य नही है। इस दृष्टि से पूर्णकुभ के पीछे की शताब्दियो का ऐतिह्य है। नवद्वीप काशीधाम, वृदावन, मथुरा, द्वारका आदि का वस्तुनिष्ठ भ्रमण-वृत्तात बगला साहित्य मे काफी है और उन्हे आग्रह के साथ पढनेवाले पाठको की भी कभी कमी नही रही। लेकिन वह सब साहित्यिक मूल्य म कितने धनी हैं, इस बात मे अवश्य मतभेद होगा। हा, अट्ठारहवी सदी के अत तक का लिखा कविराज विजयराम सेन विशारद का 'तीर्थ मगल' ऐतिहासिक तथ्यो से भी समृद्ध है और साहित्य के गुणो मे भी कम नही माना जाता। फिर भी यह कह सकते

हैं, आधुनिक बंगालियों को तथ्यपरक तथा साथ ही साहित्यरस वाली भ्रमण-कथा का पहला स्वाद उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में 'पालामौ' और 'भ्रमणकारी बंधु के पत्र' ने दिया। उससे भी पहले प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर के विलायत से लिखे पत्रों में कहीं-कहीं या देवेंद्रनाथ ठाकुर की आत्मकथा के हिमालय भ्रमण के वर्णन में आधुनिक मन के लिए उपयोगी कुछ कहानियाँ थी जरूर, लेकिन चूंकि वे पूर्णतया भ्रमण-कथाएं नहीं हैं, इसलिए पाठकों के कौतूहल को पूरा पूरा तृप्त नहीं कर सकीं।

बांगला साहित्य की यह धारा यद्यपि उन्नीसवीं सदी में विभिन्न लोगों के अजस्र वर्णन से भर उठी थी, तथापि नदी की पूर्णता उसे बीसवीं सदी के आरंभ में ही आकर मिली। 'संवाद प्रभाकर' के सिवाय भी 'बंगदर्शन,' 'तत्त्वबोधिनी' 'भारती' 'नव्यभारत' 'बंगवासी' आदि पिछली सदी के बहुतेरे सामाजिक पत्रों ने देश विदेश की भ्रमण-कथाएं प्रकाशित करनी शुरू कर दी थीं। अब केवल बंगाल के आस पास से ही नहीं सारे भारत और यूरोप से भी ऐसी कहानियाँ रची जाने लगीं। उनमें से कुछ से तो आज के पाठक भी अपरिचित नहीं और कुछ सदा के लिए खो ही गये हैं। राजनारायण बसु, जलधर सेन, शिवनाथ शास्त्री, रमेशचंद्र दत्त, सत्येंद्रनाथ ठाकुर और खुद रवींद्रनाथ के किशोरावस्था की भ्रमण कथाएं किसी किसी पारिवारिक संग्रह में आज भी देखने को मिल जाती हैं। लेकिन आज विस्मृत होते हुए भी उस समय के और भी बहुत से लोकप्रिय भ्रमण वक्ताओं ने उत्सुक पाठकों को आनंद के साथ विश्व से परिचित कराया था। उनका साहित्यिक मूल्य चाहे न हो, ऐतिहासिक मूल्य अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। पिछली सदी के अंत और इस सदी के शुरू में कई प्रवासी बंग-ललनाएं भी स्त्री सुलभ भंगिमा से विदेश को स्वदेश के आंगन में लायी थीं। उनकी अभिनता का वैचित्र्य भी कुछ कम नहीं था। उनकी भ्रमण कथाओं के शीर्षक से ही इसका पता चलेगा— राजकुमारी देवी की 'दार्जिलिंग की चिट्ठी', हरिप्रभा ताकेदार की 'बंग महिला की जापान यात्रा' आदि आदि। व्यक्तिगत अभिनता के विवरण के साथ-साथ सबसे उपभोग करने योग्य और जरूरी तथ्यों को परोसना ही इस युग की रचना की रीति थी। मोटे रूप में यह कहा जा सकता है कि कुछ ज्ञान देकर पाठकों की जिज्ञासा को तृप्त करना ही ज्यादातर भ्रमण कथाओं का असली लक्ष्य था।

लेकिन बीसवीं सदी जैसे ही कुछ कदम और आगे बढ़ी कि इस देश में साहित्य का मिजाज भी बदल गया।— मैंने अपने 'विपवक्ष' को समाप्त किया। आशा करता हू इससे घर-घर मे अमृत फलेगा।" इस तरह का बडप्पन उपन्यासकार को ही क्या, भ्रमण कथा लिखनेवाले लेखक को भी अच्छा नही लगता। आखिर पाठक पाठशाला का छात्र या नादान छोटा भाई नही है जिसे हाथ पकडकर सत्पथ पर ले जाना ही लेखक का पवित्र दायित्व हो। कवि हो, चाहे उपन्यासकार नाटककार हो या भ्रमण-कथा लिखनेवाला, और रम्यरचनाकार हो तो जरूर ही—ये सब के सब अब रस के याचक हैं। बुद्धि की बिसात लगाते ही हो तो वह ज्ञान की नही, रस की है। लिहाजा बगला साहित्य की भ्रमण कथा की धारा म भी महत्वपूर्ण परिवतन आया। इसका नतीजा यह देखने मे आ रहा है कि भ्रमण वृत्तात के पाठक लेखक के साथ भ्रमण म जितना नही जाते, उससे ज्यादा चित्ताकर्षक कहानी सुनते हैं। पाठको की इस कमजोरी का लाभ उठाकर एक श्रेणी के लेखक अब ऐसे भ्रमण की कहानियां देने लगे, जो जनपरिचित नही है। वास्तविक भ्रमण वृत्तात की तुलना म कल्पित चित्ताकर्षक कहानी की मात्रा जब ज्यादा हो जाती है तब शायद उसे भ्रमण उपन्यास कहना ही अधिक युक्तिसगत लगता है। भ्रमण सबधी ऐसे उपन्यासो की आज बडी माग है। इसीलिए ऐतिहासिक उपन्यासो से इसकी जोरो की होड है। कई लेखक तो रहस्य रोमाच सीरीज की तरह भ्रमण उपन्यास सीरीज लिखते चले जा रहे हैं।

मगर सच्ची भ्रमण कथा लिखना बद नही हो गया है। इसमे भ्रमण वृत्तात के सिवाय भी ऊपर से जो कुछ मिल जाता है वह कल्पित है। उन्नीसवी सदी के पाठक लेखक और उनकी अभिन्नता के जगत को हू-ब-हू रख देने के लिए समसामयिक दो बहुपरिचित भ्रमण कथाओ को खासतौर से पहले ही उपस्थित कर चुके है। हमारी सदी के लक्षण मिलाकर अब जिन दो भ्रमण कथाओ का उल्लेख करना चाहिए वे लोकप्रिय होते हुए भी अत्यत साहित्यिक है। अन्नदाशकर राय अथवा सयद मुज्तबा अली का भ्रमण वृत्तात रम्य रचना की कोटि म आने के कारण 'पथे प्रवासे और देश विदेश' अपनी अपनी विशेषता लिए हुए भ्रमण कथा की धारा म दो गजब की सृष्टि हैं। दोनो ही पुस्तक इतनी लोकप्रिय है कि पाठको के लिए उदाहरण देने की जरूरत नही। आज के आशिकसिद्ध परिमितवाक अन्नदाशकर को भी 1927 साल के युवक यूरोप पर्यटक

की वाक्चातुरी में पहचान लेने में कठिनाई नहीं होती।—"भारत की माटी पर से अंतिम बार अपने पैर उठा लिए और तुरंत के जन्मे शिशु की तरह माँ से मेरा संबंध लमहे में विच्छिन्न हो गया। सहज एक कदम से जब मैं भारतवर्ष से विच्छिन्न होकर अनंत शून्य में डग बढ़ा दिया तो जहाँ से पैर उठाया, वह पात्र भर जमीन खोया सुख मेरे भारतवर्ष के ही स्पर्शविरह का अनुभव कराने लगी। प्रियजनों की उँगली की नोक का परम जैसे उनके सारे शरीर का संपूर्ण अनुभव करा देता है, यह भी मानो वैसा ही हो। ... 'लंदन से मेरी शुभ दृष्टि हुई गोधूलि लग्न में। हाथ के हाथ ही उसने आँखें झुकाकर अँधेरे का घूँघट काढ़ दिया।"

आदमी को जो लोग ग्रीन हाउस में रखकर सती या यती बनाना चाहते हैं, वैसे नीति निपुण लोग कहने से शायद यकीन न करें, इस मुल्क में भी सती और यती की कमी नहीं, लेकिन वह समाज की फरमाइश में नहीं, अंतर के नियम से है। ... उन्हें जब सौ मील की गति से हवाई जहाज उड़ाकर ग्रिल की अस्थिरता से मूर्च्छा का सुख मिलेगा, वैसा तो वह बैलगाड़ी पर घंटे में मील भर चलने के तंद्रासुख का अनुभव नहीं करेंगे। अन्नदाशंकर के भ्रमण वृत्तांत में जो बौद्धिक सौंदर्य था, वह इस कोटि के बँगला साहित्य में अत्यंत दुर्लभ है। हालाँकि रवींद्रनाथ के भ्रमण विवरण का सबसे बड़ा गुण यही था।

अपनी पहली ही पुस्तक लिखकर लेखनी बंद कर देने में भी जो लोग सदा समादृत होते हैं, बंगाल में मुज्तबा अली उन्हीं लोगों में अन्यतम हैं। उन्होंने कभी दूसरी किताब नहीं लिखी, यह कहना भी गलत नहीं होगा। बल्कि यह कहा जा सकता है, ऐसी किताब बँगला भाषा में और लिखी ही नहीं गयी। मुज्तबा अली की कुशलता जितनी छोटे छोटे वाक्य विन्यास में है, उससे कहीं अधिक साधारण घटना के असाधारण वर्णन में है, चित्र रचना, चरित्र चर्चा और मजे की रसिकता में है। उन्हें उपस्थित करने के लिए थोड़ी जगह चाहिए।

पठान गुंडों का सरदार, सुना चार बार सबूत नहीं मिल सकने के कारण छूटकर पाँचवीं बार जब हाकिम इजाज हुसैन खाँ की अदालत में हाजिर हुआ, तो वह शायद बिगड़ उठे। "यह तू पाँचवीं बार मेरे सामने आकर खड़ा हुआ है। तेरे हया शर्म नहीं है?" सरदार ने शायद मुस्करा कर कहा था, "हुजूर प्रमोशन न मिले तो मैं क्या करूँ?" ... बईमान कहने से पठान का खून खौलने के दर्जे के टेंपरेचर को पार कर जाता है और भाई को बचाने के लिए बड़े ही शांत चित्त

से योगासन में बैठकर उनको गिनता है। गिनता है कि कितने वहाँ इस किले खून करते हैं। लेकिन वह हिसाब किताब में चूंकि मोक्षोत विचारमार्ग होते हैं, इसलिए अक्सर गलती हो जाती है। नतीजा यह होता है कि दो चार आदमी की जान नाहक ही चली जाती है। इसके लिए पठान सकातर निवेदन करता है—'लेकिन मेरे चार-चार बुलेट जो फिजूल ही खर्च हो गये उसका क्या होगा?" साफ समझ में आता है कि इस जानि से हम लोगों का क्या परिचय नहीं है। दो सदियों की असंख्य भ्रमण कथाओं से हमारा जितना परिचय यूरोप से हुआ है अपने पड़ोसी देशों के बारे में शायद उसका सौवां हिस्सा जानकारी भी हम नहीं मिली। ऐसे एक अजान देश अफगानिस्तान का मुजतबा अली सिर्फ बंगालियों के घर के पास ही नहीं उनके हृदय में भी ले आये हैं। उनके नौकर अब्दुर्रहमान को किसने प्यार नहीं किया जो शक्ल में नर-दानव होते हुए भी घर के कामकाज में रसोई में, बंगाल की गृहणी को भी मात देता है? काबुलीवाले की और एक तसवीर 'यार दोस्त में से दो चार तब तक पानी में उतर पड़े थे। सबके सब काबुल के रहनेवाले तैरना नहीं जानते। पानी में उतरते ही जड़। उनमें से महज एक जोर और हाथ पाँव मारकर पानी को मथ कर ग्वालंदो जहाज को भी शिकस्त देते हुए चौगुना हो निकलकर हाँफ रहा है। इस पार तारीफ के पुल बंधने लगे, उस पार वहद आत्म प्रशंसा। नदी वहाँ पर बीस गज से भी ज्यादा चौड़ी नहीं होगी। ज्यादा नदी कम।

भारत के धर्म साहित्य इतिहास राजनीति में हिमालय एक अनन्त महिमा लिए खड़ा है। लेखा तो नहीं लगाया फिर भी लगाया है यह कह तो अत्युक्ति नहीं होगी कि हमारी भ्रमण-कथा की पचास फीसदी हिमालय की ही है। इस युग के बंगालियों के लिए देवेन्द्रनाथ ठाकुर को हिमालय का पथ प्रदर्शक कहा जा सकता है। तबसे आज 1973 तक हिमालय पर कुछ कम तो नहीं लिखा गया। तीर्थ दर्शन चोटियों पर विजय खोई हुई किसी जाति की खोज, हिम मानव का पीछा, कितने ही कारणों से अनेक लोग जाते हैं बहुत कुछ लिखते हैं। परंतु देवात्मा हिमालय ने उसके रहस्य के चेहरे को बहुत थोड़ा ही खोला है। बहुरूपिया हिमालय ने अनेकों को विभिन्न आकर्षणों से खींचा है। घर बैठे पाठक उस सर्वव्यापी प्रेम का कुछ कुछ स्वाद मणि महेश जैसे उपन्यास की बेजान वर्णन में भी पाते हैं।

श्रीमती रानी चद की पुस्तक 'पूणकुभ हिमालय की ही जरा और घरेलू सी तसवीर है । उस तसवीर को और सुदर बनाया है उस मेले की कहानी न जो इस देश का प्राचीनतम मेला है और प्राचीनतम होते हुए भी जो काल के आके बाके रास्त पर गगा की तरह ही निरतर प्रवहमान है । जान किस विस्मृत युग स इसम सारे भारतवष की धाराए आकर मिली है । हिमालय की चुबक शक्ति आर्यावत-दाक्षिणात्य को इस प्रकार से एक बिंदु पर खीचती आ रही है । इस महामानव के सागर-तट पर आकर खड़े हुए हैं विश्वास और अविश्वास, अच्छा लगन और वितृष्णा की दुविधा म डोलता हुआ पर एक कौतूहल भरा मन—जो मन तैयार हुआ था शांति निकेतन के उस कवि पुरुष के स्नेह-स्पश स । उस मन ने आवहमान काल के भारत का देखा देखा उसकी आत्मा को । और देखा उन आखो म, जिन्हे अवनीद्रनाथ स रूप दशन की दीक्षा मिली थी । इस लिहाज से रानी चद ईर्ष्या करने योग्य सौभाग्य की अधिकारिणी है ।

हम जिस मजे हाथ का स्वाक्षर पूणकुभ म पाते हैं वह हाथ एक अभिनव परिस्थिति म सजा था । रवीद्रनाथ ने अपने स्नेह के इस पात्री को बुढापे से असमथ अवनीद्रनाथ क मुह की बातो को लिखावट म उतार रखन के काम मे लगाया था । शिल्पी की कूची थक चुकी थी, लेखनी अचल हो गयी थी, पर प्राणो मे प्राण रखा ही हुआ था । उसी प्राण को वह लगातार अपनी बोली से रूप देत रहे । सवकी होकर रानी चद ने बड़े जतन स उन्हे सजाया । नही तो अनमोल स्मृति सदा के लिए लुप्त हो जाती । किस्मत म उस समय इस देश म टेपरिकाडर नही पहुचा था । तभी तो ऐसी जीवत लखनीवाले की सजीव उपस्थिति म अवनीद्रनाथ की स्मृति के चार कमरे म रोशनी जलाने के लिए इस तरह से अनुप्राणित किया । भला किसी टेपरिकाडर की यह जुरत थी ? अवनीद्रनाथ की भाषा मे अनर बजे सो जनर बजे । उनके अतर की ध्वनि को उजागर रानी चद की पहली बार प्रतिष्ठा हुई अवनीद्रनाथ स युक्त होकर घरोवा और जोडा साकार घार म । बगला के संस्मरण साहित्य म य दो पुस्तकें अमूल्य हैं । दूसरे के मुह की बात सो वह अपनी महिमा म कितने ही भास्वर क्या न हो—उन्ही की भाषा मे सुरक्षित रख सकना सहज नही है । अपने व्यक्तित्व को गवाकर स्वच्छ काच की तरह उसी म दूसरे के व्यक्तित्व का दशन कराना बडा ही कठिन काम है । इस बात को बोलन वाले गुरु ही इसे समझ सके थे । इसलिए इस श्रुतिधरा की तारीफ म

अवनीद्रनाथ ने कहा था—"जुबान की बात को लिखावट की रेखाओ मे बाध रखना आसान नही है, यह लगभग हवा म फदा डालन जैसा कठिन काम है।" हवा मे वसा ही फदा डालकर ही अलक्ष्य अगोचर लोक स जो कुछ भी पकडकर रानी चद ने उपहार दिया है, उसके लिए वह अशेष कृतज्ञता की भागी है।

उसके अपने भी कुछ सस्मरण ह—'जनाना फाटक' मे। रानी चद का व्यक्तित्व जैसा बहुरगा है, उनकी अभिज्ञता भी वसी ही ललित और कठोर है। शातिनिकेतन के कवित्वपूण वातावरण म पलकर, आजीवन रग और कूची का काम करके आखिर गाधीजी के 'भारत छोडो' आदोलन मे हिस्सा लेकर उनका जेल जाना चौकनेवाली बात है। कुछ अकल्पनीय भी। कविता कला और राजनीति की दुनिया मे कोई आसेतुबध विच्छेद नही ह, रानी चद का जीवन इसका भी एक प्रमाण है। कैदखाने की दीवारा से घिरी दुनिया म भी देखन की छवि और सुनने की कविता कुछ कम ता नही ह—उसी देखने सुनन का परिणाम है यह 'जनाना फाटक'।

'पूणकुभ' को उन्होने प्रौढ़ अवस्था और दक्ष लेखनी से लिखा है। इसमे तीथयात्री का प्रगल्भ उच्छवास नही है, न ही हिमालय की उस एकात विराट पृष्ठभूमि मे चिपचिपी कहानी गढन की चेष्टा है। फिर भी रस की तो कमी नही। पूस की सुबह के हिमशीतल खजूर रस की तरह स्निग्ध। उन्होन अपनी निगाह का सुर पहले अध्याय की पहली ही पक्ति म बाध दिया है—"उस दिन रसोईघर के दरवाजे से पीठ टेककर मेरी वष्णवी सखी कह रही थी—इस जीवन म क्या पाया, क्या नही पाया, पान से क्या होता और नही पाने से क्या हुआ, एक दिन इसका लेखा-जोखा लेने बैठ गयी। लेकिन नही बन पाया ।' यह मानो वीरभूम के बादल को निगाहा से उत्तरापथ को देखना है। रानी चद की कलम के इकतारे मे प्रेम और वैराग्य का उलटा सुर एक ही साथ आता जाता है। बातो का खिलवाड नही, गढी हुई गप्प नही चटकदार वणन नही, परतु इसके अनेक प्रमाण हैं कि छवि आकने की उसकी क्षमता कितनी है। याद आती है राममय महाराज की कहानी बसुमती मा का जीवन, हरकी पडी मे बठकर साधुओ का स्नान देखना या भडारे का वणन। उनके भ्रमण वृत्तात मे पहाडी नदी की तरह ही सब कुछ वेग से सहज ही म बहता गया है। कभी लगता है गाथा बालिका के कौतुकमय नेत्रो से देखती हैं तीर्थकामी लोगा को, विचित्र सार मदिर अलख

निरजन साधु, बदरो का उत्पात, गुरुकुल के बालकों की तपश्चर्या, तिलमाडेश्वर का शृगार—और न जाने क्या क्या? अनिरुमयी शुद्धाचार सगिनी जसा विश्वास शायद उनमे कम है, फिर भी तक नही किया है। जो म शायद ही सवाल आया—'इनन लोगो का यह जो विश्वास है क्या कुछ मूल्य नही है इसका? एक ही विश्वास म ये जो लाखो लाखो लोग इकट्ठे होते हैं—इसकी बुनियाद क्या निरकुश धोखा है?' लेकिन इस प्रश्न को उन्होने ज्यादा दूर तक बढने नही दिया। इस प्रश्न का उत्तर यदि नेतिवाचक होता तो कुम्भ को पूर्ण करने के लिए वह हरद्वार जाती ही क्या? उन्होने पाठक के मन के अनगिनत प्रश्नो को हल करने म कामयाबी हासिल की है। क्योकि जिस स्वच्छतोया गगा से वह तीथवारि ले आयी हैं उस नदी ने सभ्यता के प्रभाव से आज तक हम कुछ कम तृप्ति तो नही दी है।

—गौरी अयूब

पूर्णकुंभ

उस दिन रसोईघर के दरवाजे से पीठ टेक कर बठी मेरी वैष्णवी सखी कह रही थी, 'इस जीवन म क्या पाया, क्या नही पाया, पाने से क्या होता और नही पाया तो क्या हुआ। एक दिन इस हानि-लाभ का लेखा जोखा लगाने के लिए बैठी, लेकिन नही लगा सकी। बार-बार आसुओ के बहाव मे सब बह गया। आखिर उस हिसाब को भूलने के लिए ही मैं एक दिन सब कुछ पीछे छोड कर निकल पडी।'

रेलगाडी की खिडकी पर हाथ पर सिर रखे मैं उसी की बात सोच रही थी। हरिद्वार जा रही हू। अमृतकुभ मे।

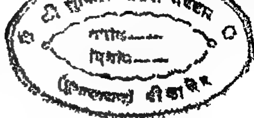
बडी-दी जा रही हैं। साथ मे हैं हेम दादा। मैं भी उनके साथ लग गयी। आते समय देख आई, अगना मे टहनिया पर सेमल पलाश के कई फूल फूले हैं। अभी-तो पत्ता का झडना खत्म हुआ। सूखी हवा के झोको से लगातार पक्के पत्ते झडते रहे। दिन म इन आखो झडने का नाच देखा। रात अधेरे से ढके सेमल के नीचे पायचारी करते हुए कानो सुनी झकार। सालभर इसी समय की आशा मे दिन गिना करती हू। नीले आसमान मे झूल पडी इन काली डाला की ओर ताकती रहती हू। देखते-देखत एकाएक एक दिन काली कलियो से डालें भर जाती हैं, फूल फूलना शुरू हो जाता है। बस, और देखते-देखते फूलो से पेड लद जाएगा, लाल पखुडियों के भार से झुकी हुई डालें हवा मे डोलती रहेंगी। झुड की झुड चिडिया आएगी—मैना, गगमैना, गोरैया, कोयल, कौआ। भोर होते-होते उनके कल-कलरव की न पूछिए, इलाके भर मे काकली से हाट-सी लग जाती हो मानो। पीठ पर पूछ उठाए गिलहरिया डाल डाल पर दौड धूप शुरू कर देती हैं। दोनो हाथो से पखडिया नोच-नोच कर फूलो के भीतर का मधु पीती हैं। कितनी दोपहरी को सूनी खिडकी के पास की खाट पर लेटी-लेटी ध्यान से देखा करती हूँ उनका यह खेल! चुहल की कोई हद नही। सारे पेड पर ब्याह वाले घर की चहल पहल हो जैसे। सेमल के फूल मे कैसा कटोर-भरा मधु खोद-खोद

कर पीते समय टप-टप करके चू पड़ता है कितना ! सोचती हू, उतना मधु है या ओस-जमा पानी !

जरा ही आगे, सेमल के बाद है पलाश। बगीचे के उस कोने मे सिंदूरी लपटें उठती रहती हैं आग की। उस आग से नन्ही-नन्ही सी, काले रग की 'फुरा सुधी' अपनी काली पतली टेढ़ी चोचो से खेला करती हैं। नीचे लाल कक्डा पर पलाश रात दिन लाल बिछौना बिछाया करता है। मा के घर जाते-जाते माटी से अजुरी भर फूल उठा लेती हू। उन फूलो से कभी मा के ठाकुरघर को सजाती हू और कभी उन्हे अपने कमरे की लाल माटी वाली उस थाली मे रखती हू, जो खिड़की पर रक्खी है। बरामदे के कोने मे छत तक तलराई नीलमणि लता म गुच्छे गुच्छे नील फूल खिले हैं। लत्तर खोज-सी गई है। उसकी जड खाकर बदन पर माटी का प्रलेप चढा कर दीमको ने डेरा डाल रक्खा है। लत्तर मे अब वह पहले वाला जोर नही रहा। माथे की तरफ कुछेक हरे पत्ते लिए वह किसी तरह जी रही है। पहले इस समय नीलमणि के नीलेपन से यह कोना छाया रहता था। उसके रग की वह छटा कितनी दूर से दिखाई पडती थी ! फूल अभी भी खिलते हैं, पर उतने नही। फिर भी आशान्वित रहती हू, उसके बीते दिनो के उस खोए रूप को अपनी आखो के सामने खीच लाती हू। हवा म चक्कर खाते हुए, बरामदे के लाल फर्श पर नीलमणि के फूल झरते रहते। नीले सीतारो का नक्शा डाले रोज सवेर वह किसके लिए आसन बिछाया करती, कौन जाने ! अपने को यों लुटाकर लगातार यह जो निवेदन है, यह वह किस सिखाना चाहती है ? कितनी ही बार इसने सोच मे डाल दिया है। आज भी यही हाल, दो हो, एक हो, उसकी तरफ ताकती रहती हू—गोया वह मुझे चाहिए ही। नही तो जाने क्या भूल जाऊ, यह डर होता है। साल भर जतन से उसकी जड मे पानी डाला करती हू, और नजर उठा कर देखा करती हू, ऊपर के वे कई हरे पत्ते बच ता रहे हैं न ! प्रत्येक वर्ष के अत म ठीक इसी समय ये आते हैं। घर के पिछवाड़े के बाग मे ढेरों फूले हैं कचन। गाढे हरे आम-अमरूदो की फुनगियो के ऊपर हलके बैंगनी रग का एक एक फुहारा। कैसी बहार ! सेमल पलाश, नीलमणि, कचन—अपने ऐश्वर्य का यह सभार लिये चारो ओर से घेर लेते हैं।

मुह घुमा लेती हू। मन को आगे बढा देती हू।

पीछे की पुकार पर ध्यान नही देना चाहिए—नानी से यह सुन रक्खा है।



मेरा आना एकाएक ही हुआ। यह सभव कैसे हुआ, खुद को ही अचरज लगता है। घर गिरहस्ती से अपने को अलग कर लेना, वह चाहे दो ही दिन के लिए हो, चाहे दस दिन के लिए—बडा कठिन है। किन किन कठिनाइया से तैयार हो पाती हू।

बडी-दी के साथ चलूगी मन ही मन जब मन त कर चुका, मेरे अभिजित ने बाधा दी। एक दिन कापते-कापते उसने खाट पकडी।

गठरी बधी थी फश पर से हटाकर उसे खाट के नीचे डाल दिया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन—बुखार बढता ही गया। उधर बडी दी के यहा से खबर आई, टिकट खरीदा जा चुका है, अब समय नही है, जल्दी कलकत्ता चली आओ।

बोलती नही, जवाब नही देती, काच के ग्लास मे खूराक-खूराक दवा डालती, और चुपचाप रोगी तथा डाक्टर की शक्ल को मिला कर देखती।

आखिर ऐन जिस दिन जाना था, आखिरी गाडी के छूटने के ठीक पहले उन दोनो से छुटकारा मिला।

जिस हालत मे थी, उसी हालत मे निकल पडी। होल्डौल के स्ट्रैप को बाधते-बाधते रोमू ने किसी तरह से गाडी के डिब्बे मे डाल दिया। खिडकी से गला बढा कर अभिजित ने भरोसा दिया।

दल मे हम चार जने थे—मैं, मेरी बडी ननद, ननदोई यानी बडी-दी और दादा, और एक वैष्णव। तीथ कराने के ख्याल से दादा उसे ले आए थे।

एक ही यात्रा के सगी—मैं इन्हे क्या कह कर सबोधन करू? कुछ साफ-साफ तै हो जाय तो आचार-व्यवहार सहज हो जाय। वैष्णव बडी दी को मा जी और दादा को बाबा कहते थे। उस नाते तो मैं उनकी भाभी हुई। नाता जहा जरा

गभीर होता है, वात्सल्य वहा आप ही आता है। फिर भी थोड़ी झिझक-सी लग रही थी। बड़ी दी ने कहा, 'भानजे का नाता है नाम से ही पुकारो।' वैष्णव भी शायद मौके की ताक मे थे—फौरन ही कहो करीव आकर अप्रतिम होने का मौका दिए विना ही झट प्रणाम करके वैष्णव-सुलभ विनय के साथ बोले, 'मामी जी भानजे को तो नाम से ही पुकारा जाता है।

व्रजरमण पंडित है—घोर विनयशील भक्तिमान। हर घड़ी सकपकाया-सा रहता है—क्या जाने कब किसके प्रति कौन-सा दोष बन पड़े। विनय वैष्णवों का भूषण है—व्रजरमण अक्षर-अक्षर इसका पालन करता है।

व्रजरमण हिंदी अच्छी पढ़-बोल लेता है। उच्चारण साफ है, जो कि बगला बोलने मे 'सिलहटी' ढग से अभी तक बच नही पाया है।

पास वाली बेंच पर दो मारवाड़ी। उमर कितनी होगी—बाईस, तेईस, चौबीस के करीब। मगर इतने मे ही शरीर का डील डौल क्या बनाया है! देख कर मोह होता है। शरीर कैसा बलिष्ठ है, होगा भी क्या नहीं? जरा ही देर पहले आमने-सामने बैठ कर दोनो ने क्या गजब का खाया। ढेर की ढेर पूरी-तरकारी, उसके बाद सदेश रसगुल्ले की तो दूकान ही पल म उजाड कर रख दी मानो। और एक-एक सदेश का आकार कैसा! जब से लड़ाई छिड़ी है उन कई वर्षों से इतना बड़ा सदेश ही नही देखा है। बादाम पिस्ते से भरे हरे-पीले-सफेद सदेशो को मुह म ठूसते चले जा रहे हैं। मुट्ठी मुट्ठी रसगुल्ले हाडी से निकाल निकाल कर पत्तल म डालते चले जा रहे हैं। गिनती की कोई परवाह नहीं। देख कर काठ-सा मार गया।

परिचय के शौकीन दादा ने लेटे-लेटे ही उनसे बातचीत शुरू कर दी। बोले, 'दो दिनो तक साथ चलना है, परिचय कर रखना अच्छा है।' वे दोनो भी हरिद्वार ही जा रहे थ—काशी विश्वनाथ सेवा-समिति की ओर से। वहा यात्रियो की सेवा करेंगे, यह महत् उद्देश्य था उनका। शायद इसीलिए स्टेशन पर इतनी धूमधाम से उन्हे विदाई दी गयी। दस-बारह मारवाड़ियो ने उनके गले म दस बारह माला पहना कर गाड़ी छूटते समय कैसी जय-जयकार की! उसी समय से उनके प्रति बड़ी दी म कैसा तो एक श्रद्धासना गदगद् भाव आ गया बोली, 'समझो, यही लोग सच्चे सेवक हैं।' सेवा-समिति की ओर से सारा

इतजाम करने के लिए ये पहले से ही जा रहे हैं। बाद मे इनका हाथ बटाने के लिए बहुतेरी जगहो से स्वय सेवक आएगे। पहला काम होगा—प्याऊ खोलना। बोला, 'यहां जितने यात्री आएगे, पहले तो हम लोग सबको पानी पिलाएगे। हमारा दूसरा काम यात्रियो को पूरी, तरकारी, मिठाई खिलाना। दूकान भी रहेगी। तीसरा काम होगा शवो का दाह-सस्कार। स्नान के लिए आने वाले बहुतेरे यात्री मर भी जाते हैं।'

उनके दूसरे सेवा-काय की सुनकर मैं उत्साहित हो उठी थी। सोच रही थी, उनसे कहू, उसे तो बल्कि यही गाडी से ही शुरू कर दीजिए—आखिर हम भी तो तीथयात्री ही हैं, वही जा रहे हैं। लेकिन जो तीसरी सेवा सुनी, उसने मेरे उस आग्रह को ठडा कर दिया। कौन जाने, कहना नही चाहिए, तीथ-स्नान मे सेवा-समिति की सेवा लेकर आखिर कौन-सी बात रखन की मुसीबत मे पडना पडे।

बडे उत्साह से उन लोगो ने बैग से निकाल कर समिति के कार्यों का छपा हुआ ब्यौरा दादा के हाथ म दिया—पहले किये गए कार्यों का यह हिसाब हिंदी में था। धीरज के साथ दादा सब पढ भी गए। बोले, 'आखिर समय क्या बरबाद करू ? हिंदी की थोडी-बहुत मश्क हो जाए।' दादा जितना ही कष्ट करके पढने लगे, मारवाडियो की उमग उतनी ही बढने लगी। बेंच से उठ-उठ कर बार-बार उधर झुक-झुककर समझाने लगे, यह जो तसवीर देख रहे हैं ये करोडपती हैं कम से कम हजार आदमी को खाना खिलाते हैं। जाने कितनी जगहो मे सेवा-व्रत कराया है।'

सोचा कहू—करेगा नही ? घी म जितनी ज्यादा मिलावट की है, उतना ही दान-खरात करता है।

गाडी म जब वक्त नही बीतना चाहता हो, तब नींद जैसी दूसरी चीज नहीं। सुबह चाय पीकर एक नीद ले लीजिए, तो दोपहर। और दोपहर को वल्लभदास की थाली के बाद फिर एक नीद कि तीसरा पहर। आखें मलते हुए मैं तीसरे पहर उठ बठी। वदन मे कैसी तो सिहरन-सी हो रही थी। फजाबाद मे सबेरे ही 'ताजा खबर' वाला छोकरा अखबार दे गया था। खबर थी बलूचिस्तान मे बफ पडी है। शीत-लहर बढती जा रही है। यहा-वहा आधी-पानी। कितना क्या। मैं घबरा गयी। शीत लहर क्या गाडी के डिब्बे मे भी घुस आएगी ? शायद नही।

गोधूलि का समय। दूर पर धूल की आंधी। चारों ओर धुंधला-सा। उसी की ओट में मुरझाया-सा सूरज पश्चिम क्षितिज में घनी झाड़ियों के नीचे डूब गया। डब्बे के एक कोने में बड़ी दी चुपचाप बैठी थीं।

दिन डूबने की यह घड़ी उतावले मन से समझौते का लग्न है। सारी हलचलों को शांत करके सारे मन को किस तन्मयता में डुबा देती है, इसका कोई पता नहीं चलता। आधी जानी आधी अनजानी की एक अनोखी आत्मविस्मृति की अनुभूति है यह। अचानक सुगंध और दुर्गंध मिली एक अजीब गंध से मिजाज बिगड़ गया। आखें खोलकर देखा, सामने की बेंच पर आमने-सामने माथे से माथा सटाए—गांजे की चिलम पहचानती हूं—वैसी ही पतली चिलम में एक-एक दम लगा कर श्रीमान दोनों हाथ बदलते जा रहे हैं। थमते नहीं। खत्म होने पर फिर चिलम भर लेते हैं, खींचते हैं, आग बुझती है। रात के आठ बजे तक यही क्रम चलता रहा।

'बड़ी-दी का चेहरा गंभीर था। पीठ किए बैठी थीं। और भी पीछे मुड़कर बैठने की कोशिश से वह हिल-डुल कर बैठीं। घर में बाहर में राह चलते रास्ते के दोनों ओर बड़ी-दी के बाल-बच्चों की भरमार। सभी उनके बेटे, मुन्ने। अभी कुछ ही देर पहले, जब दिन की रोशनी थी, बड़ी-दी ने इन लोगों से कहा था, 'बेटे, तुम लोगों को अगर महिला स्वयंसेवक की जरूरत हो, तो हमें बताना। हम दोनों रोज कुछ-कुछ देर के लिए तुम्हारी सेवा-समिति के काम आ सकेंगी क्या ख्याल है रानी!' मैंने कहा, 'बेजा क्या है? लौटने का खर्च यदि दे दें।

सेवा-धर्म के साथ स्वार्थ को जुड़ते देख बड़ी-दी विचलित हुईं। बार-बार उन बेटों का काम कितना महत् है, इसकी व्याख्या करती रहीं। और उन्हीं बेटों की आखिर यह करतूत? गांजे का अध्याय खत्म हुआ, तो वल्लभदास की बड़ी बड़ी थालियां गोद में लेकर बैठ गए। गवागव सब चट कर गए और आनंदिवा कुछ अजीब किस्म की डकारें लेकर सुख हुई आत्मा से दादा को देखकर बोले, 'जी, स्पेशल आर्डर देकर हमने ये पराठे बनवाए। कह दिया कीमत की कोई परवाह नहीं। अच्छे से अच्छे बना कर ले आओ। हमने तो घर में भी इतना अच्छा पराठा नहीं खाया। उस साल मैं अपनी वाइफ को लेकर गया था रास्ते में बढ़िया खाना नहीं मिला था। आज का खाना बहुत अच्छा था। लगा कि घर का खाना खाया। लेकिन दाम कुछ ज्यादा लिये '

मैंने कहा, 'कुछ देखिए न बड़ी-दी, लागत किस की लगी ? उनकी गाठ की कि सेवा समिति की।'

बडी दी ने मुह फेर लिया।

बेला जूही की वे मालाए गाडी के झकोरे से डिब्बे की लकडी से टकराते टकराते अभी भी खुशबू बिखेर रही थी। गरम कपडो के अदर भी सद हवा हड्डी कपा रही थी। लकडी की खडखडी खिडकी काच सब बद करके कबल ओढे सिमटी सिकुडी पडी थी, फिर भी राहत नही। दोनो घुटनो को मोडकर छाती से लगाया, सिर को कबल के अदर डाल लिया—सुना है, निश्वासो से बदन जल्दी गम होता है। लेकिन कहा, निश्वास भी गोया जम कर बफ हो रहा है। तो क्या हम बलूचिस्तान ही जा पहुचे ? लगता है जैसे बफ परचल रही हू—हाथ ठडे हो आए, पाव जम-से गए और दिमाग भी कैसा जम-सा गया। यह जरा सोने की ख्वाहिश कैसा पीडादायक हो गयी ! इससे तो जगे रहना कही बेहतर है। कापती हुई उठ बैठी। गप शप करने लगी। बाकी रात किसी तरह से कट जाय। सभी एक खोज मे मशगूल थे—चारो तरफ इस सख्ती से बद है, फिर भी यह हड्डी कपाने वाली हवा किस फाक में से घुस आई ? खैर। जय बाबा विश्वनाथ ! गाडी हरिद्वार आकर खडी हुई। सरो-समान उतार चढाकर दो तागो पर सवार होकर हम चारो जने कनखल की ओर चले।

दादा ने कहा, 'रामकृष्ण मिशन चलना।' रामकृष्ण मिशन कहने से तागे वाले ने नही समझा। बोला, 'यह मिशन क्या है, नही मालूम। बगाली अस्पताल ?'

दादा ने कहा, 'हा-हा, वही। वही चलो।' रामकृष्ण सेवाश्रम को इधर के लोग बगाली अस्पताल के ही नाम से जानते हैं। दूसरा कुछ कहने से समझने मे गडबड करते हैं। साफ सुथरी पक्की सडक पर घोडा टप टप करता दौड पडा। चारो तरफ का घना कुहरा उस समय तक साफ नही हुआ था। रास्त मे लोगो की भीड नही थी गगा मैया की जय' करते हुए झाड़ूदार धूल बुहार रहे थे। पगला बरागी काठ की खटखटी बजाकर एक किनारे से मीरा के पद गाता चला जा रहा था। पतली नामावली हवा से बदन पर से खिसक पडी, मगर उसकी खाक भी खबर नही। बधी नहर से गदले पानी की धारा वेग से शहर के भीतर से बहती जा रही थी। तागा सीधे उसी रास्ते से जा रहा था। यही गगा है !

हरिद्वार की गंगा के रूप का वर्णन कितना सुना है, कल्पना में वह छवि कितनी बार झांकी है—और पहले ही दर्शन में मन को ठेस लगी ! उस गंदले पानी के ऊपर गेंदा की एक पीली माला तेजी से बहती जा रही थी। क्या पता, किसकी पूजा के फूल मां गंगा की छाती में बहा दिए हैं ! यह माला भागती हुई कहां चली ? किसी की रोक नहीं मानती। हाथ में पकड़ कर बगल से फिसल कर निकल जाती है। वही तो अभी भी दिखाई पड़ रही है, उस मछुए के तन की फांक से। वह, वह रही। ज —अब पुल के उस पार आंखों से ओझल हो गयी।

तांगा पीली चहारदिवारी से घिरे रामकृष्ण सेवाश्रम में आकर रुका।

पहले से ही यहां के स्वामी जी को खबर भेज दी गयी थी। वे लोग आकर हमें हमारे लिए रखे गए तंबू में ले गए। धुंधले-से आम के बगीचे में एक कतार में कई तंबू पड़े थे। आम के पत्तों में टप टप करके ओस की बूंदें टपक रही थीं तंबू पर हमारे माथे पर मुंह में। ओदी घास तले नम गीली माटी, पैर रखते ही छप-छप कर उठती। दो दिन पहले जोरों की बारिश हो चुकी थी। स्वामी अनुभवानंद ने कहा, 'धूप उगते ही सूख जाएगी। मिट्टी भी सख्त हो जाएगी। आइए, पहले जरा गरम-गरम चाय पी लीजिए। ऐसा जाड़ा है आराम मिलेगा।

उस आम तले से कुछ ही दूर पर रसोईघर था। रसोईघर के ओसारे पर कुशा के आसन बिछे। टिन के छोटे से मग में गरम चाय। और समय गरम चाय भरे टिन के मग को पकड़ने के लिए हाथ पर आंचल खींच लेती थी, लेकिन अभी खाली हाथ में भी उंगलियां टेढ़ी ही रहीं सर्दी से ऐसी ठिठुरी कि सीधी नहीं होतीं। मग को लाऊं तो कैसे ? हम लोगों में सबसे ज्यादा बाबू दादा ही कुड़ रहे थे। दोनों हाथों की उंगलियां थर थर कांप रही थीं। रोटी तोड़ना चाहते—कांपते-कांपते उंगलियां रोटी पर से फिसल पड़तीं। सेवाश्रम के सारे संन्यासी सेवा के मूर्त प्रतीक थे। प्रत्येक यात्री के लिए उनके जतन की कोई सीमा न थी। एक ब्रह्मचारी ने लोहे के बड़े बड़े कलछुल से लकड़ी के दहकते अंगारे लाकर सामने रख दिए। उस पर हथेली की यह पीठ वह पीठ सेंक कर गरम चाय उठा कर पी, आटे की रोटी और गन्ने के गुड़ में अमृत का स्वाद मिला। सोचने लगी आग की ऐसी ही अंगीठी अगर कपड़े के अंदर गले से लटका रख पाती—तो शायद स्वर्ग के सुख का अनुभव करती !

तबू मे लौट आई। एक, दो, तीन, चार—तबू म नबर लगे थे। एक नबर का तबू हमलोगो का था। पूरी जमीन पर चटाई पडी थी, स्प्रिंग वाली लोहे की खाट, बहुत बडा-सा कमरा हो जैसे। घर का आराम और बाहर का झझट झमेला नही—कुल मिलाकर तबू का मोह हम सदा से है। मैं खुश हो उठी।

बडी दी व्यस्त हो गयी। सामान को करीने स सहेज लना है। बहर हाल कुछ दिनो के लिए यही अपना घर-बार। सामानो का ऊचा ढेर। इतने इतने सामान साथ म आए कस ? भानजा ने ठूस-ठाम कर बेंचो के नीचे डाल दिया था। उस समय हावडा स्टेशन म मुझे कुछ पता नही चला। क्योंकि इस बार बडी-दी ने बडी निगरानी रखी थी कि सामान ज्यादा न हो। जगह-जगह जाना है जितना हल्का हो, उतना ही अच्छा। उन्होने लिख कर मुझे बार-बार सावधान कर दिया था दया कुछ कपडे लत्ता के सिवा और कुछ साथ मत लाना। बिस्तर की भी जरूरत नही, मैं जो लूगी, उसी से तुम्हारा काम चल जाएगा। दादा ने इशारे से कहा, 'यह क्या देख रही हो ? वह जो हरी फौजी थैली है, बेंत की टोकरी है उन्हें खोल कर देखा। ऐसी कोई चीज ही नही जो उसम न हो।'

सहेजने के बहाने मैंने थैले को खोल दिया। लोटा, मग, पानी की सुराही बिस्कुट का डिब्बा, केतली स्पिरिट, स्टोव अगोछे के कोने म बधी हल्दी मिर्च की बुकनी, पीतल के लोटे म अखा चावल, उस पर होशियारी म रक्खी घाच की सीसी, जिसम सरसो का तेल टिन के डिब्बे म एक डिब्बा चीनी, नमक, छूरी कटारी, कूफर, चूना—पान खाने के लिए परदेस म न मिले कही ! जादू के डिब्बे की तरह निकल रहा है तो निकलता ही जा रहा है। लोहे की सडसी, छालनी, दो लालटेन सिर म लगाने का तेल, ग्लीसरीन, हजमी गोली—जाने क्या-क्या !

दादा ने कहा तै पाया था कि आदमी पीछे हम दो-दो लगेज लेंगे। तुम्हारी बडी दी न उसी हिसाब से अपने हाथो सहेजते हुए यह वह मिलाकर अत तक जो किया—निर्विवादी आदमी मैं, टुकुर टुकुर देखता ही रहा सिर्फ। गिन तो देखा, कुल मिला कर कितने हैं ?

गिन कर देखा। ज्यादा नही आदमी पीछे दो के बजाय सिर्फ छह छह अदद हुए हैं। बडी-दी उधर काम से कही बाहर गयी थी। लौट कर बोली, 'रानो, तुम्हारी ऊनी चादर ? बदन पर तो नही देख रही हू।

हरिद्वार स्टेशन पर करारी सद हवा थी। मेरे बदन पर रूमे कवल का लवा कोट था। इसीलिए मैंने बडी-दी के बदन पर उनके सफेद शाल पर अपनी चादर भी डाल दी थी। सोचा, दो चान्रो से उन्हे कुछ आराम मिलेगा। अब उस शाल की याद आई। ऊपर वाली चादर अनजानत कहीं गिर गयी। बडी दी उसे ढूढ-ढूढ कर हैरान हो गयी। कहीं नही मिली। उन्होंने कहा 'आखिर हो क्या जाएगी?' मैंने कहा, 'एक ही बात मुमकिन है ताँगे पर गिर गयी होगी। उतरते वक्त हममे से किसी ने ख्याल नहीं किया।

कब गिर गयी, कसे गिर गयी हम जरा भी ख्याल नहीं रहा?'—बडी-दी की फिक्र बढने लगी।

मैंने कहा यह क्यो नही सोच लेती कि तीरथ म पहला दान उसी का किया बस।

लेकिन वह नही मानी। घूम फिर कर चादर तकिए को झाड कर देखने लगी। और अपन तई दुखडा गाती रही छि छि यह क्या किया मैंने। आज के जमाने मे कोई चीज जुटाने म कितनी परेशानी है—

इतने म दोनो हाथ पीठ की ओर किए तागा वाला तबू के सामने आ खडा हुआ।— मा जी ईनाम मिलना चाहिए।'

बडी दी किलकते हुए हसकर हा-हा जरूर मिलगा ईनाम कहती हुई झट आग बढी और दोनो हाथो से शाल को लिये तबू म चली गइ।

दादा ने कहा गजब! तागेवाला खुद स नही दे जाता तो हम लोग कर क्या सकते थ। अनजान जगह अन पहचाने लोग।'

अब निश्चित होकर बडी-दी ने सिर म तेल लगाया। बोली, चलो अब गगा नहा आए। इस मुश्किल से आई—आज पहला दिन है—गगा नही नहाए यह कैसे हो सकता है। बडी-दी को कपडा तौलिया लिए तैयार देखकर स्वामी जी लोग हा हा करके दौडे आये। यह काम हरगिज मत कीजिए। आज ता खैर न ही कीजिए आज ही क्यो कल भी नही परसो भी नहीं। भला चाहती हो तो अभी तीन चार दिन गगा स्नान की न सोचें। जानती नहीं हैं दो ही दिन पहले मसूरी म ढह इच बर्फ पडी है? गगा मे बर्फ पिघला पानी आ रहा है गदला पानी आते समय रास्ते म ही तो देखा। अभी गगा म उतरने का मतलब हो है पेट म सरदी लगना। घूमने के लिए आई हैं पुण्य करने के लिए आई हैं—ऐस मे

बीमार पड जाने से क्या लाभ ? नल भ पानी है—बालटी मे थोडा गरम पानी मिलाकर यही नहा लीजिए।'

करें भी क्या, झुंझलाई-सी रह गई बडी-दी।

किसी नयी जगह मे जाकर एक ही जगह, एक ही ठौर बैठे रहने को जी नही चाहता। नहाने के बाद गीले बाल सुखाने के लिए धूप की आशा मे घूमने लगी सामने के रास्ते से बैंड बजाते हुए कोई जुलूस निकला था। इधर उधर से सब लोग दौड पडे। कघी से बाल झाडते हुए बडी-दी को खीचकर मैं उधर को भागी। 'मैं ही क्यो रह जाऊ' कहकर दादा भी बिस्तर छोड कर शहर निकले—रास्ते की हरारत मिटाने के लिए थोडा आराम कर रहे थे।

बडा नया जलूस। आगे-आगे चकाचक पोशाक मे बैंड बजानेवाले लोग उसके बाद गेंदा फूल की माला लिपटे एक ऊचे बास म गेरुआ झडा उडाते हुए दो-दो मे बटे सैकडो साधुओ की लबी कतार। बीच में एक सजे-सजाए हाथी की पीठ पर चादी के सिंहासन पर मठ के महत जी। दो तरफ से दो आदमी उन पर चवर डुला रहे थे। हाथी झूमता हुआ चल रहा था—उससे सिंहासन डोल रहा था, महत जी डोल रहे थे, झडे की माला डाल रही थी। तीर्थ के लिए महत जी बाहर से पधारे, उन्ही के स्वागत समारोह मे यह जुलूस। 'जय हो साक्ष विहान यहा ऐसा कितनी बार देखने को मिलेगा।' बगल से वहा के एक बाशिंदे ने कहा, 'इस पूर्णकुभ मे एक-एक करके सभी सप्रदाय आएगे।'

दोपहर मे प्रसाद खाया। सीधा-सादा दाल भात, रोटी-सब्जी, चटनी-दही। निरामिष, बडा ही स्वादिष्ट। स्वामी जी लोग स्वय पकाते चुकाते हैं। वही सब परोसते हैं। किसी तरह से बोझा उतार देना भर नहीं। उनकी निष्ठा जी को छूती है। इसीलिए किस आसानी से तृप्ति आती है। चारो तरफ साफ-सुथरा झकझक। रसोई घर मे पानी कादो की किचकिच नही। रसोईघर के सामने ही फूलो का बगीचा। बगीचे के बीच मे रामकृष्णदेव का मदिर। मदिर मे रामकृष्णदव श्री मा औरस्वामी विवेकानद की तसवीर—फूल-चदन से सुशोभित। दरवाजे पर चिक। सुदर-सा छोटा मदिर। ठडा, शीतल। अदर जाने पर स्वय ही कुछ देर बैठने को जी चाहता है। दरवाजे के बाहर एक कोने में काठ के बक्से मे रखा प्रसादी-चदन, चरणामृत। स्वामी जी लोग नहा कर एक एक करके आकर बक्से के ढक्कन को

खोलकर चरणामृत फिर कपाल पर चदन का टीका लगा लगा कर लौट रहे थे। उनकी देखा-देखी बड़ी-दी और मैं भी गए।

फूल के बगीचे के बीच म आम का एक ऊचा-सा पेड। आम पर छा गयी है गेरुए फूल की एक लता। नाम नही जानती, जो कि हमेशा ही देखती हू—शोकीन गेट के ऊपर, लबी-लबी कली जस गुच्छे-गुच्छे फूल। गाढे रग के उन फूलों ने मानो आम के हरे पत्ता पर सन्यासी की चादर बिछा दी हो। बड़ी दूर से दिखाई पड़ता है। आज जब बाहर गयी थी, तो दूर स इस गेरुआ पताका को ही देखकर अपने डेरे को पहचाना था।

सेवाश्रम ही है। गरीबो और साधुओ का अस्पताल स्वामी विवकानद ने चाहा था—हरिद्वार तपोभूमि है कितने ही साधु आत हैं और साधुओ के भी तो रोग होता है, बिना इलाज के कितनी तकलीफ होती है उन्ह। व जिसमे बीमारी की हालत म सेवा-जतन से स्वस्थ हो सकें, आराम का अनुभव करें—इस अस्पताल की नीव इसीलिए पडी। कितने सन्यासियो न यहा अतिम सास ली—उनके एक मात्र सबल नारियल के टूटे कमडल से ही इसका पता चलता है। गरीब-गुरबा को भी यहा जगह मिलती है। किसी ताग वाले का हाथ-पाव कट गया, वह यहा आया। किसी भिखमगे को हैजा हुआ, यहा आया। यात्री अचानक बीमार पड-कर लाचार हो गए वे यहा आए।

सेवाश्रम म पीछे साग-सब्जी की खेती है। बदगोभी, फूलगोभी, मूली बगन, टमाटर प्याज—भरी पूरी खेती देखकर कितनी खुश हो गयी मैं। बडी-बडी गोभियां बीरभूम की लाल मिट्टी म इतनी बडी गोभी की कल्पना भी नहीं कर सकती। और यहां कितनी कम मेहनत स इतनी अच्छी सब्जी होती है। इसके अलावा आश्रम क भीतर यहां-वहां नीबू, केला बेल, आम नीम आवला—तरह-तरह के पेड। पत्तों से जगह ढकी पडी है। शांत परिवेश बिना अमले की गिरस्ती। स्वामी जी लोग स्वय ही तरकारी काटते हैं आम के दिनो अचार डालते हैं चटाई पर गमछे सग आवला को धूप म सुखाकर रखत हैं। बड़ी मुस्कान मुख मुद्रा है। दाल दिन का झाड-पछार कर भडार म रखते हैं। इन सारे कामो क साथ रोगियो की सेवा परिचर्या। सारे काम घडी की सुई की ताल पर होते चले जाते हैं—चुप-चाप। मन म बिना किसी नियम के हम लिखना शुरू मानती हैं।

लौटते वक्त चारमयन्दी करती हुई निकल पडी। हम लोगों के ठहर के सामने

ही निर्वाणी अखाड़े का नि:शुल्क वाचनालय है। यहां सारे सन्यासी, यात्री बिना किसी लागत के सारे अखबार और किताबें पढ़ सकते हैं। रास्तों पर मेले के लिए अस्थायी तौर पर ऐसे और भी कई वाचनालय खोले गये थे। खुली जगह, ऊपर शामियाना, नीचे मेज-कुरसी, बिजली बत्ती, डोरी से झूलते अखबार रंगीन तसवीरें पुस्तकें—किसी चीज की कमी नहीं। जब तक कुंभ मेला लगा रहेगा, ये वाचनालय रात-दिन खुले रहेंगे। लौटते समय रास्ते पर जिस वाचनालय को देख आई, उस उदासी सम्प्रदाय के एक पंजाबी साधु ने पचास हजार रुपया खर्च करके खोला है।

निर्वाणी अखाड़े के अंदर ऊंचे टीलों पर कतार में बने झोंपड़े—फिलहाल साधु-संतों के लिए बनाए गए हैं। चारों ओर से घिरे, एक ओर को दरवाजा। दरबे से घर। लंबे दोचलिए को मानो हिस्सों में बांट दिया गया है। कोई उसमें अकेले रहेंगे, कोई दो चार के साथ। इसी बीच में काफी कुछ लोग आ पहुंचे हैं। जल्दी ही और लोग भी आ जाएंगे। आखिर में ज्यादातर जगह की ही तंगी हो जाती है। उस समय ठूंस-ठाम, रेल-पेल और आखिर लाचारी में पेड़ तले ही आश्रय लेना पड़ता है। हर झोंपड़े में ठंडी माटी के ऊपर एक एक धूनी जलती रहती है। कभी तो सोचती हूं बिना इस धूनी के रहेंगे कैसे ये लोग? धूनी की आग से घर गर्म रहता है।

निर्वाणी अखाड़े के दूसरी ओर रास्ते के किनारे 'हरिहरमठ' है। पत्थर के ऊंचे खड़े शिवमंदिर के शिखर पर आसमान को भेदते हुए मेघों तक उठ गया है त्रिशूल। भीतर है शिवलिंग। और चारों तरफ की चार दीवार पर गणेश, पार्वती, विष्णु और सूर्य की पत्थर की मूर्तियां—जयपुर के कारीगरों की बनायी हुई। मंदिर का द्वार बंद हो चुका था—लोहे के सीखचों से झांककर देवताओं के दर्शन किए। बाहर भीतर नये सिर से तेल चक चक रंग किया जा रहा था, यात्रियों को आकृष्ट करने के लिए। गुलाबी, नीला, हरा, पीला, बैंगनी रंग से पत्थर की दीवारें और किवाड़ पोत जा रहे थे।

बड़ी-दी ने कहा—'आओ मंदिर की प्रदक्षिणा कर लें।'

जरा ही दूर गयी थी कि बड़ी दी मुझे खींच लाई। बोली, 'बस। शिव मंदिर की आधी ही परिक्रमा की जाती है—यही नियम है।

मंदिर के पीछे बड़ा-सा एक दालान, सामने खुली जगह बाएं आंगन, आंगन के

पास बधा हुआ कुआ। कुए पर पुरान बरगद ने अपनी छाह फैला रखी है। दालान के सामन चौडा बरामदा। तीसरे पहर की धूप आकर पडी थी उसपर। कोना-कोनी उसी धूप म खटिया डालकर एक बूढे साधु लेट कर ग्रथ पढ रहे थे। सीढी के दोनो बाजू कनक धतूरे के पौधे। गहर बैगनी रग की बहुत सारी कलिया लगी थी। उनम स एक फूल फूला हुआ था। कल शायद हा कि यह पूजा म काम आए। कितने खूबसूरत फूल—मानो किसी न जतन से तोड लाकर एक पर दूसरे को बिठा दिया हो।

सीढी स उतरकर साधुजी के पास गयी। आखो के सामने स ग्रथ हटाकर साधु जी ने हम दखा। बोले, 'कृपा करके बैठ जाइए।' और उन्होने हाथ के इशारे से बरामदे का फश दिखा दिया। एक एक करके हम सभी बठ गए। बूढे बाबा की बातें बडी मीठी थी। यह मदिर वदात सप्रदाय का है। बोले, 'कल ग्यारह बजे की गाडी से महत जी पधारेंग। उस समय आने से उनके दशन होगे। कुभ क मेले तक वह यही रहग। सेवाश्रम तो बिलकुल बगल मे ही है—जब जी चाहे आकर उनसे बातचीत करना।'

हरिहर मठ से निकली, तो देखा रास्ते पर और एक जुलूस। फिर वही बैड पार्टी, हाथी घोडा उट गाय बकरी, साधु-सत, महत, नागा, चवर, ध्वजा, आसामोटा यानी चादी की लाठी। इनके दहरक्षियो के हाथो चादी की लाठी रहती है। य भी साधु ही होते हैं, अपनी क्षमता क अनुसार धीरे धीरे ऊपर उठत हैं। पूरी जमात मारे रास्त को देखकर बढ रही थी।

कापी पेंसिल हाथ म लिए नागा साधुओ का स्केच बनाती हुई मैं भी साथ-साथ चलन लगी। साथ चलते चलत उस जमात क ही एक आदमी से यह जाना कि ये लोग काशी से आ रहे हैं—तीन साल से इसी तरह पैदल चलते हुए। कोई हडबडी नही, हो हल्ला नही दिन म तीन चार घटे चलते हैं रास्ते के किनारे ही कही आराम करत हैं। रसोई-पानी करके खाते-पीते हैं सोते हैं—दूसर दिन फिर चल पडते हैं। आसपास कोई गाव बस्ती होती है तो वही के लोग उनकी सेवा का भार लेते हैं। इस तरह स आते-आत आज यह दल हरिद्वार पहुचा है। कई महीने यह लोग यहा रुकेंगे फिर इसी तरह से यहा से रवाना होंगे,—दूसरे कुभ तक चलते रहेंगे। नागा लोग बिलकुल नगे बदन सद हवा के झोके जैसे हड्डी छेदते हो, हाथ की छाती की पेशिया रह-रहकर बरबस काप-काप उठती हैं। गर्दे

गेंदे की माला, दोनों हाथों को दो तरफ झुलाते चल रहे हैं—जैसे नन्हा नादान बच्चा पांव उठाकर चलता हो। साथ चलते चलते उस दिन को हरिद्वार के मोड तक पहुचाकर हम लौट आइ।

अभी तक हरिद्वार नही देख सकी। खैर, फिर देखा जाएगा। कनखल में हैं—पहले इसी को खतम किया जाय पता नही किसने तो कब कहा कहा था, 'कनखल' नाम क्यों हुआ, पता है? यह ऐसी ही पवित्र जगह है कि 'कौन' ऐसा है, जिसने पुकारा और भगवान को यहां नही पाया। अभी तो नाम पडा 'कनखल'।

यह स्थान राजा के राज्य के नाम से ही प्रसिद्ध है। दक्ष राजकुमारी सती का जन्म विवाह, देहत्याग—सब कुछ यही हुआ। सेवाश्रम से निकलकर बाजार से होते हुए शहर को पार करके दक्ष घाट पर पहुच गयी। उस समय यह राजमहल था—अब तक उस चिह्न को पकड कर कौन रखे, फिर भी चौडी दीवार का विशाल फाटक सहज ही मन में उसकी कल्पना जगाता है। ऊपर की ओर निगाह किए अनमनी सी आगे बढ रही थी कि काले रंग की एक प्रौढा सुंदरी संन्यासिनी एकाएक एकबारगी हमारे आमने-सामने आ खडी हुई। खुलकर हंसी जैसे कितने दिनों का अपनापन हो जानें। बोली, तुम लोग कब आई?'

मैं अकबका गयी। कहा 'आज ही।'

'बहुत अच्छा। बहुत अच्छा।'

बडी-दी ने कहा, 'आप तो बंगालिन लग रही हैं।

—'हां जी बंगालिन ही तो हू मैं। तीस बर्षों से सतीघाट में हू। चलोगी? चलो न, मैं चलती हू।' कहते कहते आख मुह नचाकर मुह बिचकाकर—'मैं-हू-हू-म्हू कर सुर खीचती सी हमारे और करीब आ गयी।

भडक कर मैंने बडी-दी का दामन थाम लिया।

तीरथ में आई हू। नयी जगह, नयी आबोहवा, जो भी देखती, आखो को अनोखा लगता। मन में था कि अनगिनती साधु-संतो के कैसे कैसे अनोखे करिश्मे देखूगी—पहले ही दिन यह क्या, दादा वगैरह काफी आगे बढ गए थे। संन्यासिनी से कतरा कर तेज कदम से उन लोगो से जा मिली। विलंब होते देख शशी महाराज लौटे आ रहे थे। जरा मलामत के सुर में बोले, 'तीरथ को आई हैं, रास्ता घाट में ऐसा बहुत देखेंगी। बस, देखती ही जाइए, कही रुकिए मत।'

मन मे छाया-सी घिर आई। सभी अगर ऐसे ही बिगडे दिमाग के हो, तो सही

आदमी को चुप कैसे निकालूंगी ? अभी-अभी तो यह संन्यासिनी हंसती हुई जब आग आई तो कसी भली लगी, मगर लमहे में कैसा डर पैदा कर दिया !

दक्षघाट का एक अंजुरी ठंडा पानी लेकर आंखों में, कपाल पर छींटा। पक्के का चौड़ा घाट। पुराना बरगद का पेड़ किनारे को छाप कर गंगा में कूद पड़ा है। सूखी-सी गंगा पत्थर के टुकड़ों से भरी। नाम का पानी फूल और बेल के पत्तों के नीचे सीढ़ी के पास ठिठका-सा जमा है। नहर विभाग के लोग जरूरत के मुताबिक पानी छोड़ते हैं। देखकर कौन कहेगा कि यही सूखी गंगा दो दिन के बाद किनारों से छलक कर कल-कल कल कल कर उठेगी ! शिवरात्रि के यात्री यहां पुण्य स्नान के लिए आयेंगे। खुला द्वार पाकर गंगा रातों रात इस रास्ते से दौड़ पड़ेगी।

घाट के किनारे शिव-सती का अलग-अलग मंदिर। वह राजमहल क्या यहीं पर था ? हां शायद। राजमहल से सटा हुआ ही तो राजघाट रहता है। अंदर महल के रास्ते से आकर रानी और राजकुमारियां शायद इसी घाट पर नहाती होंगी। रोज सवेरे पूजा से पहले कुमारी सती सखियों के साथ नहाती होंगी। पुरानी ईंटों की चुनाई टूटा हुआ चौड़ा चौंतरा — यह सब मन में कितनी ही बातें ले आते हैं। यह इलाका बड़े बड़े पेड़ों की छाया घिरा है बैठ कर जरा सुस्ताने की इच्छा हो आती है।

दक्षघाट के बाद ही सतीघाट। यह सती वह पौराणिक सती नहीं मानवी सती हैं। यह घाट उन्हीं के नाम पर है जो इच्छा से या अनिच्छा से पति के साथ चिता में जल मरी हैं। स्मृति चिह्न के रूप में सती प्रत्येक सती के लिए एक हाथ, दो हाथ तीन हाथ ऊंचे छोटे-छोटे मंदिर बना कर रखे गए हैं। ऊंची-नीची, छोटी बड़ी टूटी-साबुत ईंटों की चुनाई अभी भी यहां असंख्य सतियों के सबूत देती है। किसी किसी का नाम-तारीख अभी भी साफ लिखी हुई है।

बड़ी-दी ने कहा 'जरा सोच देखो, इनमें से एक एक कैसी निष्ठावती थी।' इतना कहकर जितने में बन पड़ा, गले में आंचल डाल कर उन्होंने सिर टेका।

दक्षघाट, सतीघाट पार करके गंगा के किनारे किनारे कनखल को पीछे छोड़ कर हम आगे बढ़ती जा रही थीं। स्वामी महाराज चलना शायद पसंद करते हैं चलना हम भी पसंद करती हैं मगर वह जितने लंबे डग मारते हुए भाग रहे थे उनसे ताल मिलाकर चलने में हांफ उठती थी। दम के मारे बुरा यह भी नहीं

पाती थी, उलट जब पूछते, 'क्या, तकलीफ तो नही हो रही है ?'—तो जोर से चिल्लाकर कहती, 'जी, कतई नही, कतई नही।' और दबे गले से बडी-दी और मैं मसोसती।

शशी महाराज ने कहा, 'यहा से और थोडी ही दूर पर सतीकुड है। किसी दिन ले चलूगा वहा। जगल मे एक जगह गड्ढा है, अब वहा पानी जमता है। लोगो का खयाल है, दक्ष ने वही पर यज्ञ किया था—वह यज्ञकुड है। एक जगह पुरानी ईंटो की वेदी-सी मिलती है—जगल-झाडियो से ढक गयी है। ऐतिहासिक प्रमाण के लिए कौन इतनी दिमागपच्ची करे ! सहज मन से विश्वास कर लेने से ही हुआ।'

जाते जाते 'पनचक्की' आ पहुचा। जिस गगा को बाध-बाध कर शहर के अदर से ले आया गया है, उसी के स्रोत मे चक्की घुमा कर रोज बोरी गहू का यहा आटा पीसा जाता है। गगा बिना किसी काम के कलकल छलछल नाचती-गाती निकल जाए, इसकी गुजाइश नही।

लौटती बेर नहर के किनारे किनारे ही शहर मे आई। दोनो तट तरी-तरकारी के खेतो और फलो के बगीचे से भरे थे। ढेरो सब्जी, ढेरो फल। लाल मिट्टी के मुल्क मे रहती हू, हरी सब्जी की ऐसी भरमार देखकर कलेजा कैसा तो कर उठता। और रास्ते के मोड मोड पर हलवाई की दूकानो मे लोहे की बडी-बडी कडाहियो मे आग भरा उबलता भैस का दूध। जाने कितने दिनो से ऐसा दूध आखो नही देखा ! बगाल की छाती से होते हुए लगातार लडाई, अकाल, सूखा, गरीबी, दगा हगामा, मार-काट गुजरती रही। उनके सारे एश्वय को ये आफतें उजार गयी। यहा रास्तों पर देखती हू, छोटे- छोटे बच्चे बगल मे कापी-किताब दबाए पाठशाला जाते है। भिखारी बच्चे पस मागते फिरते हैं—गाल उनके लाल सरबूज, ताजे लहू की आभा फूटती है। कितनी अच्छी तदुरुस्ती ! दूध, आटा, सब्जी, घी—जो भी खाते हैं, सब शुद्ध, ताजा। जी मे होता है, बगाल के छोटे-छोटे बच्चो को लाकर यही छोड दू। कुछ दिन हरी सब्जी खाकर वे बेचारे जी जाए। खौफ से मरती रहती हू—उनके पजरे की हड्डियो को ठेलते हुए जो प्राण धुक धुक करता रहता है—आखिर वे इस दुनिया मे कितने दिनो तक टिकेंगे !

बडी-दी अड गयी हैं—जसे भी हो आज वह गगा नहाकर ही रहगी। कहती हैं—'गगा गगा करके ही तो इतनी दूर आई, और उस गगा तक जाने के लिए ही इतनी बाधा। चलो, बिना बताए ही चल दें। बस, यही तो सुनती हू—बफगला पानी, बफगला पानी—चल कर देखें तो सही, आखिर बात क्या है।'

बोली, 'दादा क्या कहते हैं?'

दादा कहेंगे भी क्या! उन्हे तो जानती हू मैं। पहले जरा एतराज करेंगे, 'जाओगी? इस जाडे म जाना ठीक होगा? सो तुम लोग सोचो। मुझे क्या एतराज है?'

उसके बाद अगर जोर से कहू हा जाऊगी। होना-हवाना क्या है? और अगर कुछ हो ही तो हो, देखा जायगा। तो दादा कहेंगे बात तो सही है। क्या होगा, नही होगा, यह सोच कर बठे रहने से क्या लाभ? तीरथ का असल तो है गगा स्नान।

हा दादा के खास कुटुब जैसें कोई होते तो कहते, 'सुन लो अब अगर नहाने से कुछ हो तो हेम बाबू कहेंगे, क्यो, मैंने तो कहा था, ऐसी सरदी म नहाना ठीक नही होगा। तुम लोग बात बिलकुल नही मानते।' और अगर किसी को कुछ हुआ हवाया नही तो कहगे 'मैंने तो यही कहा था—अरे, होना-हवाना क्या है? गगा नहाने का माहात्म ही और है।

दादा लेकिन खुद ही यह कबूल करत हैं 'सो चाहे जो कहो बहन मैं अपनी कोई राय नही देता। ताजिंदगी दूसरो के कहे पर ही चलने का आदी रहा हू मैं। कचहरी मे चलता हू मुवक्किल की बात पर, कोट म हाकिम की और घर मे चलता हू तुम्हारी दीदी की बात पर।

लिहाजा थैली मे कपडे-लत्ते भर कर ब्रह्मकुड मे स्नान करने के लिए हम हरिद्वार की ओर चल दिए।

इतने दिनो के बाद खयाल आया—इसलिए तो, चलते चलते बडी-दी से पूछा, 'अच्छा, यह जो हम कुभ मेला आए ब्रह्मकुड मे स्नान के लिए जा रहो हैं—सो यह कुभ क्या है और यह ब्रह्मकुड ही क्या है? इनका माहात्म्य क्या है?'

दादा ने कहा, नही मालूम है? तो बताता हू सुनो। समुद्र मथन तो जानती हो? उस समुद्र मथन मे, देवता और असुरो ने मिलकर जिसे किया, जाने कितना धन रत्न निकाला, लक्ष्मी निकली, जिसके बटवारे के लिए छीना-झपटी शुरू हो

गयी कि किनके हिस्से क्या पड़े ! समुद्र से वह सारी चीजें निकलते निकलते एक घड़ा अमृत भी निकला। असुर लोग भला अमृत को क्या जानें ! वे तो उस समय लक्ष्मी के मोह में पागल हो रहे थे। इंद्र ने झट अमृत का वह घड़ा अपने बेटे जयंत को देकर इशारा किया, बस, नौ दो ग्यारह हो जाओ। उन्होंने कहा नहीं कि जयंत अमृत का घड़ा लेकर भागे। असुरों के गुरु शुक्राचार्य यह देखकर चिल्ला उठे, 'अरे रे मूर्खो, पकड़ो, पकड़ो उसे। असली चीज तो यह अमृत है, वही लेकर भागा जा रहा है। यह सुनकर समुद्र का मथना छोड़कर असुर लोग उसके पीछे दौड़े। जयंत भी जी-जान से आगे-आगे भागने लगे। हम लोगों के एक वर्ष का एक दिन होता है देवताओं का। दौड़ते-दौड़ते जयंत हैरान हो गए। लगातार तीन दिनों तक दौड़ते रहने के बाद घड़े को एक जगह रखकर जरा सुस्ताया, इतने में असुर लोग बिलकुल करीब आ धमके। बस, अब पकड़ा ! जयंत घड़े को लेकर फिर हवा। फिर तीन दिन के बाद उसे उतार कर रखा। फिर असुर लोग जा पहुंचे। इस तरह से तीन तीन दिन के बाद जयंत ने चार जगह उस घड़े को उतार कर रखा। वही चार जगह हैं—हरिद्वार, ? नासिक प्रयाग, उज्जैन। इन चारों जगहों में तीन-तीन साल के बाद कुंभ होता है और हर बारह साल के बाद पूर्ण कुंभ—गर्ज कि एक बार सभी जगहों में घूम जाने के बाद। और, इस ब्रह्मकुंड की विशेषता यह है कि अमृत घट को यहां उतार धरते समय अमृत की कुछ बूंदें छलक पड़ी थीं। इसीलिए यहां नहाने के लिए लोग बड़ी दूर दूर से आते हैं, योग नहीं मानते, दिन तिथि नहीं मानते, साल भर यहां भीड़ लगी ही रहती है।'

बड़ी-दी ने कहा, 'ब्रह्मकुंड की और एक विशेषता है। पुराण में मैंने जो पढ़ा है, वही बता रही हूं, और क्या ! भगीरथ के तप से गंगा जब धरती पर उतरीं, अपने उतरने के वेग में वह स्वर्ग के ऐरावत हाथी और भी राह-बाट में जो जहां मिला, सब को बहा ले चलीं। देवता लोग घबरा गए—रोको, रोको। गंगा की गति को रोको। ऐरावत गुहारने लगा—बचाओ, बचाओ। कौन रोके गंगा की गति को ! सभी आगा पीछा करने लगे। आखिर ब्रह्मा ने झट अपने कमंडल में लेकर गंगा को शांत किया। बोले थक गयी हो। थोड़ा आराम कर लो, फिर जाना। वह गीत है न—

नारद-कीर्तन पुलकित माधव विगलित करुण क्षरिया—
ब्रह्म कमंडलु उच्छल धूर्जटि जटिल जटा पर झरिया।'

ध्यान से देखो, ब्रह्मकुंड में लोग उस पकी हुई गगा को दूध पिलाते हैं।'

ब्रजरमण चुपचाप साथ चलता है। बिना पूछे-आछे खास बोलता-चालता नही। अपनी भाषा के बारे म वह खूब सचेत रहता है। हम लोगो स बात-चीत तक मे वह जरा सस्कृत प्रधान भाषा-व्यवहार की ही कोशिश करता है। आप सदृश महानुभाव व्यक्ति मुझ सदृश क्षुद्र प्राणी को आदि इत्यादि। अब वह सिलहटी भाषा की छाया भी नही छूता।

ब्रजरमण ने कहा, 'मैं इस विषय मे कुछ अन्य प्रकार से जानता हू। भागवत और कृत्तिवास रामायण मे, विशेष रूप से महाभारत मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि नारद की स्तुति से नारायण जब द्रवित हो गए, तो उस द्रवित गगा को ब्रह्मा ने कमडल म भर कर रख दिया। उसके उपरात अपने पूर्वजो के उद्धार के लिए भगीरथ ने जब गगा का आह्वान किया, तो गगा बोली, कतिपय समस्याए हैं। पहली तो यह कि मेरे वेग को धारण कौन करेगा ? पृथ्वी पर अवतरण मात्र मे ही तो मैं गति के वेग स पाताल मे प्रवेश कर जाऊगी। और, दूसरी कि मैं जब धरती पर प्रवाहित होती रहूगी, सारे पापी-तापी आकर मुझमे स्नान आदि करके अपने पापो का क्षय करते रहेंगे। मैं उनके पापों के भार से भारी होती रहूगी।

गगा को लाने के लिए भगीरथ को बडा प्रयत्न करना पडा था। भगीरथ ने गगा की बात जो सुनी, सो वह पुन विष्णु की आराधना करने लग। विष्णु सतुष्ट हुए। बोले, चिंता न करो। गगा का वेग धारण करने के लिए तुम शिव की आराधना करो। मात्र वही गगा के वेग को धारण कर सकेंगे। द्वितीय समस्या का समाधान है—गगा मे जो पापी स्नान करेंगे, उनके पाप तो गगा म ही विलीन होगे। परतु साधुओ के स्नान करने से गगा फिर से पवित्र हो जाएगी। पाप के भार से वह मुक्त हो जाएगी। इस पर भगीरथ ने शिव की आराधना की। शिव बडे ही सतुष्ट हुए। बोले, भगवान का पादोदक अपने मस्तक पर धारण करूगा, यह तो मेरा परम सौभाग्य है। शिव मस्तक बिछाए खडे रहे। जैसे ही गगा उतरी, शिव ने उन्हे अपनी जटा म उलझा लिया। गगा शिव के जटा जाल में भटकने लगी बाहर नही निकल सकी। गगा को यह गर्व हो गया था कि उनके वेग को कोई धारण नही कर सकेगा। महादेव ने इसी हेतु इस प्रकार से उनके गर्व को चूर्ण कर दिया। अत मे भगीरथ की प्रार्थना पर शिव ने अपनी जटा को चीर दिया। मदाकिनी, अलकनदा, सीता, गगा वह प्रबल

स्रोत इन चार धाराओ मे प्रवाहित होने लगा। ब्रह्मकुड के सबध मे रामायण मे है कि ब्रह्मा ने यहा यज्ञ किया था। गगा की धारा प्रवाहित होते समय यहा आ पडी।

बडी-दी बोली, 'वही तो, वह दिखाई दे रहा है। हम कुड पर आ पहुचे। ठहरो, दो पसे का फूल, बेलपत्ता यहां से खरीद लू।'

घाट के किनार ही टोकरी-टोकरी भूरे मसले फूल-बेलपत्ता वगैरे कई छोटे लडके बैठे थे। उन्ही मे से थोडे-से फूल-बेलपत्ता लेकर मन को पवित्र किया। स्नान के बाद गगा मैया कोअज ली चढा सकूगी।

बधा हुआ विशाल घाट। शुरू से अखीर तक स्फेद सगमरमर की सीढी, चौतरा मर्दों के लिए अलग घाट, औरतो के लिए अलग। दीवार से घिरा। चाह तो मर्दों के घाट मे स्त्रिया भी नहा सकती हैं। कोई रोक टोक नहीं है। कुछ दिन पहले बिडला ने ब्रह्मकुड को गगा से अलग करके बधवा दिया है। गगा के स्रोत से पहाड से पत्थरो के टुकडे बह-बह कर आते हैं। बहुत बार बीच म चौर-सा पड जाता है। यहा भी ब्रह्मकुड के पास शायद वैसा ही चौर पड गया था। बिडला ने भलीभाति उसे बधवाकर यहा एक घटाघर बनवा दिया। नाम दिया, हर की पैडी—हर के बैठने का पीढ़ा।

यात्रियो को भी सुविधा हो गयी। इस पार उस पार दोनो ही पार से कुड मे नहा सकते हैं।

खूब अच्छी तरह मे ऊनी चादर लपेटे, चारो ओर घूम घूमकर लोग-बाग, साधु-सन्यासियो का स्नान देख करके हिम्मत बटोरकर लौटने लगी। एक जगह देखा, काच की छोटी-छोटी गोल शीशियो मे गगाजल भर कर पडे लोग खाट पर अलग-अलग रख रहे हैं।

जब से आई हू, रास्ते पर निकलते ही देखा करती हू, दोनो ओर दो साजी लटकाकर कधे पर कामर लिये टुन-टुन घुघरू बजाते हुए एक के बाद दूसरा आदमी दनदनाता हुआ चला जा रहा है। कामर की बहगी के ऊपर एक छोर से दूसरे छोर तक सिल्क के सस्ते टुकडो से बैलगाडी के टप्पर जसी छौनी कर दी है। भरी दोपहरी मे उसके नीचे धूप से सर भी बचता है। जल की साजियो को पतगवाले रगीन कागजो के फूलो से सजाते हैं—चारों तरफ लाल-नीला फुदना झूलता रहता है, सोना रूपा जैसी नकली जरी के गहने। उन्ही मे छोटे छोटे

घुघरू—चलने की ताल पर बजते जाते हैं—झुन्-झुन् झुन्-झुन् । ऐसों को मैंने पुकार कर पूछा है, 'कहां जा रहे हो?' वे रुकते नहीं चलते चलते जवाब देते हैं। —'मुरादाबाद ।'

उनके पीछे पीछे दौड़ो—'क्या ले जा रहे हो भाई ?'

बोला—'गंगा मैया को। शिवरात्रि आ रही है। शिवजी के माथे पर जल चढ़ाएंगे, भंग छानेंगे।'

सुना, ये लोग इसी तरह से चार पांच दिन की राह तै करेंगे। गंगा मैया कंधे पर ही रहेंगी माटी का स्पर्श नहीं करेंगी।

मैंने कहा, 'मान लो, ऐसी कोई जरूरत आ पड़े, कंधे पर से गंगा मैया को उतारना पड़े '

वह बोला, 'वैसे में किसी और के कंधे पर दे दूंगा। अपनी टोली में तीन चार जने हैं न !'

'रात में सोते कहां हो ?

'सोते नहीं हैं। रात दिन इसी तरह से चलते ही रहते हैं।'

जाड़ों की ऐसी रात में भला सोए बिना रह सकता है ? सभी सोते जरूर हैं— एक दूसरे के दोष का साक्षी रखकर। इसलिए अपने-अपने गांव में गुप्त बात गुप्त ही रह जाती है।

दादा ने डांट बताई तुम लोगों के मन में दुनिया का मैल है। सहज-सी बात को सहज भाव से विश्वास ही कर लिया, तो क्या ! देख नहीं रही हो, उन लोगों के साथ बिस्तर नहीं है।'

—'क्यों हर की कमर में डोरी से कसकर एक एक रजाई बंधी है। जो रात को धूनी जलाकर बैठे-बैठे ही सो लिये। स्टेशन के प्लेटफार्म पर ऐसे बहुतों को बैठे-बैठे सोते देखा है। रही मां-गंगा की बात—उन्हें किसी डाल में लटकाकर रखना कौन सी कठिन बात है ?' मगर गंगा मैया उस टोकरी में हैं किस हालत में ? या छिपी दबी रहती हैं कि देखने का कोई उपाय नहीं।

आज ब्रह्मकुंड के घाट पर उस रहस्य का समाधान हुआ। ये वाहन लोग नहा धोकर नए बाने में कांच की उन्हीं शीशियों को रुई पर बिठाकर 'बोलो बम' के बोल बोल कर रवाना हो जाते हैं। इसीलिए पंडों के हाथों खरीद-बेची चल रही है।

गगा के इसपार-उसपार तक पुल बना रहा है—पूरा का पूरा वनस्पति का एक एक पाया गाड कर। सुना, कुभ से पहले ऐसे पद्रह या सोलह पुल बनेंगे।

काम तो अभी शुरू ही हुआ है, देख रही हू, पूरा कब होगा? कुभ तो आ ही गया लेकिन हा लगातार दो महीने तक योग चलता रहेगा। कुभ मे योग का तीन नहान। सब का कहना है, अतिम योग की तरफ ही कुभ का मेला ज्यादा जमेगा और रोग, मृत्यु का प्रादुर्भाव भी उसी समय होगा। हम लोग शुरू ही मे आ गए हैं भीड भाड से पहले इस इरादे से कि पुण्य लूटकर स्वस्थ शरीर लिये घर लौट जाएगे।

दादा ने कहा, 'तीर्थस्थान मे देह रखना बडे पुण्य की बात है।'

बडी-दी बोली, 'समय समझकर न होगा तो फिर आया जाएगा। एक ही बार मे सब कुछ कर-करा लेने की क्या जल्दी पडी है ?'

मैंने कहा, बेशक ! जो देह रखते हैं, उनकी बात और है। सुना है, वह सब घूम फिर कर ही आते हैं, जरूरत समझकर देह रखते हैं, नयी देह म आश्रय लेते हैं। और हम सबके लिए है 'मौत', वह आती है और सब कुछ समेट कर निश्चिन्ह करके ले जाती है। तभी तो हम बार-बार देवी-देवता के द्वार पर माथा ठोककर मन्नत मानते हैं—जीते रह सब।'

खुले घाट म दादा का साथ छोडकर बडी-दी और मैं स्त्रियो के घाट की ओर गयी। दीवाल से घिरा घाट। घिरा है तो क्या हुआ नीचे जा थोडी-सी फाक थी उसी से बाहर से साफ दिखाई पडा—कई गोरी, नगी, मोटी स्त्रिया बडे निर्विकार भाव से पानी म आ-जा रही हैं। बडी-दी का गाव कुछ ऐसा कि हमने देखा सो देखा, जिसमे और कोई नही देखे। उनकी छोडी हुई लाज ने आकर मानो उनको घेर लिया—बने तो अपने उस दुबले शरीर से ओट देकर वह घाट की उस लबी फाक को बद कर दें। याद आ गया, कल इसीलिए शशी महाराज कह रहे थे, 'अजी पूछिए मत इन पजाबी औरतो मे भक्ति है तो क्या हुआ, लाज शर्म बिलकुल नही है। उन्ही लोगा की हरकतो से ब्रह्मकुड मे घाट को अलग से घेर देना पडा है। वहा जाइयेगा, तो देखिएगा।'

बडी दी के गभीर मुह से मुह मिलाकर घाट के अदर गयी। वैसी घप् घप् सफेद सीढी—चारो तरफ कीचड और पानी से सपसप कर रही थी। सीढी के ऊपर अलग-अलग तख्ते की खाट डाले चार घटवालिन बैठी थी—पडोसी [illegible]

होगी शायद। रुपया जमा देकर घाट बदोबस्त कराती हैं। यात्रियों के कपड़े-लत्ता की रखवाली करती हैं, कपाल पर चदन-कुकुम का टीका लगा देती हैं। नहाने वालियों मे पजाबी स्त्रियों की सख्या ही ज्यादा थी। बड़ी दी, तभी कई धक्के खा चुकी। थुलथुल शरीर, मगर कैसी बेपरवा ताकत! जरूरत हो न हो, लापरवाही से धक्के देती हुई बगल से निकल जाएगी। नहाने के लिए सलवार खोल रही है, एकाएक जाने क्या याद आ गया और बदन पर फकत कुरता डाले ही बाहर दौड पड़ी—यह घाट वह घाट करती रही, सीढ़ी से चढी-उतरी, धक्कम धुक्की की, फिर लौट आई। एक नही, ऐसी कइयो को देखा। कोई तो बाप की गोदी मे बच्चे के माथे से पानी छुलाने के लिए दौड पडी, कोई लोटा भूल आई थी गगाजल का, उसे ले आने के लिए गयी और कोई गगा को खिलाने के लिए झट दो पसे के बेर खरीद लाई। जसे सब कुछ अतिम समय मे ही याद आता हो। जो जितनी मोटी-सोटी उसी के मानो उतना—यानी हया शर्म कम।

बडी दी बोली 'अब से तुम्हे कभी मोटी नही कहूगी। यहा जो देख रही हू, तुम तो इनके आगे निरी बच्ची हो।

मैंने कहा, 'मगर रग कैसा है इनका, देख रही हो बडी दी। कच्चे सोने का रग। पानी मे उतरती हैं, तो जसे दमकता रहता है। यदि किसी तरुणी रूपवती को देखती तो मन पर रग चढ़ता। जमना के पानी मे राधाजी को देख पाती—देखती कि काले पानी पर चाद की छाया तैर रही है।'

बडी दी बोली क्या नही होगा? सलवार कुरता से सारा बदन ढके रहती हैं जभी रग की यह दमक है। जिंदगी मे कभी शायद छाती और पीठ पर सूरज की रोशनी नही लगी।'

हम लोगो की हम उम्र एक स्त्री दो सीढी पानी मे उतरकर बदन डुबाने मे तब से बार-बार उछल-उछल पडती है। बीच-बीच म उठकर घाट के कोने की तरफ दौडती है, वहा पर लकडी के छोटे-से दरवाजे को खोलकर अदर जाकर बद कर लेती है, फिर आकर कापते-कापते पानी मे बठ जाती है। आखें मिलते ही दात निकाल कर हस देती है। पगली है क्या? बदन पर एक धागा तक नही और वह दरबा हो क्या है?

बडी दी ने मेरा हाथ खीचा जा कहा रही हो? वह शायद हाथ मुह धोने की जगह है।'

लेकिन कौतूहल जा नही रहा था। मौका पाकर बडी-दी की नजर बचाकर मैंने उझककर झाका। छोटा-सा कमरा, एक कोने मे काठ-कोयला, पीतल की थाली, एक ग्लास, जमीन पर एक फटी चादर कुरते की पोटली, और कुछ मैले कबल के टुकडे।

जिसके जिम्मे कपडे लत्ते रखे थे, उस घाट वाली ने कहा, 'अजी, यह तो सेवा वाली है। गगा मैया की सेवा करती है।' गज की घाट, सीढी को धो पोछ कर साफ रखती है। फूल-पत्ता के क्तवार हटाती है और उसी दरबे मे रहती है। अगीठी मे लकडी के कोयले की आग पर रोटी सेंकती है। फटे कबल को ओढकर सर्द जमीन पर सो जाती है।

पानी मे उस समय कुछ ज्यादा औरतें न थी। टपाटप एकाध डुबकी लगाकर सब किनारे पर जा रही थी।

खडे-खडे ताकते रहने से जाडा जरा भी कम नही होने का। चलो पानी मे उतरो।'बडी-दी ने आदेश किया। कमर मे आचल लपेटकर आगे बढी। गगा को स्पर्श किया—'नमो गगा नमो गगा—माथे पर जल छिडका। उफ कितना ठडा पानी। बर्फगला पानी ही है। हाथ की उगलिया जम सी गयी, पाव को पानी मे डालते ही उठा लिया, उतरने की हिम्मत नही हो रही थी। देखा, स्तव पाठ करती हुई आखें बद किए बडी दी पानी मे उतर पडी हैं।

जबरदस्ती दोनो पावो को पानी म डुबा कर दबाया। लगा शरीर का जितना हिस्सा पानी मे डुबाया, उतना मेरा नही रहा, जाने किसने तो शरीर से घुटना तक काट लिया। कमर को डुबाया, कमर काट ली। छाती को डुबाया सास ऊपर को उठ आने लगी। अब जिऊ या मरू—टप् स एक डुबकी लगाकर पानी को झाडा। सिर जस सिर नही रहा, वहा मानो बफ का एक भारी लोदा हो। झटपट ऊपर जाने के लिए सीढिया चढने लगी। याद आया, आते वक्त दीदी ने कहा था, 'मुझे तो जाना नसीब नही हुआ, मेरे नाम से तुम्ही गगा मे डुबकी लगा लेना और मेरा बाबू, साबू—उनके नाम से भी। जाने क्या हो रहा है—जी मे शाति नही है।'

यहा गगा म आज मेरा पहला स्नान—दीदी का करुण मुखडा याद आ गया। फिर से पानी मे उतरी। दीदी के नाम से डुबकी लगाई। एक डुबकी मा के नाम से भी लगाई। डाक्टर बाबू की स्त्री—अहा, इतनी भली हैं, भला उनके नाम से न

लगाऊ ? बाबू, सावू, छोटन, मजु—इन सबके नाम से चार, और रोमू ? उसके नाम से भी एक और और न अब नही बनता। गले तक आकर दम अटक गया। इधर उधर नही होना चाहता। सास लेने के लिए हा करती—खुले मुह मे पानी घुस जाता। सास सास की जगह रह जाती। टप टप करके डुबकिया पूरी करती। दो और बाकी रह गयी, एक और। बस, तृप्ति।

ऊपर उठ आई।

बडी दी ने कहा 'कम डुबकिया तो नही हुई।' मैंने गिनकर देखा।

हाथ पाव मे जान नही रही। टूटी अगीठी पर मेवा वाली कासे के ग्लास मे पानी गरम कर रही थी। हडबडा कर वही जा बैठी।

गगा नहाया, चदन लगाना होगा। नही तो नहाने का आनद पूरा कैसे होगा? याद आता है, छुटपन मे कलकत्ता जाती तो मा गगा नहान जाया करती थी। जिद करके हम दोनो बहनें उनके साथ जाती थी। नहान के शौक स नही, बाप रे गदले पानी और तेज बहाव से किस कदर डर लगता था। तिस पर सैकडे के नन्हे नन्हे बच्चे—कान म, नाक मे घुस आते। उफ कैसा आतक! फिर भी किसी तरह से दोनो काना मे उगली डालकर आख मुह बद करके एक डुबकी लगाकर किनारे आ गयी कि बस किनारे पर यहा से वहा तक बास के छाते के नीचे चदन राडी लिए पडे बठे रहते। दोनो बहनें अपना-अपना मुह बढाकर वहा जाकर बैठ जाती। बाइ तलहथी म तिलकमाटी घिसकर पडा कपाल पर पदछाप छाप देता। मगर सिर्फ कपाल मे होने से ही काम नही चलने का, गालो पर भी होना चाहिए। इस गाल उस गाल पर कतार से सारे चेहरे पर छाप लगाकर हसी रोके नही रुकती। पडे के टिन के छोटे-से आइने मे बार-बार घुमा फिरा कर मुह देखती और हसती। उस समय गगा नहाने का यही शौक था। इतने अर्से के बाद आज मन मे फिर क्या वही शौक जागा ?

कलकत्ते के घाट पर पद छाप तिलक माटी की देते हैं। यहा लेकिन वैसी नही। हरेक कपाल पर देखा, पीले चदन से धान की बालियो का नक्शा बना है उसी म बीच बीच मे लाल कुमकुम का छोटा छोटा टीका। बहुत ही खूबसूरत शायद लकडी की काठी से आक देते होगे।

बडी दी को खीचकर पहले चदन लगान के लिए बैठी।

जाफरान मिला कटोरा भरा चदन, पानी मे घोला हुआ कुकम। घाट वाली

ने जसे ही हाथ की उगलियां मे वह चदन लिया कि मैंने उसका हाथ थाम लिया। कहा, 'नही-नही, उगली से मत लगाओ।' ऐसा कहकर मैंने माटी मे नक्शा बनाकर दिखाया—वैसा ही नकशा, जैसा औरो के कपाल पर देखा था।

घाट वाली ने हसते हुए सिर हिलाया। कहा, 'अरे हा भई हा, वैसा ही होगा, देखिए तो सही, उसने बडी-दी के सिर को बाए हाथ से जरा टेढा किया और थक्-थक चदन समेत दाए हाथ की मध्यमा को कपाल के उस तरफ दबाकर सीधे एक बार यहा तक खीचकर छोड दिया। इनका उगली को इस तरह से खीचने का ही कैसा कायदा है।—दोनो तरफ चदन के छीटे छिटक-छिटक कर धान की बाल सी बन गई। बात जब समझ मे आई। मैंने निश्चित होकर पहले म ही गरदन झुका कर सिर को बढा दिया। घाट वाली न बुदबुदाते हुए—'सुहाग भाग बना रहे, बाल-बच्चे अच्छे रहे कहकर चदन-कुकम लगा दिया। नहान का अध्याय समाप्त हुआ। ब्रह्मकुड के किनारे रास्ते के दोनो ओर दूकाना की पात। जी म होने लगा, घूम-फिरकर देखू, यह-वह चीज छूऊ छाऊ। मगर दादा साथ थे। वह नाराज होंगे। कहेंगे, 'खामखा दूकानदार को परेशान करने की आदत है तुम लोगो की।' ख्याल आ गया ठीक हो तो, पेंचदार ढक्कन वाला एक लोटा तो खरीदना है। मा ने योग का जल ले जाने के लिए कहा है। जोर-जोर से दादा को सुनाती हुई बोली 'चलो बडी-दी, जरूरत की चीजें खरीद लें, चलो।'

बडी-दी को भी कासा-पीतल के बरतनो का बडा शौक है। कोई बरतन देख लें, तो ठीक उसी की उन्हे निहायत जरूरत है, नही तो कितनी असुविधा हो रही है—यह बात उन्हे अचानक ही याद हो आती है। बोली, 'शनिवार को उपवास रखती हू, मगलवार को निरामिष भोजन करती हू—ढक्कनदार ऐसी ही एक पीतल की बाल्टी हो तो साफ शुद्ध पानी भरकर रक्खा जा सकता है। कासे का ऐसा गमला काम धाम करने मे कितनी काफियत का होता है। इस जामदानी कटोरे की बनावट कितनी अच्छी है। और इस ओर ऊची वाली को देखो, रसदार तरकारी-वरकारी रखने के लिए अच्छी है है न ? कुछ छोटे-छोटे लोटे ले लें तो अच्छा है। लक्ष्मी के आसन मे सामान रखने के काम आएग। हर वहस्पत को लक्ष्मी का व्रत रखती हू। सोना दी, सुदर दी को भी मिलेगा तो खुश होगी।

गगाजल देने के लिए गगाजली भी तो लेनी होगी। यह भी तो मुझे एक दजन के करीब चाहिए—दो समधिनें, टुनी, किरण—गाव के घर के लिए भी एक।' उनका हिसाब जो सुना हो बतन की दूकान मे खडे होने की हिम्मत जाती रही। खीचते हुए बडी दी को लेकर सामने की पतली गली म घुस पडी। पतली—उफ, कितनी सकरी। तीन आदमी अगल-बगल नही चल सकते। दूकानो म ठसाठस ऐसी सकरी गली दिल्ली के चादनी चौक म देखी है। काशी म विश्वनाथजी के मदिर म जान के रास्ते मे देखी है। दोनो ओर देखते हुए धीरे धीरे कदम बढाना बडा अच्छा लगता है। तानि चलते चलते देखते जाना! मैं इस तरह से सारा दिन बिता दे सकती हू। चलते चलते गली के छोर तक पहुच गयी। हम सभी यहा नये हैं—शहर के यहा जा निकले, किसी को भी यह पता नही।

पास ही कही दमादम झमाझम ड्रम बैंड बज रहा था। जरूर ही वसा ही कोई जलूस होगा। आवाज को ध्यान मे रखकर उसी ओर लपकी। जलूस की ही तयारी थी। रास्ता खाली, लोगो का आना जाना कम ताग रिक्शे सवारियो सहित दोनो ओर दीवाल से सटे खडे। रह रह कर सीटी बजाते हुए पुलिस निगरानी कर रही है। लोगो को रोकने के लिए सिपाही रह रहकर हाथ का रूल हिला रहे हैं।

दादा ने पूछा, यह किनका जलूस आ रहा है भया ?'

सिपाही ने कहा, 'हरिहरमठ के मडलेश्वर का। काशी से आया है इसी रास्ते से जा रहा है।'

वही, जिनके बारे मे उस दिन काले बूढे साधु ने हमे बताया था। सेवाश्रम के पास ही तो। मन खुश हो गया लगा, गोया हम लोगो का अपना ही एक दल जा रहा है। सोचते न सोचते बाढ के पानी की तरह ह हू करके जलूस ने तमाम रास्ते को भर दिया।

वही—वैसा ही—आगे-आगे वड पार्टी, उसके पीछे सोने की जरी के काम वाले शाल ओढें कधे पर चादी की लाठी लिए साधु सतरी की टोली, उसके पीछे तरह तरह के गहनो से सजे सवरे दो-दो हाथी, ऊचे ध्वजदड को गरदन पर लिये रगीन हौदे पर चादी के सिंहासन पर ठाकुर का विग्रह। ध्वजदड के ऊपर रास्ते के दोनो तरफ के दुमजिले तिमजिले मकानो से भी ऊपर पताका उड रही है। ध्वजदड से बधी मोटी डोरी को समान रूप से खींचे हुए हाथी की चाल के साथ

दोनो बगल से दो दल चल रहे है। ध्वजदड के गिरने का खतरा नही। उसके पीछे दल के दल नागा सयासी, उसके पीछे मोटे डडे वाले, फूलो की मालाओ से सजे चादी के चतुर्दोल पर बीस जोडे कधा पर मडलेश्वर। बडी धूम—तौर-तरीके के साथ। हवा मे उडती हुई सिल्क की पगडी चादर, चश्मे के काच से टकरा कर छिटकती हुई रोशनी, हाथ के रूमाल से रह रहकर कपाल का पसीना पाछ रहे है—गभीर चेहरा गेंदे के फूल के रग और पहनाव के गेरु रग से मिली एक दमदार मूर्ति।

जरा ही दूर आगे माया देवी का मदिर। जुलूस वही रुका। वहा के महत ने आकर बड़े आदर से मडलेश्वर को उतारा। माया देवी के मदिर के सामने प्रागण म एक ऊची वेदी पर दत्तात्रेय की पादुका। मडलेश्वर सीधे उस वदी की सीढी पर जा खडे हुए। पुजारी न सिगा फूका। एक मिनट दो मिनट, तीन मिनट —मडलेश्वर उतर आए। अब वह वेदी के बगल के मडप मे गए। बहुत कुछ कमरे जैसा—सामने खुला। वहा जाकर गद्दी पर बिछे गलीचे पर एक बार जरा बैठकर ही मडलेश्वर निकल आए। नियम-रक्षा की बात—विलब करने से क्या लाभ? कुभ मे ये जो लोग भी आते हैं—पहले मायादेवी के मदिर मे ऋषि-श्रेष्ठ दत्तात्रेय को यथोचित सम्मान देकर तब अपने अपने अखाडे म जाते हैं।

चतुर्दोल के पीछे कौतूहल से उत्सुक जनसाधारण—इनके पीछे पीछे मानो शहर उजाड होकर आया है—बच्चे, बूढे औरत, मर्द। हमलोगो को भी तो इसी रास्ते से सेवाश्रम जाना होगा। जाने कब भीड टूटेगी, कब हम जाएगे। उधर घडी का घटा देखकर खाने का समय—निकल न जाय। स्वामी जी लोगो को कष्ट न हो सोचते-सोचते थोडा-थोडा आगे बढते गए। कितना समय बीता, पता नही। गरदन भुकाए चल रही थी। गरदन दुखने लगी तो सिर उठाया। देखा मोड पर कटीले तारो के घेरे के उस पार से पजाबी स्त्रियो की एक टोली दूर से ही दोनो हाथ जोडकर भक्ति से हम बार-बार प्रणाम कर रही है।

हमे प्रणाम क्यो? अकचकर गयी। आगे पीछे ताका। सामने नागा साधु, पीछे नागा साधु। अनमनी-सी चलते चलते कब जाने उन लोगो मे जा मिली। तसर की साडी पहन तुरत की नहाई चदन तिलक लगाए हाथ मे पीतल का कमडल लिए बडी दी, नहा कर गगा जल लाने के लिए आज ही सबेरे वह खरीदा गया था। घर मे रखेंगी, जरूरत होगी तो बिछौना आदि म छीटेंगी-

नही तो मन शायद पवित्र नही लगता। उलट कर देखा, वे स्त्रिया अभी भी बार-बार माथे से हाथ लगा रही थी और हाथ फला कर हमारी कृपा की भीख मांग रही थी।

बडी मुश्किल से बहुत बहुत धक्कमधुक्की के बाद उस भीड से छिटक कर बाहर निकल आई। दादा अलग से चलते हुए हमलोगों पर निगाह रखे हुए थे कि हम कही भटक न जाए। अब उन्हे सुविधा हुई तो हमारे पास आए। बोले, 'आखिर लौट आइ तुम लोग' तुम लोगो का रवया देखकर मैंने तो उम्मीद छोड ही दी थी।

आज गगा का पानी कही स्वच्छ था। दो दिन के बाद शायद और भी साफ हो जाएगा। नीचे के पत्थर साफ नजर आएगे। और मछली कितनी! आज दिखाई ही कितनी पड रही हैं। हजारा हजार मछलिया आपस मे टकराती हुई दिखाई देंगी। उस दिन जो नहान के लिए उतरी, गदले पानी के नीचे मैंने मछली की ठोकर खाइ। बहुत ही बडी-बडी मछलिया देखन म बहुत कुछ रोहू जैसी, लेकिन इनका मुह रोहू से कुछ पतला। यहा के लोग इन्हे 'मासोला मछली' कहते हैं। पीतल की थाली म लडके आटे की गोलिया लिए घूम रहे हैं। पसे म दो गडा, तीन गडा—जिस यात्री से जैसा पट गया। टुप टुप करके वही गालिया फेंक कर मछलिया का खल देखत हुए मजे म घटे बिताए जा सकते हैं।

चलते चलते पुल के उस पार चली गयी। वहा से इस पार का—हरिद्वार का—अनोखा ही दृश्य। पहाड की गोदी से लगे दालानो की पात, उन्ही से सटकर सर-सर बहती जा रही है गगा—किसी मकान की सीढिया डूबा कर किसी के बरामदे को भिगोती हुई, और किसी के घर के अदर उझक उझक कर झाक्ती हुई। उस पार से उसका यह खेल देख कर मन खुशी से खिल पडता है। उस पार बडे-बडे पेडा की छाया मे हरी घासो से ढकी स्निग्ध माटी के आश्रय ने नील धारा को गगा के हाथ से छिपा कर रक्खा है।

यही से गगा के मुह को फेरकर उसे सयत करके शहर के भीतर से ले जाया गया है। लकडी के विशाल बद फाटको से तज धारा स्तब्ध है। जरूरत के मुताबिक

एक या दो फाटक खोल देते हैं गंगा के दाक्षिण्य से कई दिनों के लिए नील धारा भर उठती है। उमग भरी, अभिमानिनी गंगा, बाट-बखरा नहीं सह सकती, उसी की प्रधानता ज्यादा है। खाली, सूनी-सी नीलधारा कीचड सने सूखे पत्थरों का बिछौना बिछाए बगल में पड़ी है—जैसे बमभोला महादेव राख मले अनंत आकाश की ओर टकटकी लगाए पड़े हैं। धूसर बालू के चौर पर सूखी घास के गुच्छे सब पर जैसे सन्यासी के शरीर का वही रूखा रंग, त्याग की छाप। पत्थर के ये टुकड़े हिमालय से लुढ़कते लुढ़कते, घिसते घिसते अपना रूप गवा कर एक ही आकार के गोल होकर जानें कब यहां आ पड़े हैं। बड़ी दी ने कहा, 'देख रही हो, लगता है, किसी ने चुना कर इनको यहां सजा करके रखा है।

नीलधारा के उस पार नीले आसमान में नीले पहाड़ों की पांत। कैसा गंभीर और शांत परिवेश। लोग कहते हैं यह तपोभूमि है। वास्तव में तपोभूमि ही है। नीलिमा का यह आकर्षण खींचते खींचते मन को कहां ले जाता है, उसे लौटाने की बिलकुल इच्छा नहीं होती। लगता है, पतंग के धागे की तरह उचके से मन के धागे को बस छोड़ती ही चली जाऊं।

गंगा के उस पार भीड़, इस पार शांत। उस पार महलों की कतार, धूप की तेजी, इस पार पेड़ों की छाया, पक्षियों का कलरव, उस पार घर-घर में जोत की जगमगाहट, इस पार कोमल घासों का नम आसन पकड़ कर रखने के लिए माया बिखेरता है।

दादा ने कहा, 'इस तपोभूमि में कितने कितने महापुरुषों की साधना है—कितने युगों से चली आ रही है वह। आखिर उन सबकी उस साधना का प्रभाव जाएगा कहां ? वह तो हवा से घुली-मिली है।' सोचती, वही प्रभाव क्या सबको छू जाता है ?

उस पार मंदिर—मंदिर में सध्या की आरती के घड़ियाल बज उठे। धीरे धीरे इस पार से चली आई चौड़े बधे चौंतरे, गंगा की छाती से लगे ब्रह्मकुंड से आधे मील के फासले तक।

हरे पत्तों के रंगीन फूलों से भरे दोनों में घी के दिए जलाकर स्त्री-पुरुष पानी में बहा रहे हैं। कोई तो बहाते हैं गंगा मैया के नाम से, और कोई बहाते हैं बिछुड़े प्यारे मुखड़े को याद करके उसी के निमित्त। एक के बाद दूसरा, इस तरह दोनों बहते जाते हैं धारा के बहाव में दीये की क्षीण लौ आंखों से ओझल हो जाती है।

डा ही करुण, बडा ही मधुर है यह दृश्य ! किसीका दोना यदि अटक जाता है, या कि नजरो के सामने दीया बुझ जाता है, मन मे बडी चोट लगती है उसे, एक दबी आशका से चुपचाप अकुला उठता है वह।

बडी दी ने दोनो हाथों फूलो के दो दो दोने उठा लिए। बोली, 'पिछली बार आई थी, तो, उनके नाम बहाया था इस बार एक और बढ गया। न, अब नही बहाऊगी।' यह कहकर बडी-दी ने एक दोने को रख दिया, दूसरे को सिर से लगाकर पानी पर रख दिया। और हथेली की लहरा से दोने को बढाती हुई बोली, इस बार सिर्फ गगा मैया के नाम से ही बहा दिया।

माया देवी का मदिर, मायापुरी नाम—सात पुरियो का एक पुरी। पीठ स्थान भी है। उस दिन बाहर से एक झाकी ली, देवी के दशन नही हुए। आज उनका दरस देखना है। बडी-दी के मदिर के भीतर के देवी देवताओ की ओर ही ज्यादा झोक है। अभी स एक एक करके दशन का अध्याय पूरा नही किया तो फिर यह नौबत आ जाएगी कि भीड मे आदमी देखें कि देवता माटी के टीले पर छोटा-सा मदिर। पहले यह मदिर शायद और भी छोटा था। हमारे साथ जो स्वामी जी थे वह पहचान ही नही पा रहे थे कि यह वही मदिर है या नही। बोले, 'बहुत दिन पहले आया था, फिर नही आया। लेकिन उस समय तो ऐसा नही था। ठहरिए जरा पूछ लू।'—कहकर वह पास ही छडी-दार थे, उनसे पूछने चले गए।

एक किसी भक्त ने मदिर की परिक्रमा के लिए चारो ओर से मदिर को ढके बरामदे से कुछ बढा दिया है। छडीदार ने बताया सेठजी की बीमारी किसी भी उपाय से अच्छी नही होती थी। उन्होने मन्नत मानी थी। जब वह चगे हो गये तो उन्होंने पच्चीस हजार रुपय की लागत स मदिर को कुछ बढवा दिया। और दीवार पर आप दस महाविद्या का जो चित्र देख रहे हैं, ये बगाल के किसी चित्र-कार से बनवाए गए थे।

सुनकर नाज हुआ। गौर से देखा। दस महाविद्या के दस अगा मे कूची की खोच आखा म बाछ-सी बिधी। बगाल का परिचय इनसे न जुडा होता तो शायद इतना नही होता।

बडी दी ने आवाज दी, 'इधर आओ देवी के दशन कर लो।' देवी तो एक ही पक्ति म तीन चार हैं। मायादेवी कौन-सी हैं ? छडीदार ने हाथ की अगुली

बता कर कहा 'जो मूर्ति ठीक बीच म है, वही माया दबी हैं।

मायापुरा के पास ही गीताभवन। नयी इमारत, अभी-अभी, कोई आठ महीने पहले बनकर तैयार हुई है। भीतर भजन गाये जा रहे थे गीता पाठ चल रहा था। बाहर लाउडस्पीकर से सारा इलाका गूज रहा था। अदर प्रवेश करते ही एक बडा सा हाल, पूरे फर्श पर कालीन बिछी है, बैठने मे आराम महसूस होता है खास कर जाड़े के दिना म। हाल के उस छोर पर श्वेत पत्थर की बनी विष्णु की आदम-कद मूर्ति-हसती हुई सी आखें—किसी नय कारीगर की सृष्टि। हाल की दीवारो पर भी पुराण की कहानियो क आधार पर बनी तसवीरें। कुछ दीवार चित्र, कुछ रिलीफ का काम जगह-जगह लाल-काले रग से निशान खिचे। ताकि देखत ही लोग आसानी से समझ जाए।

रात हो आयी। जल्दी लौट जाना होगा। पीछे वाले शार्ट कट रास्ते को पकडा, सूखे नाले क किनारे किनारे। सरकार की तरफ से यहा पर गगा से उठा-उठाकर लकडी क छोटे-बडे तख्ते जमा किए जा रहे थे। लछमन झूला के तरफ से जगल से काट-काटकर ये लकडिया गगा म फेंक दी जाती हैं। बहाव म बहते-बहते सीधे यहा चली आती हैं।

चलती हुई बार-बार गिर गिर पड रही थी। लकडी की ठोकर खाकर। कांटो भरे एक जगली पेड के नीचे थोडी-सी जो खुली जगह थी वहा पर धूनी जलाए एक मुस्तडा सन्यासी बैठा था। बदन पर लाल फतुही वाला एक जवान उसके पैरो म लगा पड गया था। मैंने सुना साधु हाथ हिला हिलाकर उससे कह रहा था, देवता हो आप देवता हो, मैं सबको बस मे कर सकता हू। शनि, केतु, राहु को गला घोट कर मार दे सकता हू—लक्ष्मी जी के पैरो बेडी डालकर उन्ह गया की तरह खूटे म बाधकर रख दे सकता हू—सब कर सकता हू। मगर बच्चा, पहले खर्च करेगा, तभी तो फल पाएगा!'

कुभ म हसदेव अवधूत पधारे हैं। सप्तसरोवर के तीर पर टिके है।

बडी दी ने कहा, बडे सिद्ध पुरुष है य। खूब नाम है। उनका दर्शन बडे सौभाग्य की बात है।'

सप्तसरोवर हरिद्वार से बाहर शहर में एक छोर पर है। कोई एक सीधा रास्ता नहीं। जो लोग पहले वहां जा चुके हैं उनसे सुना तांगे से उतरकर काफी दूर तक पैदल जाना पड़ता है।

बहुत दर दस्तूर के बाद तांगेवाला ले जाने को राजी हुआ। भरी दोपहरी में चिलचिलाती धूप सर पर लिये सिद्धिदाता गणेश का नाम लेकर आखिर निकल पड़े।

शहर तक तो तांगा मजे में चला, उसके बाद ही ऊबड़ खाबड़ कच्चा रास्ता शुरू हुआ। कोई पगडंडी और कोई बैलगाड़ी चलने लायक। पानी और कीचड़ से थक थक किसी में दो-दो कदम पर घास और गड्ढा।

तांगेवाले को रास्ते का पता नहीं। उसने कहा था, पता चल जाएगा। उसे उम्मीद थी, रास्ता पहचानने में कोई दिक्कत नहीं होगी। तांगेवाला इस शहर के लिए नया था। ये सारे के सारे प्रायः वैसे ही हैं। पश्चिम पाकिस्तान से आये हैं—रिफ्यूजी। पहले इनमें से बहुतेरे बहुत अच्छा-अच्छा काम करते थे। यहां आकर हाथ पसार कर मांग खाने के बदले यही रोजगार किया है।

बड़े भले हैं ये। इतने दिनों तक इनके साथ चलकर देखा था। दादा तो तांगे पर सवार होते ही तांगेवालों से बात चीत शुरू कर देते हैं। पहली बात ही यही पूछते, 'कहां से आये हो? बाल बच्चों को साथ लेकर आये हो कि वे सब मुल्क ही में हैं?'

बाल-बच्चों का जिक्र आते ही बात-चीत जम जाती। सुख-दुःख की बहुतेरी कहानियां—तमाम रास्ता मन हमदर्दी से भरा रहता। तांगे से उतरते समय विदा होने वाले बंधु का करुण सुर गले के स्वर में फूट पड़ता।

कल ही की बात एक तांगे पर चढ़ी थी। दादा ने अपनी आदत के मुताबिक उससे बातचीत शुरू कर दी। तंदुरुस्त और खूबसूरत आदमी रूखे बाल बदन पर फटा कोट बातों के बीच बीच में अंगरेजी बोलता, साफ उच्चारण। पता चला, फ्रंटियर के एक बड़े दफ्तर में वह हेडक्लर्क था। बोला किया क्या जाय? औरत बच्चों के लिए रोटी तो जुटानी है।' यहां नौकरी कौन किसे दे? पल्ले जो पूंजी थी उसी से यह तांगा और घोड़ा खरीदा। दिन भर में जो मिल जाता है, उससे दोनों जून की रोटी चल जाती है। छोटा भाई इंजीनियर है। उसे एक कपड़े की दूकान में नौकरी मिल गयी है। बोला इरादा है आगे चलकर दोनों

भाई मिलकर के कोई और रोजगार करेंगे।' मतलब कि जरा सभल जाने पर कोई स्वतन्त्र काम करेंगे।

आज का तागेवाला भी वसा ही नया आदमी था। अभी तक यहा का रास्ता घाट ठीक ठीक नही जानता। इतने रास्तो को देखकर भटक गया। आस-पास आदमी जन भी नही कि पूछ ले।

काफी दूर निकल आए थे। पीछे भी नही लौटा जा सकता। हिम्मत बटोर कर तागे वाले ने पदल चलने वाले पतले रास्ते पर ही घोडे को हाक दिया। बस ऊचे नीचे रास्त मे पैदल चलने म कोई तकलीफ नही। पर गाडी के पहिए एक बार ऊपर चढत एक बार नीचे उतरते, हचकोले से लकडी की छौनी से टकराकर खोपडी फटन की नौबत। डर से जान जाने लगी। दोनो हाथो से सबने अपना अपना सिर थाम लिया। लगे तो उगलिया मे ही लगे, सर की तो खर रहे। इधर बारिश का जो पानी जहा तहा जमा था, चक्के से छलक छलककर कपडे म बूटे काढन लगा—छोटे-बडे, नाना आकार के। हवा मे सप-सप चाबुक की फटकार होने लगी थोडी दूर बढकर घोडा अड गया एक कदम भी बढने को तैयार नही।

तागे वाला हिम्मत हार वठा। लगाम थामकर हाथ म छडी लिय नीचे उतर पडा ? बोला, अब यहा से पैदल चले जाइए। देखिए न, इस रास्ते से तागा कैसे जाएगा।' बारिश के पानी के नालो पर कुछ ही दूर-दूर पर दो हाथ लबा, आठ उगुली चौडा बास का छोटा-छोटा पुल। बात भी सही थी, उन पर तागा कैसे जाएगा ?

साईस ने कहा यही पर सप्तसरोवर है। आग बढकर देखिए, मिल जाएगा। लेकिन वहा, सप्तसरोवर का एक सरोवर भी तो आखो से नही दिखाई दे रहा था।

फिर भी हम उतर पडे। घुटने तक कपडा बचाकर कीचड-पानी मे छप्-छप करके चलने लगे। बडी दी बोली, 'नाक की सीध मे चलो। इतनी दूर खीच लाने के बाद हसदेव क्या बीच रास्ते मे छोड देंगे ?' पतली डगर से ही चलते रहे। डगर के बाई ओर कुछ टूटे मकान। जो भी मकान दिख जाता, उसी की ओर हम दौड पडते। सोचते, यही शायद हसदेव मिल जाए। लेकिन जाकर देखा, घर खा खा कर रहा है, न आदमी न आदमजाद। कोई टूटा

हुआ तो किसी मे ताला पड़ा, कोई जगल झाडिया से ढका। उनम म एक मे कुछ आवाज सी सुनाई पडी। हड़बड़ा कर वहा गयी। हा आदमी हो ता! एक क्या खासे कई जन। बडा-सा मकान चूना-सुरखी मे दीवारा की मरम्मत हो रही थी। माली सामने क बगीचे की घास को छीलकर फेंक रहा था, नौकर-चाकर जग लगे लोहे पीतल क बडे बडे कडाहो को धर पकड कर इधर मे उधर कर रह थे। चीख पुकार व्यस्तता आग्रह और उल्लास स मन उछल पडा। तो, हसदेव यही हैं। उनके भक्त बेशुमार हैं वे लोग उन्हे अकेला रहने देंगे भला? सुना है अभी-अभी आकर डेरा डाला है। शायद हो कि अभी तक सब कुछ सवर नही पाया है। लेकिन सरोवर? सप्तसरोवर के सात न सही, कम से कम एक जिस विराट सरोवर की कल्पना करके आयी हू, वह कहा है? उस रोज मणिबहादुर की स्त्री रैवादी आयी थी। उन्होंने कहा था, बहन, पानी के पास ऐसी सद हवा है कि कुछ न पूछो! अगर वहा जाओ तो गम कपडे ज्यादा ले जाना।' सप्तसरोवर के पानी की तलाश म चारो तरफ निगाह दौड़ाई मन मुरझा गया। झट अपने को सम्हाल लिया। खैर, पानी न देखा न सही हसदेव तो मिल गए जिनकी आशा लिए इतनी दूर आयी।

बडी-दी उलट-उलट कर पीछे देखने लगी। दादा पीछे रह गए थ। एक ही साथ अदर जाना चाह रही थी महात्मा के दशन मे फिर आगे पीछे क्यो? बोली 'उन्हे बुलाओ न, जरा कदम बढा कर आए।

कलेजा धक धक कर रहा था। हसदेव! पता नही कैसा देखगी उन्हे! पहला दशन जिसमे नष्ट न हो। अपने को तयार कर लिया।

फाटक के अदर गयी। पूछताछ के लिए पहले कौन जाएगा? दादा को ही जोर जबरदस्ती भेजा। बाबू किस्म के एक आदमी जसे ही दालान के बरामदे पर आए दादा ने झट जाकर उनसे पूछा हसदेव के दशन कब मिलेंगे? बडी दूर से आ रहे हैं हम लोग। सुनकर उन सज्जन ने भवे सिकोडकर आख छोटी कर ली— हसदेव! ये फिर कौन हैं? मैं नही जानता।' यह कहकर उन्होने हाथ उलट कर दिखाया।

हताश से काठ हो गयी। दादा ने भरोसा दिया, 'कोई बात नही। ढूढकर आखिर निकालूगा ही। जाएगे कहा?

हम फिर वहा से आगे बढे। इस बार रास्ते मे खेतिहर किस्म के दो चार आदमी मिले। कोई घास लिये जा रहा था किसी ने ले रक्खा था सूखी लकडी का गटठर और कोई अगोछे मे नमक आटा बाधकर शहर से लौट रहा था। जो भी मिलता, उसी से पूछती, हसदेव कहा है ?

खडे होकर ध्यान से सुनते। सुनकर जरा देर सोचते। सोचकर कोई सामने कोई पीछे, कोई दाए कोई बाए रास्ता दिखाकर फौरन बतराकर चल देता। हम लोग चरखी की तरह घूमते रहे। जब जिसकी बात सुनकर समझती कि यही शायद ठीक जानता है, ठीक बता रहा है। बस, उसी तरफ मरती-पडती दौड पडती। एक बार एक की बात पर आगे जाती, फिर दूसरे के बताए पीछे लौट आती। अब नही अनिश्चित पथ चलना और नही सहा जाता।

मन ही मन नाराजगी, गाली गलौज की उथल-पुथल मचाने के बाद भी जब हसदेव का कोई पता नही चला, फिर इतनी दूर की दूरी तै करके ताग पर सवार होने की सोच जब रुलाई-सी छूटने को आयी ठीक उसी समय बना ही एक राहगीर सामने आकर खडा हुआ। उसने कहा, हसदेव की खोज मे हो ? वह जो ऊचा-नीचा पथरीला बाध है न, उसी के बगल मे सप्तसरोवर है। उसी के किनारे बहुतेरे महात्माओ ने डेरा डाल रक्खा है। वही जाकर पता करो, हसदेव मिल जाएगे।

औरो की तरह यह भी अदाज से ही कह रहा है या सच कह रहा है क्या जाने। अभी-अभी तो एक के कहे बाध के पास तक जाकर लौट आयी। फिर उतनी दूर जाए ? उधर तमाम कटीली झाडिया भरी है। काटो की चुभन से अभी भी पावो मे कितनी ही जगह चिन् चिन् कर रही है।

दादा ने कहा, 'इतना चक्कर जब काटा ही, तो एक बार और। आखिरी बार। पकड पकडकर बाध पर चढी।

—'ए दादा जी बडी-दी जल्दी करो दौडो।' मैं जोर से चिल्लाई।

स्वच्छ सलिला नीलगगा सादे बालू के बीच से धीरे धीरे बह रही थी। हवा के एक ठडे झोके ने मुह पर शीतल हाथ फेर दिया।

गगा के इस पार ठीक बाध के नीचे ही रेती, उस रेती पर पीले-पीले पुआल की अनगिनती छौनी। छोटे-बडे झोपडा मे कौन से मे हसदेव है कोई पता नही।

इतने इतने तबुओ मे से ढूढ निकालना, यह भी तो एक झमला है। किसका मुह देखकर निकली थी आज।

हसदेव को किसी न आखो नही देखा था। किताब के पन्ने पर छपी तसवीर की जो याद थी, दादा, बडी दी को उसी का भरोसा था। इसके अलावा मन मे और भी एक आशा थी उनके डेरे से शोरगुल का पता दूर से ही चल जाएगा। जाने कितने लोगो की भीड होगी वहा यात्रियो के आने-जाने की धक्का-मुक्की, झडा-पताका—जरूर ही खास तडक भडक होगी। वह नजरो से कैसे बचेगी भला ?

हर झोपडे मे अलग से ही पैनी नजर डालकर चलती गयी ज्यादा करीब जाने मे डर लगता था। कौन साधु कैसे हैं क्या पता ! कोई अचानक ही बिगड उठें कही ? साधुओ मे दुर्वासा भी तो रहते हैं, सुना है !

खप्पर के कमडल मे जल लेकर एक साधु गगा से निकलकर चले जा रहे थे। वह बोले, "आप लोग बहुत आगे निकल आए। यहा से गगा के किनारे-किनारे पीछे की ओर चले जाइए। वह वहा देखिए बडे-बडे पत्थर पडे हैं न, जहा से अभी-अभी एक बगुला उडा, वही पर पीछे एक पेड है। वही पर जाकर पता करिए हसदेव ऐसी ही जगह मे रहते हैं।

हम पलटकर उलटी तरफ को चलने लगे। इस बार दादा आगे, मैं और बडी-दी पीछे। नाक मुह मे हवा का झोका लग रहा था बाल बिखरकर उडने लगे साडीका आचल और ऊनी चादर को बदन पर कसकर लपेटा।

आगे-पीछे कितनी दूर-दूर तक फूस के झोपडे खडे थे—गगा के उस पार, इस पार बीच के चौर पर, उधर उस जगल के पास। मालूम नही कौन रहते हैं वहा।

तबू खोजते हुए हमारी तरह यात्रिया के और भी दो चार दल जिनके दर्शन करने के लिए आए थे, उनकी खोज मे घूम रहे थे।

एकाएक बडी-दी रुक गयी। आखो पर हाथ की छाप डालकर जाने दूर का क्या देखने लगी। हलके हरे रग की घासो से ढकी जमीन ढालू होती हुई गगा की ओर उतर आई है। उसी ऊची जमीन के एक ओर एक लबा पतला कोई पेड उसी की झिर झिर छाया मे मानो चौकी पर बैठा है। देखा, दादा वाध के ऊपर गये जूता उतार उनको प्रणाम किया।

तो, यही हसदेव हैं क्या ? बड़ी दी ने सिर हिलाकर हामी भरी और तेज़ी से कदम बढ़ा दिया।

हसदेव इधर को पीठ किये बठे थे। प्रणाम किया। एक भक्त ने खजूर के पत्ते की चटाई लाकर घास पर डाल दी। सटकर हम सब हसदेव के आमने-सामने होकर उसी पर बठ गए।

कान ढकन वाली लाल टोपी लाल गेरुआ का पतला अलखल्ला, हाथ मे लाल डोरिया गमछा लाल टुक-टुक चेहरा—काले कबल पर हसदेव बठे थे।

फुसफुसा कर बड़ी-दी ने कहा, 'इनके रूप का वणन बहुत सुन चुकी हू। देखन म पहले और भी सुदर थे। अब शरीर टूट गया है।'

कबल के पास सादी खोली वाले दो पतले तकिए कोने म हुरे रेशम की फूलधारी—किसी भक्त के हाथो जतन से काढ़ी गयी होगी। शायद दोपहर को यहीं विश्राम कर रहे थे।

इम खुली और मद हवा म विश्राम हो सकता है ? जय-जय राम' कहते हुए एक साधु सामन आ खड़े हुए। गोया एकाएक आविर्भूत हो पड़े यहा। देखकर मन खुशी से नाच उठा। अर हा आज आते समय इन्हीं को तो देखा था, कनखल के उस बरगद के पास।

सवाश्रम स बाहर निकलकर एक मोड घूमते ही वह बरगद मिलता है। उसी क नीचे मे तागा चल रहा था। मैं पीछे की तरफ उल्टी ओर मुह लिए बैठी थी। जाड़े से सिकुडी सिमिटी-सी एडी चोटी मोटी चादर लपटे। देखा, नगे बदन एक साधु तज़ी म चले आ रहे हैं। कसी ओज भरी भगिमा ! प्रौढ़, सावला रग, लबे, मजबूत, उन्नत कधे पर बघछाला, हाथ म त्रिशूल खजर—हसी से उगलता धीर-गभीर मुखड़ा—पौरुष की प्रतिमूर्ति-से। हम सब भी आ रहे हैं वह भी आ रहे हैं—देर तक उन्हे आमने-सामने चलते देखा।

वही तो हैं ये। मन मे डूबकर देखा अब तक हलके तौर पर इन्हीं की तो छाप पड़ी थी। 'जय जय राम' कहकर वह ज्यो ही आ खड़े हुए, हसदेव ने हरिहर' कहकर उनका अभिवादन किया। साधु ने क्या तो कहा मैं तन्मय थी, सुन नही सकी। हसदेव ने हाथ बढ़ाकर उन्हें दूर का एक झापड़ा दिखा दिया—'जय जय राम' कहकर वह दृढ़ता से कदम बढ़ाते हुए उसी ओर चले गए।

सामने की खुली जगह मे मजूरे पुआल के अटिए खोलकर झोपड़े तैयार कर

रहे थे। हंसदेव ने हंसते हुए कहा छप्पर पर बिछाने से पहले पुआल को ठीक से झाड़ लेना।'

कुंभ के नाते यहां बहुतेरे भक्त आएंगे। कुछ दिन टिकेंगे। साधु-संतों को भी जगह दी जाएगी, जो चाहेंगे। इसीलिए एक कतार से झोपड़े खड़े किए जा रहे थे। एक सभा मंडप भी बनेगा जहां एक साथ काफी लोग बैठ सकें—बातचीत, आलोचना, आदेश-उपदेश के लिए।

हाथ में नक्शा लिये इंजीनियर घूम रहे थे। हंसदेव ने उन्हें बुलाया। जमीन पर निशान लगाकर बताया, मंडप अर्धचंद्राकार होगा, यहां पर इस तरह से— कहते-कहते डोरिया गमछे को कमर में लपेट कर स्वयं खड़े हुए। जाकर अपने हाथ की छड़ी से माटी पर लकीर खींचते हुए बताया—

एसे—यहां तक।

बच्चे की नाई खुशी से बाग-बाग। एक एक बार आकर बैठते और खुशी से 'वाह-वाह' कर उठते। फिर उठ कर जाते और जमीन पर दूसरी एक लकीर खींच देते। बोले, 'दस-एक दिन में सारी झोपड़ियां बन जाएंगी।

बिजली का डायनामो भी लगेगा। साथ में सपत्नीक एक गुजराती सज्जन आए हैं। यह भार उन्होंने ही उठाया है।

अहाते के अंदर डाल-पत्ते फैलाए सेमल का एक विशाल पेड़। उस पेड़ की ओर ताक कर हंसदेव ने कहा इसी पेड़ की चोटी पर झंडा चढ़ाएंगे उस पर बिजली की बत्ती जला करेगी—बड़ी दूर से दिखाई पड़ेगा। कह कर वह खुशी से झूमने लगते।

हंसदेव पंजाबी हैं। बोलते हिंदी ही हैं किंतु बंगला मजे में समझ लेते हैं। इनके ज्यादा से ज्यादा भक्त बंगाल के ही हैं। बंगाल के रसगुल्ले में उन्हें बड़ा प्रेम है। बोले, बंगाल के रसगुल्ले खाकर ही तो मुझे यह बीमारी हुई। अब तो मिठाई खाने की एकबारगी मनाही है।

दादा ने कहा आपके बारे में हमने सबसे पहले दीक्षापतिया की हेमलता देवी की किताब में पढ़ा।

हंसदेव हंसे— ऐसा ? वाह !

दादा ने कहा, उन्होंने आपके बारे में बहुत बहतरीन ढंग से लिखा है। उसी समय से आपके दर्शन की इच्छा हो आई थी। वह इच्छा आज पूरी हुई।

बडे आग्रह स व्रजरमण ने 'साधना और शुद्धि' की चर्चा चलायी।

कोई चर्चा छेड दो तो सबको सुनन का मौका मिल जाता है। गोकि उत्तर एक प्रश्न का वही एक ही होता है, फिर भी बार बार सुनने म लाभ है। जानें कब, किस क्षण जानी हुई बात का ही एक नया अथ मन की आखो म कौंध जाता ह सदा के लिए मन म गड जाता है।

हमदेव न कहा, एक सेठ जी के दो नौकर। एक अपनी तनखा हर महीने ले लेता है और दूसरा कहता ह जी अपने पास ही रहने दीजिए, जरूरत होगी तो माग लूगा।' अब बात एसी है जो नौकर मालिक पर इतना भरोसा रखता है, मालिक का मन उस पर प्रसन्न रहेगा कि नहीं ? तनखा तो आखिर मालिक दगे ही काम किया है, वेतन नही मिलेगा ? मजूरी तो जरूर मिलेगी। लेकिन साधना निष्काम करो, कामना करोगे तो महज मजदूरी मिलेगी।

मणि बहादुर, रेवान्ती और मौसी जी—रवा नो की मा आइ। मौसी को देखन ही मा की याद आ जाती ह। मौसी जी थली म भर फल ले आइ थी। कहा शास्त्र के अनुसार साधु ओर दवता के दशन खाली हाथा नही करना चाहिए। उन्होंने फला का सहज कर चौकी पर रखा कि हसदेव उन्हे हाथ स दबाते दबाते इस हाथ उस हाथ म लोकन लग। छोटे बच्चे के हाथ म रबर की गेंद आ गयी हो जसे।

गुजराती सज्जन की स्त्री वही पर खडी थी। हसदेव न उनसे उन फला को काट दन का कहा। वह गुजराती महिला तबू के अदर से कलई की हुइ पीतल की एक थाली और छूरी ले आई और वही बैठ कर फला का काटन लगी।

मुझे ख्याल हो आया, मरी मा होती तो धुला कपडा पहनती छूरी को धोती, जहा बठकर फला को काटना था उस जगह पर गगाजल छिडकती और तब किसी पानी भर बतन म फला को डुबाकर काट काट करक पत्थर की थाली म सजाकर रखती।

सप्तसरोवर का जल ले जान के लिए मौसी जी अपन साथ बतन ले आई थी। मैंन पूछा, सप्तसरोवर है कहा ?

मरी बात सुनकर हसदेव न कहा यहा की यह जो गगा है, इसी का नाम ह सप्तसरोवर। पहले किसी युग म शायद हो कि यहा सात धाराए रही हो। अब वह सब लुप्त हो गयी है। सात धाराए सात तरफ स आकर यहा गगा म मिली

थी। वशिष्ठ आदि सात ऋषियों ने यहां तपस्या की थी। राजा परीक्षित को स्वयं शुकदेव जी ने यहीं इस सप्तधारा के किनारे भागवत सुनाया था। परीक्षित ने अपनी देह भी यहीं रखी थी। बड़ा पवित्र स्थान है।

जगह सचमुच ही बहुत सुंदर है। एकांत, खुली। शहर की कोई हलचल यहां नहीं पहुंच पाती। दूर के ये पहाड़ कितने पास नजर आते हैं! वही नीला पहाड़, वही नीला आसमान, गंगा का नीला जल। उसके किनारे से चमकते गेरुआ वस्त्र पहने कर अकेले एक संन्यासी चले जा रहे थे। विस्मय से विमुग्ध मन उनके पीछे दौड़ पड़ा। अपलक आंखें तकती रहीं।

हंसदेव ने कहा, 'मैंने इसीलिए इस जगह को चुना है। हरिद्वार में भीड़ किस कदर है, कितने लोग! मेरे यहां भी बहुतेरे लोग आएंगे, पर इस जगह की बदौलत यहां भीड़ जमी नहीं लगेगी।'

केवल हरिद्वार में ही पूर्णकुंभ में हंसदेव इस बार को लगाकर सात बार आ चुके।

तो उनकी आयु इस समय क्या होगी?

उन्होंने बताया, 'कुंभ मेले का हिसाब तो मालूम है, इसलिए बताया। आयु का लेखा तो कभी लगाया नहीं।'

बड़ी-दी ने पूछा, 'कुंभ में स्नान करने का फल है—क्या यह सत्य है?'

'विश्वास हो तो सब सत्य है। यों समझो, इतने सम्प्रदायों के इतने साधु इतना कष्ट करके आखिर इसी एक जगह में क्या इकट्ठे होते हैं—कितनी दूर-दूर से, कैसे दुर्गम पहाड़ की गुफा से—आखिर किस आकर्षण से? राजे महाराजे तो करोड़ों-करोड़ रुपये खर्च करके भी इतने साधु संतों को एक जगह इकट्ठा नहीं कर सकते। इन लोगों को चूंकि विश्वास है, इसलिए तो आते हैं।

एक बात और है—सहज भाव से समझो—यह है साधुओं की कांग्रेस। सभी आते हैं, आपस में भेंट मुलाकात होती है, एक लक्ष्य से एक जगह में सब इकट्ठे होते हैं।'

दादा ने पूछा, 'जी, लोग जो माता पिता का तर्पण करते हैं, वह क्या जगह पर पहुंचता है?'

—'यह भी वही विश्वास की ही बात है। विश्वास से सब संभव है।'—हंसदेव इतना कहकर चुप हो गये। जरा देर में सिर उठाकर बोले, 'एक बात मान लो

न जिन माता पिता ने तुम्ह न्ह बच्चे स इतना बडा किया, तुम्हारी भूख प्यास म तुम्ह अन जल दिया तुम्हारे लिए कितने कितन कष्ट उठाए उनके नाम से तुमन एक दिन तपण ही किया, इसम कसा काई कष्ट तो नही है।'

उन गुजराती महिला ने कट फ्ला की भरी थाली सामन रखी। सदेव न अपन हाथ से सबको बाटा खावी म थोडा-सा लेकर उन्होन खुद भी खाया। बोले, 'जाओ मेरा अन्नपूर्णा का भडार देख आओ।

पुआल स छाए थापडा म एक भडार—बोरावदी आटा, ढेरो टिन घी, आलू-गोभी की टाकरिया से ठसाठस भरा। मेले के समय राज हजारा आदमिया का भडारा हागा। उसी की तैयारी।

ऊची छोनी का बहुत बडा रमाई घर बन रहा था गगा के किनारे। वहा होने से पानी जुटान मे उतनी कठिनाई नही होगी। ऊचा ऊचा चूल्हा—एक एक वेला मे न जाने कितनी रोटिया सेकी जाएगी!

हसदेव ये कई दिन तबू म थे। आज उनके लिए जिस झापडे की छौनी हो चुकी उसम चले जाएगे। नया थापडा बन जाने से बडी खुशी थी उन्हें। बोले, 'जमीन पर ही बिस्तर लगा दा। पुआल की माटी गद्दी लगा देन से सर्दी नही लगेगी।'

छोटी-बडी हर बात पर उनकी निगाह है। स्वय ही देखते हैं सुनत है हिसाब करत है। सौंदय की आर से भी बेखबर नही। झापडे का दरवाजा जरा टेढा हो गया है, हम लोगा स बात करत-करत ही न जान कितनी बार उधर देखकर शिकायत की, और फिर खुद ही तसल्ली भी कर ली—'किया क्या जाय। बडे अनाडी हैं ये।'

समय हो आया। अब उठना चाहिए। लाल रग की एक बस वहा खडी थी। इन्ही लोगा की थी। काम काज से शहर जाती है। हाट बाजार से सरो-सामान ले आती है। ड्राइवर ने गाडी स्टाट की थी किसी काम स फिर शहर जाना था। हसदेव ने ड्राइवर को आवाज देकर हाथ के इशारे से रोका। हम लोगो से पूछा, 'तुम लोग लौटोग कसे? इस बस म चले जाओ।'

मैंने कहा, 'जी जरूरत नही पडेगी। गाडी है। तागेवाला वहा जगल के पास हम लोगो का इतजार कर रहा होगा।'

बोल ही रही थी कि तब तक तागवाला सामने आकर खडा हो गया।

उम इम गात दा बडा नाज मा हा रहा था कि उमन इम ढूढ निकाला। बोला, वेला बीत गयी। मिहरबानी करा और दर न करें।'

— जा रहे हो। घर जाओ। वहा अगर रहा में असुविधा हा, तो यहा चल आना। यहा बहुत डेरे पडे हैं। आखिर तुम्हीं लोगा की सवा क लिए ता हैं। यह कहकर हमदेव न हम विदाई दी।

इच्छा मा लिय जाकर ताग पर मवार हुई।

ताग पर मवार होन स पहले एक बार पीछे मुडकर देखा— दूर जान कहा खो गये मर वह माधु जी। जी म आया काश एक बार और दख पाती उन्ह !

फाटक का पार करत हुए देखा दीवाल स मट घुटन मोड कर दो बदर बैठे है। उन पर नजर पडते ही शशी महराज पीछे हट आए। बोले 'इन कमबखत बदरा म होशियार रहिएगा। नही नही हसी की बात नही। अभी अवश्य उतने ज्यादा बदर यहा नही हैं पकड-पकड कर उनका और कही भेज दिया गया है। कुछ ही दिन पहले तक इतन ज्यादा थे कि ! और उनके उधम की आपसे क्या कहू ? एक दिन मैं रास्ते से आ रहा था। आश्रम के करीब आ पहुचा था कि दो तरफ से अचानक दो बदर आ पहुचे और मुझे खीचकर नाले म गिरा दिया। मेरी तो अक्ल गुम हो गयी—क्या करू, कुछ सोच ही नही पा रहा था। आखिर निर्वाणी अखाडे के लोग दौडे उन बदरो को भगा करके मुझे नाले म स निकाला। बाद म बेशक बात समझ म आयी कि बदरा ने मुझे पकडा क्या था। जाडे की वजह से मैंने अपने दोनो हाथ चादर के नीचे छाती स लगा रखे थे। बदरो ने सोचा मैं कुछ खान की चीज ले जा रहा हू।

सुविधा होती कि शशी महाराज को साथ लकर घूमन निकल पडती। रास्त म चलते चलते ही उनसे बहुत सारी बाता की जानकारी कर लेती। बहुतरी घटनाओ से जुडी हुई है यह जगह सुन देख अतीत वतमान को मिला कर गूथ लेन स स्मृति मन म स्पष्ट रहती है। शशी महाराज दुबले-पतले से स्नेहशील व्यक्ति हैं। सीधे ज्ञान के ही रास्त चलते है। सहज बात का सहज अथ—विचार-बुद्धि की दूध पानी सी मीमासा। भक्ति रस की बाट म सब कुछ बह नही जाता।

इसके अलावा उनके आचरण में दरदा दिल का परम मिलता है। हम तीरथ में आए हैं, हम लोगों का आना विफल न हो, तरह तरह के आवर्तों में पडकर हम ऊब-डूब न करने लगें—इन बातों के लिए सदा सचेत रहते हैं वह। वहां क्या देखना चाहिए, कैसा देखना चाहिए क्या जानने की जरूरत है, कितनी जरूरत है—पहले से ही हर कुछ का एक ढाचा सा बना लेते हैं। इसलिए नाहक की खोज ढूढ, अकुलाहट-उतावलापन हडबडी हर कुछ के हाथ से सहज ही बच जाते हैं हम।

शशी महाराज यो आसाम के हैं। दिनों तक सिलचर में रहे थे। बडी दी और दादा से उनका परिचय बहुत दिनों का है। कितने दिनों के बाद फिर से भेंट हुई। बार-बार वह घूम फिर कर आ जाते हठात एकाएक याद आ गए बहुतों के बारे में पूछते—फलां कैसा है ? अमुक क्या कर रहा है ? बचपन की बातें करते। जहां शैशव बीता, उस जगह की स्मृतियां मन में तिर आतीं। कहते, 'वह जगह अब कैसी हो गयी है ? वैसी ही है ? उफ, हम लोगों के समय में वहां जैसा जंगल था ! और वह भैरवी ? कब गुजर गयी वह ? उस बार की बाढ में मैं अक्सर ही मुठिया भर चावल दे आया करता था। वह एक टीले जैसी ऊंची जगह में झोपडी में रहती थी। बाढ जो आई,तो वह जगह एक टापू-सी बन गयी। गला भर पानी। चार-पांच दिनों तक मैं वहां जा नहीं सका। पानी जब कुछ कम हो आया, तो चावल लेकर गया। पूछा, ये दिन कैसे आपने खाया क्या ? भैरवी ने कहा, 'खाती क्या ?' मैंने कहा, आखिर खाये बिना रही कैसे ?' वह बोली 'अरे, इतने दिनों तक इतना चावल खाया, गिनें चुने कुछ दिनों भगवान का नाम खाकर नहीं काट सकती ?'

भैरवी जात की चंडालिनी थी लेकिन, उसकी बात की जरा सोचिए। उसे चावल देकर लौटने लगे, तो वह अड गयी। बोली, 'जब आ गये हो तो आज खाये बिना जाने नहीं दूंगी। चावल ले आये हो, मैं पकाती हूं, आज सब एक भोजन करेंगे। मेरे साथ एक लडका और था। घर के चारों तरफ केले के बहुत-से पेड थे। भैरवी ने चावल और केले की तरकारी पकायी। आपसे क्या बताऊं साहब, उस दिन मानो मैंने अमृत खाया। इतने दिन बीत गये, मगर वह स्वाद अभी तक मुंह से लगा है।

शशी महाराज की ऐसी छोटी-मोटी स्मृतियां सुनने में बडी अच्छी लगतीं। संन्यासी के मन की मामूली आदमी जैसी यह कोमलता अंतर को छू जाती।

बडी दी की बेहद इच्छा थी कि उनकी जबानी श्रीमा की कहानी सुनें। बोली, 'किताबा म जो पढती हू उससे जी नहीं भरता। उनक शिष्य, जो उनके बहुत निकट रह हैं एस किन्ही को पाती नो बठकर उनस सुनती।

मा शशी महाराज राममय महाराज का लिवा लाय। उन्होंने छुटपन म ही श्रीमा से दीक्षा ली थी। उनक होठा पर शिशु की हसी गले का स्वर बडा मीठा। कहने का ढग भी बहुत अनोखा—त मय हाकर श्रीमा की कहानी कहते। कहते-कहत भावावेश म जान कहा चल जाते माना मा की गाद म बठा न हा शिशु चूमता हो। मुग्ध होकर सुनती उनकी कहानी म मा को मानो माफ दखती। उनकी प्रतिच्छवि जसे हा। यह एक दूसरी तरह की सृष्टि है। इसका माधुय ही और है। भीतर का वह याग अनुपस्थित होने पर ऐसा मधुर रूप निखर ही नही सकना।

राममय महाराज न कहा उस समय क्या खाक समझा। बच्चा था, लाड प्यार म ही समय कट गया। छोटा बच्चा जानकर मा ने भी अपन बहुत निकट खीच लिया था। मा के जा बडे बडे शिष्य थे वे कहा करते थे छोटा होन के नाते ही राममय जीत गया। मा किसी सहज ढग से हमे कितनी बडी-बडी शिक्षा देती थी। मा का जन्म दिन था। वह उस समय जयराम बाटी क एक छोटे से घर मे थी। जन्म दिन के अवसर पर बहुत सारे शिष्य आये हुए थे। मा सबको अपने हाथो पका चुका कर खिलाती थी। सारा काम-काज खद ही करती। मैं जब पहली बार मा क पास गया था। तब सोचता हुए जा रहा था कि पता नही जाकर मा को किस रूप म दखूगा। जाकर देखा, मा घर बुहार रही है—निहायत ही मामूली 'मातमूर्ति जैसी घर घर देखा करता हू। दिना तक बात मेरे मन म चुभती रही सोचा गया मा घर बुहारे रह नही सकती थी! कम से कम उस समय? अपने बचपन के मन म मा की वह झाडू लगाने वाली मूर्ति को मैं सहज रूप मे नही ले सका। यह बात गडती रहती थी। सो जन्मदिन के दिन मा न मुझसे कहा य लाग आये है। जाआ तो गाव स कुछ दूध क इतजाम करके ले आओ खीर पकाऊगी।' मैं कधे पर घडा लिये फौरन निकल पडा। घर घर की खाक छान कर आठ सेर दूध का बदोबस्त करके लौटने म देर हो गयी। लौटा ता सबने डाट बताई इतनी देर क्यो की? मा तब से बैठी है। मुह मे एक बूद पानी तक नही डाली।

मैं अदर गया। देखा, चौकी पर पाव लटकाए मा वठी है। सवन मा की पूजा की थी। मेरे जाय ही मा वाली, आ गये ! इतनी बेला हो गयी तुमन कुछ खाया नही है। अव जल्दी स अपनी पूजा समाप्त कर ला।'

पास ही एक पात्र म सफेद और लाल कमल थे। कौन सा लू मैं सोचन लगा। मा ने कहा, लाल कमल ला देख लो, उसम तुलसीदल तो नही लगा है ! मा ने ही मत्र पढ दिया। उसी मत्र का दोहरा कर उनके चरणो मे कमल चढा कर प्रणाम किया। मा वाली, बैठो। दो कमल और लो। आज ज्ञान और गिरीन मौजूद नही हैं। वे तुम्हे बहुत मानत है। उनके नाम स तुम्ही मुझे कमल दो।

यही ज्ञान-दा पहले पहल मुझे मा के पास ले गय थ। उफ, ज्ञान दा स दो वार मैंने जा डाट खाई है ! एक बार मैंने मा की ही थाली म खा लिया। मेरा कोई दोष नही था मैं छाटा था, स्कूल म पढता था। आस पास ही गाव शनिवार रविवार को आकर मा के पास रहता।' सोमवार को एक वारगी पढाई खत्म करके ही घर लौटता। मेर माता पिता शुरू-शुरू मे असतुष्ट जरूर रहत थे। लेकिन आगे चलकर कुछ नही कहत थे। पढने लिखन म भी सबसे अच्छा था, उसके लिए भी कुछ कहन की गुजाइश नही थी। हा, तो मा जानती थी कि शनिवार को मैं जाऊ गा। उन्होन प्रसाद अपनी ही पत्थर वाली थाली म ढक्कर रख दिया था बोली, 'पहले खा लो। कब के खाए हुये हो।

मैं तुरत खाने के लिए बठ गया। इतन म ज्ञान दा आ पहुचे। बोले, तेरी अक्ल की बलिहारी मा की थाली का जूठा कर दिया !'

मा न लेकिन अपनी थाली नही बदली। बोली ता क्या हुआ ? बच्चे न खाया, उससे थाली जूठी होती है भला ! तुम उसे डाटा मत ज्ञान, मैं उसी थाली मे खाऊगी।'

एक बार और। मैंन शरत् महाराज की थाली झूठी कर दी। शरत् महाराज वही आये थे, जयराम बाटी। अक्सर वहा आकर रहते थे। उस समय जो देखा वह और ही एक रूप था। शरत महाराज बगल के कमरे म रहते थे। रोज सबेर मा का प्रणाम करने जाते थे। मुझे भेज कर दिखलवा लेते, जा, देख आ तो, मा अभी क्या कर रही हैं ? मैं देख कर उन्हे खबर देता—मा अभी तरकारी कूट रही हैं या घर बुहार रही है, या आटा गूध रही हैं, या बतन धो रही हैं, या मासाला पीस रही हैं—ऐसा ही कुछ। वह मुझे होशियार कर देते, खबरदार मा

से हरगिज कुछ मत कहना हाँ ? चुपचाप खा लेना और आकर मुझको कह जाना। यही उम्र मैं तब बच्चे इसलिए मुझे सावधान कर देते थे। आखिर जब आकर उनसे कहता कि अब माँ उठी हुई हैं ना 'ठीक कह रहा है न, ठीक कह रहा हूँ न' कहते हुए शरत महाराज उठते। बड़े लंबे-तगड़े आदमी थे शरत् महाराज, कम आदमी जब झूमते हुए माँ को प्रणाम करने आते, तो स्थिर रहना दृश्य होता। शरत महाराज अपने उस विशाल शरीर को माटी में लिटा देते और माँ को साष्टांग दंडवत करके लौट आते।

शरत् महाराज से स्वामी विवेकानंद की कितनी कहानियाँ सुना करता था। बैठकर वह हमें सुनाया करते थे।'

एक बार का जिक्र है स्वामी विवेकानंद शरत महाराज और स्वामी अभेदानंद किसी पहाड़ की ओर गये। स्वामी जी की तबीयत खराब हो गयी। उन्होंने बैंगन खाने की ख्वाहिश जाहिर की। शरत महाराज और स्वामी अभेदानंद निकले। घूमते घामते देखा, एक संपन्न आदमी की घरबारी में काफी बैंगन फले हैं। उन दोनों ने मकान मालिक से दो बैंगन माँगे। मगर वह आदमी एक बैंगन भी देने को तैयार नहीं हुआ। शरत क्या करें लौट आये। यह किस्सा जो सुना, तो स्वामी जी ने कहा तुम लोग मेरे कैसे गुरुभाई हो जी ! मेरे लिए चुरा कर दो बैंगन नहीं ला सके ? शरत महाराज स्वामी अभेदानंद को लेकर फिर उस गृहस्थ के यहाँ गये। इस बार यह राय-सलाह हुई थी कि एक व्यक्ति तो मकान मालिक से 'परमार्थ प्रसंग' छेड़ देगा, और दूसरा उतने में पटापट दो बैंगन तोड़कर चलता बनेगा।

ऐसे ही कितने मजेदार किस्से।

और एक बार की बात। तीनों पहाड़ भ्रमण को ही निकले थे। दिन भर भोजन मयस्सर नहीं हुआ। घूमते घामते एक धनी आदमी के दरवाजे पर पहुँचे। लेकिन भीख की बात तो दूर रही, उस आदमी ने भला बुरा सुना कर उन्हें भगा दिया। स्वामी अभेदानंद ने कहा ऐसे काम नहीं चलेगा। तुम लोग हँसना मत दूर खड़े होकर तमाशा देखना। जानते नहीं इनकी रीत क्या है—

गढ़वाल सा दाता नहीं,
लाठी बगैर देता नहीं।

मैं लाठी दिखा कर भीख वसूलूगा। उन्होने माथे पर कसकर पगडी बाधी, हाथ मे लबी एक लाठी ली। और फिर उसी गढवाल के यहा पहुचे। जाकर दरवाजे पर लाठी ठोक कर जोरो की हुमकी दी कि मकान मालिक भागता आया और उनके पैरा पड गया। अभेदानद ने एक-एक बार लाठी को ठाका और बोले, आटा लाओ, घी लाओ, मिठाई लाओ—और वह आदमी दौड-दौड कर अदर जान लगा। और सामान ला ला कर उनके पैरो के पास रखन लगा। अभेदानद जी सब कुछ बटोर कर स्वामी जी के पास ले आये। फिर जो तीना जने हुसे कि मत पूछिए!

इन्ही शरत् महाराज की थाली म एक दिन मैंने खा लिया। मा ने उनको खिला-पिला कर उसी थाली मे मुझको खाने के लिए दिया। मा ने खाने को दिया, सोचने की क्या पडी थी? मैं बैठ गया लेकिन नसीब मे तो डाट खानी लिखी थी। उस बार भी ज्ञान-दा के ही सामने पड गया।

राममय महाराज के इन ज्ञान-दा से भी मा की बहुतेरी कहानिया सुनी। वे सारी कहानिया अलग से लिखने लायक हैं। मा साक्षात भगवती थी। किंतु इस मा का एक अलग ही रूप था। ज्ञान महाराज ने कहा, सारे शरीर मे दग्-दग् खुजली भरी थी। चार महीने बिस्तर पर पडा था। मा अपने हाथो खिलाया करती जखमो को धोकर दवा लगा दिया करती। मछली खाना मुझे पसद नही था। मा थाली मे परोसे हुए भात के अदर काटे निकाल कर मगुरी मछली रख देती थी और हर कौर के साथ खिला दिया करती थी। क्यो? तो उससे लहू साफ होगा।

सुनती और सोचती मा का यह रूप था, जभी तो वह मा थी। जभी तो आज भी उनके बच्चे सफेद बाला भरा सर लिये उनकी चर्चा करने म निरे शिशु-से बन जाते हैं। यह चीज कौन किसे समझाए?

तबू मे बैठ कर इन किस्सो मे सारा दिन कट गया। पूरा दिन कैसे कट गया, पता नही चला। लेकिन हाथ-पाव का अब बिना हिलाये काम नहीं चलने का। ठड से जम-सी गई थी।

शहर म चलने लगी। दल के दल यात्री रेलगाडियो से आ रहे थे। रास्ता म हर समय उनकी भीड लगी।

एक बुढिया ताग से उतर कर हाउ माउ करने लगी—'मुझ यह जान कहा ले आया बाबा, और फिर जाने कहा से जाना चाहता है।

ताग वाला उसे छोडने का तैयार नही। पीछे-पीछे दौडता हुआ आया। बोला, 'पहले किराया दे दो फिर जहा जी चाहे जाओ।'

बुढ़िया आचल की गाठ को कस कर पकडे थी। बोली— किस गरह के पाल पडी रे बाबा ! डाकू के पल्ले पड गई। ऐ बाबा, बाबा '

दादा आग बढ कर बोले, 'क्या बात है बूढी अम्मा, क्या बात है ? बुढिया बोली, दया न बेटे, स्टेशन मे अपने दल से छूट गयी। को नगर से आ रही हू। बहुत दिन पहले यहा एक बार और आई थी। जानी हुई जगह हो ता है। इसस कहा, मुझे वहा ले चलो। मगर यह मुहजला तागेवाला मुझे जान कहा-कहा घुमा कर मार रहा है।

तागे वाले ने कहा, 'क्या बताऊ हुजूर, सवा दा घटे से यह बुढिया मुझे सिफ चक्कर खिला रही है। कहा जाएगी, सो नही बताती। सिफ कहती है चलो चला।

दादा ने पूछा, 'आप कहा जायेंगी ?

'जगह का नाम ठिकाना तो नही जानती बेटे ! मगर उस बार जो आई थी, वह रास्ता याद है। एसा ही चौडा रास्ता, एसा ही बडा। उसी के बगल से एक गली गई है। उसी गली मे जाना पडता है।'

दादा सोच मे पड गए। चौडे और बडे रास्ते तो कितने हैं उनके बगल से पतली गलिया जानें कितनी हैं। बुढिया की गली कौन-सी है ?

बुढिया को और धीरज नही धरा जा रहा था। दादा के दोनो हाथ कसकर के पकड कर बोली, मुझे मेरी जमात मे पहुचा दो न बेटे। वे लोग भी मेरे लिए कितनी चिता म पड गए होंगे !'

दादा ने पूछा 'किनके साथ आयी हैं ? मद सूरत तो कोई साथ मे होगी उनका क्या नाम है ?'

'उसका नाम तो नही जानती बेटे। लेकिन उससे क्या होता है ? मैं नही जानती हू तो क्या दल की बाकी स्त्रिया तो जानती हैं। वही तुम्ह उनका नाम बता देंगी। तुम पहले मुझे वहा ले चलो '

दादा हताश आखो से ताकने लगे।

बडी-दी ने कहा, 'एक काम करो। बुढिया को घाट के किसी बुजुग पडे के जिम्मे कर दो। वह पडा इसके सगी साथियो को ठीक ढूढ निकालेगा।'

बडी-दी और मैं हरकी पैंडी के पास पुल पर इतजार करती रहीं। लोग आते जाते रहे। आटे की गोलिया पानी मे फेंकते रहे। हम लोग खडी-खडी मछलियो का खेल देखती रही।

सीढी के कोन मे एकाएक भैरवी और वष्णवी म बतकही शुरू हो गयी। थुलथुला-सी वष्णवी होठ दबा कर हसती हुई आग को उसका देती, भैरवी लहकती हुई-सी उछलने लगी।

गालियो की जो झडी लगी तो बात समझ मे आयी—असल मे कुछ देर पहले दोना भरवियो मे झगडा हो गया था। एक मदान से भाग खडी हुई तो यह वैष्णवी वक की जगह आकर दूसरी की आग मे घी के छीटे देने लगी। झगडे का रसीला स्वाद—सहज ही कौन छोडना चाहे।

नाटी-सी काले रग की भरवी। उम्र कम, हाथ मे त्रिशूल-खप्पर गले मे रुद्राक्ष की माला, औचक ही मुझे खीचती हुई ले चली। बोली, 'वह देखिए, वह जा रही है। वह जो घाट की सीढी से ऊपर चढ गई। उसी दईमारी को हम पर रश्क होता है। मुझे भीख ज्यादा क्यो मिलती है। अजी, मैं हू, असली भैरवी। आठ साल हो गये, यहा हू। वह तब थी कहा? मैंने क्या देखा नही है? वह तो पगली की तरह रास्ते पर खडी रहती थी। महज दो साल से तो भैरवी बनी है। फिर इतना रौब क्या गाठती है? मुझे भीख ज्यादा मिलती है मैं पूछती हू, इससे तुझे क्या? मैं गुसाईं घर की बेटी हू, गुसाइ घर की बहू। नवद्वीप के पाचूगोपाल गुसाईं। नित्यानद मदिर के सेवायत—उनकी बेटी मैं। कौन नही जानता है? तारकेश्वर का नाम तो सुना है न? पाप मुह से बोलना नही चाहिए—कहकर उसने आवाज धीमी कर ली और नजर को अपनी ओर करके उगली से अपनी छाती दिखाई। कहा, 'माने, वही तारकेश्वर मुझ मे दिखाई दिए हैं न।

लहजा यह, गोया यह सब किसी के जानने की बात नहीं। निहायत ही पुण्य का जोर है कि मैं जान गई। हाथ से उसने मानो दवात खुल गए दरवाजे को धम्म से बंद कर दिया। बोली 'अब लोग अगर मुझ मे कुछ देख पाए, मुझे अगर कुछ ज्यादा ही दें, तो वह चिढ़े क्या, कहिए ? मैं कहती हू, अजी, मैं क्या तुम लोगो जैसी भिखमंगिन हू ? दिन रात भीख मागती फिरती हू ? मैं हू असली भरवी। गेरुआ पहनती हू तौर-तरीके से बाघ छाल देती हू कपाल पर सिंदूर-भस्म लगाती हू, मतर पढ़कर हाथ मे खप्पर लिये निकल पड़ती हू। दस कोस, बारह कोस—कोई दूरी नही जानती—बस एक झाक म मागकर चली आती हू। उसके बाद फिर मतर पढ कर साज सज्जा को उतार देती हू। बस, दिन भर के लिए हो गया फिर नहीं। और, क्या तो मुझसे तेरी तुलना ? एँ।'

मैंने कहा, 'तुम गुसाइ घर की बहू हो, तुम्हारे पति '

— हा, मेरे पति भी साधु होकर मेरे साथ ही आए हैं। मैंने तारकेश्वर की कही न, वहा धरना दिया था, वह मुझ मे प्रकट हुए फिर घर मे रह सकती थी भला ? मगर हमे तो अकेली भी नहीं आना चाहिए न। औरत हू, जानती ही हैं, अकेले आने से लोग अफवाह उड़ा देंगे घर स निकल गई। मैंने पति से कहा तो उपाय क्या है ? मरा तो अब घर म रहना नहीं चल सकता। समझ-बूझकर पति भी चले आए। यही रहते हैं। मैं अलग रहती हू। बीच-बीच म भेंट होती है।'

'बाल-बच्चे ?'

— बच्चे भी थे। दो दो लड़के। उन्हे गगा के पानी मे रख दिया। मजे म हू—निश्चित।'

दादा लौट आए। उन्होने जल्दी करने की ताकीद की। आखिर तक वह उस बुढ़िया को एक पड़े के मारफत पड़ो-से पूछ-ताछ करते-करते उसके दल मे पहुचा आए। बुढ़िया की जमात का पडा आकर ले गया।

रात हो गई।

बड़ी-दी की थली मेरे पास थी। इकन्नी दुअन्नी से भरी—दिन भर की दान-खैरात के लिए। उसी का खोलकर मैंने खुले जी से एक मुट्ठी इकन्नी-दुअन्नी भरवी के खप्पर म डाल दी। हाथ बढ़ाकर खप्पर मे पैसे लेती हुई भैरवी ने चारो तरफ देखा। भाव ऐसा कि वह दईमारी कानी गई कहा ? कहीं

आम पास हो तो देखो कि मैं ज्यादा भीख क्यो पाती हू।

बिछौने के अदर रात मे भी पाव गरम नही होते। ठडे पावो को पेट म सिकोडे आखिर कहा तक रहा जाय ! आज पैरा मे मोजे पहनकर सोऊगी।

बक्मा खोलकर बडी-दी ने दादा का एक जोडा मोजे निकाल कर मुझे दिये। पिछले साल सर्दियो म अपने हाथो बुनकर दादा को दिये थे। मोजो को हाथ म लेकर हत-बुद्धि-सी हो गई—बार-बार उन्हें घुमा फिरा कर देखा—पहनूगी कैसे ? एडी, पजा—कही की कोई सही बनावट नही—पतला, मोटा। वह मा के हाथ के बने बोतल झुलाने वाले छीके जैसे।

बडी दी डपट पडी, 'अजी, पावो मे डाल कर देखो तो सही। यह मिलिटरी मोजा है—नया पैटर्न !'

बेचारे दादा !

आज ही सबेरे बाता के सिलसिले मे स्वामी अनुभवानद ने श्रीमा का जिक्र करते हुए कहा था, 'मा थी सर्वंसहा।' सोचने लगी, मगर दुनिया मे मेरे इन दादा जैसा सर्वसहा कौन है, जिन्हे खुशी खुशी य मोजे पावो में पहनने पडे और पहन कर हाव-भाव से यह भी दिखाना पडा कि उन्हें पहन कर वह खुश हुए हैं।

अखाडो मे इस समय रोज़ ही भडारे हो रहे हैं। साधु-समाज मे यह एक सामाजिक परिपाटी है। हर अखाडा भडारा जरूर करेगा। जिससे बनता है, यानी जिसकी जैसी सामर्थ्य है वह 'सामूहिक भडारा' देता है—यानी कि जितने साधु साधु सप्रदाय हैं, उसमे सबका न्योता रहता है। और, जिससे इतना नही बन पाता, वह व्यष्टि भडारा' देता है। उसमे हर अखाडे से आनुपातिक तौर पर दो चार साधु न्योता पूरने आ जाते हैं।

'छडीदार' को पहले से ही भडारे की सूची सूचना दे देनी पडती है कि कौन-कौन-सा भडारा करना चाहता है। वही समझ-बूझ कर दिन निश्चित करता है

कब-कब 'समष्टि' और कब कहा 'व्यष्टि' भडारा होगा। एक दिन मे दो-तीन जगह 'व्यष्टि भडारा' हो सकता है, लेकिन एक दिन मे एक से ज्यादा 'समष्टि भडारा' होने से दोनो ही पक्ष को असुविधा होती है। निमत्रित लोगो को जहा दो दिन का भोजन मिलेगा, ऐसे मे उन्ह एक दिन का नुकसान होता है और जो खिलाते हैं खाने वालो के दो जगह बट जाने से उनके सामान की बरबादी होती है। सही तादाद का ठीक ठिकाना नही रहता।

स्वामी अनुभवानद ने कहा, हम लोगो को भी भडारा करना पडता है। हम लोग हर कुभ मे ठाकुर के जन्म दिन के दिन भडारा करते हैं। हम व्यष्टि भडारा' करते हैं, 'समष्टि भडारा के लिए हमारे पास पसे कहा ? 'व्यष्टि भडारा' का पैसा ही तो किस कठिनाई से जुटता है। लेकिन इस बार तो यहा इतना ज्यादा भडारा हो रहा है कि फाक हो नही है बिलकुल। पहले से ही रोज रोज की सूची बनी पडी है। छडीदार कोई दिन ही नही दे पा रहा है। आज गया था—बडी मुश्किल स आखिर बीस तारीख को एक दिन खाली मिला। सोच रहे हैं, हम लोग उसी दिन भडारा कर देंगे। इस बार एक एक अखाडा पाच-पाच छह-छह बार भडारा कर रहा है। उन्हे फिक्र क्या है ? छह बार ही क्यो, चाह तो पूरा महीना भडारा कर सकते हैं। बेहद धनी अखाडे हैं, विशाल जमीदारी। यह निर्वाणी अखाडा—सबसे धनी है। इसके मडलेश्वर कृष्णानद उस बार केदार-बदरी गए—दो सौ चेलो के साथ गए। एक ही यात्रा मे पचीस हजार रुपए खच कर आए। सुना, इस बार कृष्णानद छह भडारा देंगे। क्यो न दें ! भडारे का खच कुछ उनका तो लगता नही। करोडपती, लखपती गुजराती मारवाडी भक्त आते हैं—सारे वष की कमाई के बाद भडारा देकर साधु भोजन कराकर पाप धो जाते हैं। शास्त्र म ही तो लिखा है—साधुओ को खिलाने से पुण्य होता है।'

कई अखाडो की एक पचायत होती है। पचायत के प्रधान होत हैं महत के ऊपर मडलेश्वर—सबसे बडे प्रधान। काफी बडे पडित ही मडलेश्वर चुने जाते हैं। पचायत होती है 'कायकारिणी समिति। सारा अधिकार उसी क हाथ होता है मडलेश्वर पचायत के हाथ का खिलौना होते हैं। महत लोग चेला मूडते हैं, मत्र देते हैं और मडलेश्वर देते हैं सन्यास। मौजूदा मडलेश्वरो म सबसे बडे विद्वान् हैं जीवानद और सबसे बडे धनी हैं कृष्णानद।

उस दिन इन्ही कृष्णानद के अखाडे मे भडारा देखने गई थी। 'भडारा हो रहा

है, भडारा हो रहा है सिर्फ सुनती ही रही हू—भडारा होता क्या है, यह आखो देखना चाहिए। दूर दूर मे होते हैं और दोपहर मे। समय पर जा सकना सभव नही हो उठता है।

निर्वाणी अखाडा पास ही है। आज वही भडारा है। गुना और धा-पीकर दौडती हुई वहां पहुची। आकर देखती क्या हू कि इतने मे लोहे के सीखचो वाला विशाल फाटक बद हो चुका है। अदर से ताला पडा है। सारे निमत्रित लोग पहुच गए हैं फिजूल की भीड को रोकना जरूरी है।

हम लागो की तरह और भी बहुतरे लोग फाटक के सामने इकट्ठे हुए थे। साधु दर्शन से महापुण्य होता है फिर एक साथ इतने इतने साधुओ का दर्शन—भडारे जैसा ऐसा सुअवसर और कहा मिलेगा? इसीलिए जहां भी भडारा होता, रास्ते के दोनो ओर ठसाठस भीड होती—पुण्यार्थी लोग धूप-पानी नही मानते—इतजार म घटा खडे रहत।

लेकिन इस तरह से रहा भी कब तक जाय? मोटी-सोटी तीन मारवाडिनें तो आचल बिछाकर धूल पर लेट ही गइ। उधर फाटक के उस पार मह फेरे खादी का आसा-सोटा लिए स्टूल पर छडीदार बैठा था। बाहर से आरजू मिन्नत की—ऐ साधू जी, ऐ बाबा जी, खोल दीजिए जरा।' मगर पत्थर दिल किसी भी प्रकार स नही पिघला—फाटक नही खोला। करती भी क्या, एक कदम आगे बढती, फिर तीन कदम पीछे। आखिर उदास होकर धीरे धीरे लौट चली।

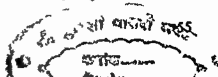
मोड पर एक सज्जन खडे थे। वह बोले, 'अरे, जाते क्यो हो? यही खडे रहो। साधु लोग इसी रास्ते से लौटेंगे।'

खडे रहते रहते पैरो का बुरा हाल था। और कितनी देर तक खडी रहू। मन-ही मन बक-बक करने लगी।

रास्ते के किनारे ऊची दीवाल थी किसी के घर की चहारदीवारी होगी। उसी दीवाल को दिखाकर उन भले आदमी ने कहा, 'उस पर चढ कर बठो।'

अब मिजाज गरम हो गया। आपसमे एक दूसरेका मुह ताकने लगे—यह आदमी मजाक तो नही कर रहा है? नही तो भला दीवाल पर चढ कर बदर की तरह पैर लटकाए कतार बाध कर बठे रहना, यह आदमी के लिए मुमकिन है—खास-कर औरतो के लिए?

भले आदमी ने जाने क्या समझा, 'आइए-आइए' कहकर हमे उस दीवाल घिरे



मकान में ले गए। अंदर यही तो देखा, बाहर से जिसे ऊंची दीवाल समझी थी, उसके लगभग बराबर माटी भरा ऊंचा अंगना था। मजे में चलकर दीवाल पर चढ़ जाया जा सकता है।

यह घर इन्हीं सज्जन का था। साधुओं के लौटने में अभी देर थी, इसलिए इस बीच वह हमें घूम घूमकर अपना बगीचा दिखाने लगे। जतन से लगाए गए तरह-तरह के फलों के पेड़—आम, अमरूद, जामुन, आंवला—और भी क्या-क्या! एक पेड़ में देखा, डालों में पत्ते नदारद हैं और बेशुमार सफेद फूल फले हैं। कितने अच्छे!—कौन-सा पेड़ है यह?'

भले आदमी ने कहा, 'नाशपाती का।'

मैंने पत्तों से भरा, फलों से लदा नाशपाती का पेड़ देखा था। इसकी ऐसी बहार मैंने कभी नहीं देखी। बगीचे के हरे भरे पौधों के बीच-बीच में नाशपाती का एक-एक पेड़, सजी सजाई एक एक तसवीर हो जैसे।

शोर मचा—'साधु लोग आ रहे हैं, साधु लोग आ गए। जो जिसे पाया, ढकेलते हुए भागा। आखिर हम दीवाल पर चढ़कर पांव लटका कर बैठ गए।

मोटर रिक्शा, भोंपू घंटा, तांगा सिंगा लोगों का उमगभरा शोर—कुल मिलाकर एक अजीब कलरव! चमचम करती मोटरों पर चले मंडलेश्वर लोग गले में फूल की मालाओं का बोझा, देखते ही उनको अलग से पहचाना जा सकता है। बूढ़े साधु, जो लाचार हैं—उन लोगों ने तीन-तीन चार चार जने ने मिलकर रिक्शा तांगा किराए पर ठीक किया। बाकी सब पैदल ही इधर-उधर चल पड़े, जिन्हें जहां जाना था।

गजब की बात तो यह कि इनमें से कौन क्या है यह समझने का कोई उपाय नहीं। सुना था, समष्टि भंडारे में बड़े-बड़े महात्मा साधु भी आते हैं जो लोगों की नजर से बाहर कहीं एकांत में रात दिन तपस्या करते हैं। मगर आंखों देखकर हम मामूली लोग वैसों को पहचानें कैसे? सब तो करीब करीब एक ही जैसे हैं। किसी एक के चेहरे पर अनुसंधित्सु दृष्टि रोपते न रोपते वह आगे निकल जाते। तबतक दूसरे पर टकटकी लगाती। भीड़ छट गई। मन में कोई भी नहीं गड़ सके। कैसी अजीब बात!

यहां कोई साठ-सत्तर छोटे-बड़े अखाड़े हैं। भोजन भी एक-सा बंधा बंधाया। मोटी-मोटी पूरियां—बंगाली साधु जिसे गोयठा रोटी कहते हैं। उस दिन स्वामी

अनुभवानंद ने कहा था, 'ये मक्खन क्या खाना जानते हैं ?' एक बार रामकृष्ण मिशन के भंडारे में सेक्रेटरी स्वामी ने कहा 'उफ कैसी सख्त-सख्त पूरी-कचौरी खाते हैं ये रोज, दांतों से काटी नहीं जाती। इन लोगों को अपनी तरफ का भोजन कराना होगा। अब की पूरियों के बदले फूली हुई लचई करो। जरा देखें खाकर ये।' लेकिन वह लचई खिलाइएगा किन्हें ? फूली फूली उन पूरियों को हाथ से चूर चूर करके कहने लगे—'हायराम, इन्हें खाए कैसे? जरा मजा देख लीजिए। इन गोयठा रोटियों के सिवा उन्हें कुछ रुचता ही नहीं।'

लाचारी, वह मोटी-मोटी सख्त पूरी-कचौरी, तरकारी—यहां ये लोग शाक कहते हैं—चटनी, और सख्त लड्डू की तरह कड़े पाक की बुंदिया। भंडारे में दाल नहीं चलती—इसलिए कि दाल को पानी में उबालना होता है। जो सब्जी पानी में बनती है उसको कहते हैं कच्चा भंडारा, उसे खाने में बहुतों को आपत्ति होती है। शाक-सब्जी, आलू-गोभी की तरकारी में अलग से पानी की जरूरत नहीं पड़ती, लिहाजा वह भंडारे में चलती है।

सोचती, हर भंडारे में ये साधु लोग एक ही तरह का भोजन खुशी-खुशी खाते कैसे हैं ? भंडारे में खाने के लिए कितनी दूर-दूर से पैदल आते हैं ये लोग। देह धारण करने के लिए दो मुट्ठी आहार की आवश्यकता तो हर किसी को है।

शशी महाराज ने कहा, 'भंडारा देखने का इतना शौक है—आज हरिहर मठ में भंडारा है, जाकर देख आइए।'

हरिहर मठ तो सेवाश्रम के सामने ही है—रास्ते के इस पार—उस पार। लेकिन जाएं तो, समय की समस्या है। जिस समय सेवाश्रम में खाने की घंटी बजेगी, ऐन उसी वक्त हरिहर मठ में भंडारा शुरू होगा। खाना छोड़कर भंडारा देखने चल दें तो यहां इन लोगों को असुविधा हो जाएगी। शायद हो कि हम लोगों का खाना अगोरे गिरीन महाराज बैठे रहें या कि मणिक ब्रह्मचारी। यह बड़ा अन्याय होगा और, अगर भोजन की सोचें तो भंडारा देखना नसीब नहीं होगा। खा-पीकर जब तक हम वहां पहुंचेंगे तबतक फाटक बंद हो जाएगा।

बड़ी-दी ने कहा, 'बड़ी गलती हो गई। अगर कल ही कह दिया होता कि हम लोग आज नहीं खाएंगे तो सारी समस्याएं हल हो जातीं। एक दिन बिना खाए रहना क्या बड़ी बात है ?'

सात पांच सोचते-सोचते अखाड़े के घाट से नहा कर गीले कपड़ों की पोटली

लिए लौट रही थी। हरिहर मठ के पास आई तो देखा, नारियल के कमंडल हाथ में लिए शीघ्रता से संन्यासी लोग अंदर जा रहे हैं। फाटक पर उसी रोज वाला छड़ीदार बैठा है। यह छड़ीदार शायद हाथ में फेहरिस्त लिए हर भंडारे में मौजूद रहता है। किस अखाड़े के साधु आये कौन नहीं आये, क्यों नहीं आये—इन सारी बातों की निगरानी ही उसका काम है।

साधु लोग जा रहे हैं इस समय क्या हम अंदर जा सकेंगे ? बड़ी दी का हाथ पकड़े एक डग, दो डग बढ़ते-बढ़ते आखिर साधुओं के दल में मिलकर हम अंदर घुस ही पड़े। अब समस्या यह कि जाएं किधर ? चारों ओर तैयारी। सारे प्रांगण में बरामदे में कतार से माटी के ग्लास सजे धरे थे। साधुओं के बैठते ही पत्तल और भाजन परोसा जाएगा। नहीं तो सूखी पत्तलें हवा में उड़ जाएंगी। ऐसे में आगे बढ़कर क्या डाँट सुनें ? इधर उधर गरदन बढ़ा कर देखा। सामने के ओसारे को पार करके लोग जो कमरे में जा रहे हैं, वहां क्या है ? धीरे धीरे बढ़ी, आगे बड़ा-सा एक हाल पूरे हाल में गलीचा बिछा था। दीवाल से सटे एक फरास पर एक कतार से खासतौर से फूलकारी आसन लगे थे। और-और मंडलेश्वरों के साथ हरिहर मठ के मंडलेश्वर बैठे थे—अपनी-अपनी जगह पर सब पुतले से। घुटे सिर के ठीक बीच में गेंदे का एक एक फूल। जरा देर पहले शायद भक्त लोग इनकी पूजा कर गए है। निश्चित मन से मानो शिवजी के माथे पर फूल चढ़ाया हो। मैं समझ गयी, ये विशेष आसन सिर्फ मंडलेश्वरों के लिए हैं। जो अभी और आएंगे, वे इन आसनों पर बैठेंगे। दूसरे लोग गलीचे पर बैठे थे। जगह की कमी पड़ेगी, तो लाचारी जो जहां बैठ जाय। इसके लिए कोई विवाद नहीं। केवल मंडलेश्वरों के लिए तौर-तरीके में बाल भर का फर्क होने की गुंजाइश नहीं है। ऐसे भंडारों में मंडलेश्वरों को मान देना पड़ता है। भक्तगण, जब जो भंडारा देते हैं भोजन से पहले स्त्री-पुत्र परिवार सहित उपयुक्त अर्घ्य सजाकर लाते हैं और वस्त्र, धर्म ग्रंथ तथा प्रणामी में रुपये देते हैं। इन्हें पूजा करके भला-बुरा, ज्यादा-कम—यह देना ही पड़ेगा। वस्त्र के रूप में ज्यादातर सिल्क की चादर ही दी जाती है। जो लोग इतना खर्च करके समष्टि भंडारा देते है उन्हें रुपया की क्या कमी ?

एक अधेड़ साधु इसी मठ के कर्मी सुंदर शक्तिशाली, पहले भी इन्हें दो एक बार देखा है—मोटा बधे दांत, हंसते ही पहचान गयी। उन्होंने जाकर कहा

'बाहर क्यों खड़ी हैं? अंदर जाकर बैठिए। फिर भीड़ बढ़ जाएगी तो घुस भी नहीं पाएगी।'

साधु जी अच्छे ही लगते थे। उनकी बात से हिम्मत बढ़ी। कहा, 'अभी तो रुकने का उपाय नहीं है। यदि जरा देर बाद आए?' छड़ीदार की याद आ गयी। वह अगर अंदर न जाने दे? मैंने साधु को मन का वह डर बताया। साधु हमें लेकर फाटक पर आ गए, हाथ से हम लोगों को दिखाते हुए छड़ीदार को जाने क्या तब कहा। छड़ीदार ने हामी भरते हुए गरदन घुमा-घुमाकर हम लोगों की शक्ल पहचानी।

सेवाश्रम पहुंची। जल्दी-जल्दी मुंह में कौर डाल कर खा लिया और मठ में चली गयी। तब तक भोज आरंभ नहीं हुआ था, परोसा ही जा रहा था। एक एक पांत में सैकड़ों की संख्या में साधु बैठ गए थे। समवेत स्वर में गीता के पंद्रहवें अध्याय का पाठ कर रहे थे। यह इनके भोजन करने के पहले का नियम है।

खुली जगह। माथे के ऊपर चील कौवों के झुंड मंडरा रहे थे। इधर-उधर झपट्टा मार रहे थे। तब आकर परोसन वाला ने पूरी मिठाई की टोकरियां रख कर टिन के छोटे-छोटे आइने लाकर धूप में रख दिए। आइने से टकरा कर सूरज की रोशनी कौंध पैदा करती—चील-कौए डर से भागने लगे।

मैंने कहा, यह तो बहुत मजेदार उपाय है बड़ी-दी। लौट कर हम भी इस उपाय को काम में लाएंगे—क्रिया क्रम में, पिकनिक में।

गीता के श्लोक समाप्त हो गए तो एक ने घूम घूम कर देखा, सबकी पत्तलों पर सब कुछ परोसा गया है या नहीं। देख-सुन कर उन्होंने इशारा किया कि सिंगा बज उठा। सिंगा बजा कि साधुओं का भोजन शुरू हो गया। बड़ी देर से पत्तल पर भोजन लिए धूप में सिर पीठ जलाते हुए वे लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने लोगों को परोसना कुछ कम बात तो नहीं।

भंडारे में साधु लोग इतने आग्रह से क्या खाते हैं? एक बार खाकर देखने को जी चाहता। शशी महाराज से मैंने कहा भी था। सुन कर वह नाखुश हुए। बोले, 'वह भी भीख का अन्न है, आप लोग गृहस्थ हैं वह सब खाने के लिए क्या जाइएगा? नहीं-नहीं, छि।' गोकि मेरा कौतूहल बड़ा ही तीव्र था। मंदिर के ऊंचे सहन पर बैठे-बैठे साधुओं का खाना देख कर मन ही मन सोचने लगी, आखिर दोष क्या है?

भोजन समाप्त हुआ। भोजन समाप्त करते ही हड़बड़ा कर उठ पड़ें, ऐसा नही। बिलकुल फौजी अनुशासन। भोजन समाप्त हो जाने पर भी सब अपनी-अपनी जगह पर बैठे रहे। फिर एक ने उसी तरह चारो ओर घूम घूम कर देखा, सबका खाना खत्म हो चुका या नही देख कर फिर उन्होंने सकेत किया, फिर सिगा बजा घटा बजा और एक ही साथ साधु लोग पत्तल पर से उठ पड़े। दल के दल सब फाटक स निकल पडे। सूखा सूखा खाना माटी के ग्लास म हाथ डुबाकर ही हाथ समेटे बैठने वक्त सबने होठो पर फेर लिया। देखते ही देखते जटाजूट धारियो से भरी जगह खाली हो गयी। पडे रह गए सखुए के पत्ते और लुढ़कते हुए माटी के ग्लास।

हम अब जल्दी क्या थी? बैठे ही रहे। देखें तो सही, और क्या-क्या होता नही होता है। भडारे म लेकिन नागा सन्यासियो को नही देखा। बड़ी-दी ने कहा, 'सुना है ऐसे सामाजिक आयोजनो म नागा लोग नगे नही आ सकते। कम से कम एक कौपीन डाल लेना पड़ता है। इसी स यह पहचानना मुश्किल है कि कौन नागा है और कौन नही है।'

दो बूढ़ साधु पोपले मुह से हसते हुए मदिर के चौतरे पर आए। आमने-सामने बैठ कर गपशप करने लगे। बहुत दिनो के बाद उन दोनो की मुलाकात हुई थी। बातो की फौको स खुशी छलकी पड़ती थी। एक बगाली दूसरे पजाबी। एक का रग गोरा दूसरे का सावला। एक गए थे उत्तर की ओर—तिब्बत, दूसरे गए थे दक्षिण, समुद्र के किनारे। दो दिन आगे-पीछे हरिद्वार आए हैं—इस समष्टि भडारे मे दोनो का आज मिलन हुआ। जो तिब्बत स लौटे थे, उनके बदन पर अभी तक घुटने तक झूलता हुआ मोटे कबल का झब्बा था कमर के नीचे सन की रस्सी बधी। और जो दक्षिण भारत से लौटे थे उनके खाली बदन पर एक गेरुआ चादर, पहनावे म कटा हुआ सूती कपडा।

साधु लोग ज्यादातर एक धोती को दो हिस्सो म फाड़ कर पहनते है। एक हिस्से को पहनते हैं दूसरे को बदन पर डालते हैं।

अपनी अपनी यात्रा की कहानी सुनाते सुनते वे दोनो साधु उसी तरह से हसते हुए उठ गए। कितनी बातें! इतने थोड़े मे खत्म होने की हैं! चलते चलते रास्ते म कहेंगे।

एक छोकरा साधु एक ओर लोट रहा था। इतनी मिठाई खा ली कि चलने का

उपाय नही—अपने सगी से कह रहा था। हिंदी बाल रहा था, पर तर्ज बगला का। यह सुन कर बडी-दी ने पूछा, 'घर कहा है ?' वह बोला, 'हमारा बाडी अमुक गराम म।'

बडी दी ने कहा 'हाय राम, यह कवख्त तो तिपराई है। देखा नही, उस बार त्रिपुरा जाते हुए उस गाव को हम बाए छोड गए थे ? सूसी की ससुराल तो उसी गाव मे है।'

बडी दी ने छाकरा साधु से कहा, 'तो फिर हिंदी बात काहे बोलता, बागलाई बोलो।'

देशी आदमी के मुह से देश की भाषा सुन कर वह बहुत ही खुश हुआ। भरमुह हस कर उठ बैठा। कहा, बामुनेर पोलानु आमि। छेइला बेलाइ बाडी छाडछि। माय कादे, बाप कादे, आर फिरि नाइ देशे। (ब्राह्मण का लडका हू। बचपन मे ही घर छोडा। मा रोती है, बाप रोता है। फिर घर नही लौटा।)

— 'बडो काम करचा ! ता लेखा पडा किछु कारेछिला नि ? पेटे एकटु विधा ढुकछिलो नि ?

—'हू, केलास फोर अवधि तो पोड़छिलनि। कतोकटा विधा शिखछि बोईकि गुरुर किरपाय। एगरा जी अक्खरो चीनी कुछ कुछ। बडो खुश लागलो मन मे आपनार साथे कथा कोइया। कतुदिन थाइक्ताय ? परसाद पाइछन नि ?'

सिर हिला कर कहा, 'नही, दिया किसन, कहो ?'

सुनत ही वह फुदकता हुआ रसोई घर की ओर गया। बडी-दी ने कहा, 'यह कौन-सा झमेला खडा किया, कहो तो। प्रसाद लेकर आखिर क्या विडबना मे पड ? यहा बैठ कर तो खाया नही जाएगा और सवाश्रम भी नही ले जाया जाएगा। वे लोग यदि कोई दख लें, तो क्या सोचेंगे ? छि।'

मैंने कहा, 'ढक-ढुक कर तबू म रख दूगी। तीसरे पहर जब हरिद्वार जाऊगी तो गगा के घाट पर बैठ कर खाऊगी। वहा कौन देखन आता है ?'

बालते-बालत देखा, वह पत्ते के ठोगा म दाना हाथा समेटे प्रसाद लिए दौडा आ रहा है। दो चीलो ने माथे पर चक्कर मारना शुरु कर दिया है। उसने झट झुक कर कलेजे से लगाकर ठोंगे को बचाया। फिर भी चील पीछा नही छोड रहा था। ऊब कर उसने हाथ को बदन पर पडे काले कबल के नीचे डाल लिया।

देखकर मैंने नाक सिकोड ली, 'राम राम, जाने कितना धूल बालू पड गया।

एक ही कथन—जहां-तहां रखता है, बिछाकर सोता है ! जरूरत नहीं ऐसे प्रसाद की, चलो, उसके आने के पहले ही भाग चलें।'

बड़ी-दी को प्रसाद के प्रति अश्रद्धा सह्य नहीं। बोली, 'प्रसाद, प्रसाद ही है। ऐसा कहना नहीं चाहिए।'

ढेर सी पूरी-कचौरी मिठाई तरकारी सामने रख कर देशी साधु ने हंसते हुए देश के लोगों की खातिरदारी की। बोला तरकारी थोड़ी-सी और लाना चाहता था। ठोंगे में आई ही नहीं।'

उमंग से रास्ते तक बढ़ आया वह। बोला आप लोगों की फिर से देखने की इच्छा रही। देखूं, उनकी किरपा रही, तो इस भीड़ में भी ढूढ़ ही निकालूंगा। और कुछ दिन हैं तो यहां ?

ब्रह्मकुंड के किनारे की दूकानों में ढेरों रसोई, दालदा, हैम, बेकन मक्खन, जैसी के टिन दूकानदारों ने टांग रक्खे हैं। बीच में बैठा वह लगातार टनटन टिन को पीटता ही जा रहा है। यही टिन सस्ते दाम में खरीद कर यात्री लोग कम-ज्यादा जैसी जरूरत जल भर कर ले जाते हैं। छलकने का खतरा नहीं। दूकानदार से यह लिया रहता है पानी भरकर लाते ही वह गले सीसे से टिन का मुंह बंद कर देता है। घर लौटने के बाद ही खोला जाता है।

बड़ी दी ने कहा, हम लोगों को तो बहुत जल ले जाना है। एक एक की गंगाजली में अभी से जल भर भर कर रखने के बजाय ऐसे दो बड़े टिन में जल भरना ही सुविधाजनक है। वहां इन्हीं से ढाल ढाल कर सबको दे दिया जायेगा।

बड़ी-दी ने चुन चुन करके दालदा के पांच सेर वाले दो टिन खरीदे। कहीं छेद-वेद तो नहीं है ? बिना जांचे परखे पैसा देना क्या ठीक है ? टिन लेकर ब्रजरमण को पानी भरकर देख लेने के लिए घाट भेजा गया। एक मिनट, दो मिनट करते करते पंद्रह-बीस मिनट हो गए। ब्रजरमण नहीं लौटा। यहीं तो घाट है वह रहा पानी। इतनी देरी फिर क्यों ? खड़े-खड़े झल्लाहट होने लगी। आधा घंटा बीत गया—आखिर बड़ी-दी को दूकान में छोड़ कर दादा और मैं आगे बढ़े।

घाट पर ठसाठस भीड़। आबाल वृद्ध वनिता झुंड बांध पर खड़े झुक-झुककर बड़े ध्यान से जाने क्या देख रहे थे। भीड़ के ऊपर उचककर मैंने भी झांका।

पक्की सीढ़िया किनारे से नीचे तक उतर गयी हैं। पानी के करीब वाली चौड़ी सीढ़ी पर हाथ मे चक-चक करता हुआ बरछा लिए एक नागा सन्यासी करतब दिखा रहा था। पहले अदाज नही हो सका। बाद मे समझ मे आया कि यह जितना ही अचरज का खेल है उतना ही बीभत्स और अश्लील। और खुले आम भीड भरे घाट पर एक आदमी निसकोच, लापरवाही के साथ दिखा रहा है और दर्शकगण अपनी-अपनी बहू-बेटिया के साथ बडी उत्सुकता से देख रहे हैं।

दादा ने आवाज दी, 'लौट चलो। यह सब हठयोग है।'

कौतूहल जाने का नही। बड़ी-दी को भी दिखाना है। खीचते-खीचते मैं उन्हें ले आयी। लेकिन वह कसरत तब तक खत्म हो चुकी थी।

नागा ने अब गगा के पानी मे मुह-हाथ धोया। रुद्राक्ष की माला का जनेऊ की तरह गले मे दोनो, ओर झुला दिया। कमर मे धागा बाधा। दाए हाथ मे तागा पहना, किरणो म गोल चकती चिक चिक कर उठी। वह शायद सोने की थी। यो बन ठन कर जाने के लिए नागा जब हाथ मे बरछा लिए घूमकर खडा हो गया। वीर जैसे दप के साथ सीढी पर एक एक कदम रखने लगा। भीड ने तितर-बितर होकर सम्मान के साथ उसके लिए राह छोड दी।

गगा की आरती होगी। हर की पैडी पर जाकर बठ गयी। वहा स आमने-सामन ठीक तरह से दिखाई पडेगी।

साझ का अधेरा गहरा होते ही ब्रह्मकुड के घाट पर आरती के दीए जल उठे। तीन पडे तीन हाथो मे तीन दीए लेकर नीचे उतर आए—आकर अतिम सीढी पर खडे हो गए। धीरे धीरे बाए हाथ स घटी बजन लगी, दाए हाथ से आरती होने लगी। घी के दीए, हवा लगने से लौ ऊची होकर जलन लगी। उस जोत को तीनो पडो के शरीर सिर वाली छाया डालकर ढकने लगे। इस पार से देखा, दीए की लौ की चोटी मानो उल्लास से अधेरे के कलेजे मे चचल हो रही है।

बडी दी कब जाने अतर्ध्यान हो गयी थी। हाफती हुई लौट आयी। दोनो हाथ की मुट्ठिया बद। बोली, 'आरती की अग्नि का स्पर्श कर आई। तुम लोगो के लिए भी ले आई हू, यह लो।' यह कहकर उन्होने एक मुट्ठी खोलकर मेरे माथे

पर फेर दिया, दूसरी मुट्ठी की आरती की आंच दादा के कपाल मे लगा दी।

कल शिवरात्रि है। योग का पहला स्नान।

बड़ी दी बोली 'शिवजी के माथे पर कुछ फल फूल चढाना होगा, आज ही फल खरीद कर रख लू। फूल तो रास्ते के दोनो किनारे मिल जाएगे, लेकिन भीड म अगर फल न मिले।'

गगा पर बधे चौतरे से बाजार की तरफ चलती रही। हरिद्वार मे जो कुछ जान है वह इसी चौतरे पर। इस इतनी-सी जगह म अनेक प्रकार के व्यापार। चलते चलते दिखाई दिया श्रीराम जी की एक तसवीर के सामने हाथ भर घूघट काढे एक मारवाडी महिला हारमोनियम पर गा रही हैं घूघट काढे भक्तिनें उनके सामने बैठी है।

उसके बाद, पाप-पुण्य का विचार चीरते हुए एक गुजराती सज्जन का भाषण चल रहा था।

थाली म आटे की गोलिया लिए, अपनी पकी भवा को सिकोडे छोटे बच्चो के दल के पास पास बुढिया घूम रही है। यात्री के हाथो मुट्ठी भर गोलिया थमा देती है लीजिए बाबूजी दो पसे की गोली मछली को खिलाकर पुण्य कीजिए।

ऋषिकुल गुरुकुल के ब्रह्मचारी बालक, बदन पर नामावली कान ढके टोपी पहने घाट पर एक कतार से बठे। हाथ हिलाते हुए ताल-ताल पर सामवद के गीत गा रहे हैं। दोपहरी ढलते ही लाल रग की जप की माला की थैली हाथ मे लिए कुशासन बिछाकर बैठे रहते हैं। उठने की गुजाइश नही। बालक का मन गरदन घुमाकर चारो तरफ ताकते रहते हैं।।विभिन्न जगहो के तीर्थ-यात्री मन म तरह-तरह का कौतूहल जगाते हैं। लाल थली के भीतर ब्रह्मचारी क छोटे-छोटे हाथो की उगलिया माला फेरते हुए थम जाती हैं। अचरज से आखें फैलाए देखने लग जाते हैं।

कुच पर भार देकर लगडा भिखारी हाथ पसार कर चिल्लाता सवा पाच आना लुटा दें, सुहाग भाग बना लें। एक तरफ नीलाम चल रहा है। बाबरी

वाला वाला सर भीड़ से ऊपर उठ आता। बदन पर काला कोट, हाथ मे काले टिन का डब्बा, स्टूल पर खड़ा होकर वह चिल्लाता—'चार आना पाच आना सवा पाच आना। हा, जल्दी ! सवा पांच आना—छै आना, छै आना।'

लोहे की अगीठी, लोहे के तव पर दूकानदार आलू की टिकिया बना रहा है। नेट की ओढनी जमीन पर लोट रही है पजाबी औरतें दही बडे, घुघनी फुलौडी खरीद कर खा रही है।

एक दक्षिणी साधु गगा से सटे-सटे आखें बद किए बैठे हैं। लाल चदन का तिलक लगाए ब्राह्मण कथा कहता हैं।

लाउडस्पीकर पर गाना चल रहा है—'रगीला, रगीला, रगीला रे।' छाती पर, पीठ पर लकडी का बोड लगाए कतार म सिनेमा का विज्ञापन जा रहा है।—'घर की इज्जत' 'चादनी रात' 'दिन की प्यारी।'

कुली-मजूरो क साथ, इजीनियर, ठेकेदार, दौड-धूप कर रहे हैं। पडो के बडे-बडे तने लाकर इकट्ठा कर रहे हैं—डेरो। काटी ठाक-ठोक कर एक स दूसरे को जोड रहे हैं। समय ज्यादा नही रहा, कुम्भ के मेले स पहले पहले पुल तैयार कर देना होगा।

एक गेरुआधारी साधु पीछे लगा, 'भजन के लिए साधु को एक गीता दान कीजिए। दो पैसा दाम। इसी दूकान म मिलेगी।'

गरम पानी का कूकर लिए नाई बठे हैं। आठ इच ऊचा पीतल का छोटा सा ककर, नीचे कुछ लकडी के कोयले जल रहे हैं, धिक धिक। काफी देर तक उसमे पानी गरम रहता है। सर्दी मे गाल पर गरम पानी पडने से आराम मिलता है। मिल की साडी, छीट के कपडे। ग्राहक-दूकानदार मे भाव मोल चलता है। वजन की मशीन सामन रखकर बाप-बेटा चोगा फूक रहा है—'चार पस देकर अपना वजन रोग-बीमारी जान लो—एक साथ।' मशीन पर वजन के अनुसार बीमारी का नाम लिखा ह। कितनी उम्र म कितना वजन नही होने से उसे कौन-सी बीमारी है यह व फुर्ती के साथ बताते जाते हैं। प्लीहा, वात से लेकर कालाजर दमा, यहा तक कि तपदिक भी।

एक वुढिया, सामने की ओर दो पाव फैलाए—मोटी साडी, रूखे बाल—हाथ से ठोक ठाक कर आटे की मोटी-मोटी रोटिया सेंक रही है। भिखमगे आते,

पैसे फेंककर रोटी खरीदकर वहीं बैठकर खाते—रोटी के साथ आलू व दो टुकड़े इमली की चटनी।

चाय भी मिलती है। जवान लड़का पीतल के घड़े से काच के छोटे छोटे ग्लासों मे डाल देता है। चौतरे के इस छोर से उस छोर तक कधे पर उठाए घूमता रहता है सुविधानुसार यहा-वहा बेचता है। 'चार पैसे म गुड़ की, छ पैसे म चीनी की चाय।'

बनारसी ओढनी हिलाती हुई जूते की ऐड़ी ठोक-ठोक कर रूज पावडर और लिपस्टिक लगाए बेसुरी लड़किया जा रही हैं।

लबी लाठी की चोटी पर बाधकर, माथे पर हिलाते हुए बैलून, बाजा—लबा, मोटा गोल, रग बिरगा—लिए लिए लड़का जा रहा है।

अधा भिखमगा बदन के जोर मे करताल बजाता है—खेनर-खेन। यात्रियो का ध्यान अपनी ओर खींचता है।

साढे बत्तीस भुजा की दूकान मे चार पैसे के ब्राह्मण भोजन का पुण्य मिलता है। झुम्मर झुम चीमटा और घुघरू बजाते हुए छाती और पीठ म काली डोरी बाधे पान मे अलख निरजन का दल जा रहा है। वे बोलते नहीं कहीं रुकते भी नहीं। चलते ही चलते भीख लेते हैं। गृहस्थ भीख लिए पहले म ही तयार रहते हैं। इसीलिए वे पूरे बदन मे बाजा बजाते चलते हैं। दाताओ को दूर से ही अपने आने की सूचना द देते हैं। दूकानदारो स भीख लेने मे देर हो जाती है—अलख निरजन हाथ का खप्पर बढाकर एक ही जगह खडे 'लेफ्ट राइट' करते रहते हैं। पाव हिलते ही रहना चाहिए। बीच का भिक्षु अनमना हो जाता है थम जाता है तो पीछे वाले से चीमटे की ठोकर खाता है। मतलब यह कि कम बरूओ। चारो तरफ इतने लोग हैं, क्या पता, कौन कब देख ले।

एक एक करके ग्रथ साहब मे भीड बटुरती है।

घी का दीया बीच मे रख कर फूलो की डाली सजाए रखते हैं—करीने से रक्खे फूल।

फल लेने के लिए फल की दूकान पर खडी हो गई।

बडी-दी को तसल्ली ही नहीं हो रही है। बेल, नारियल बेर नासपाती सेब खिदाना—'यह क्या है ? टैं यातो ? हा-हां, दो।' केला सतरा — 'ऊपर म वह खरबूजा है ? उतार दो तो। पपीता—क्या कहते हैं इसको ? हा वह भी दो।'

बोली, 'क्या ख्याल है रानी, ले ही लू, चढा दू शिव जी के माथे पर। क्या पता, फिर आना हो, न हो ! यहा के शिव जी तो जिंदगी मे फिर नही भी नसीब हो सकते हैं।'

दूकान के नीचे से ऊपर तक ढेरा सजे फूल चुन चुन कर अपनी थैली भरती रही वह। बगल मे सब्जी की दूकान।

सादी ओढनी से बदन ढके, सादा ननकिलाट का कुरता-सलवार पहने छरहरी-सी कम उम्र की एक बहू दूकानदार से माल भाव कर रही थी। हाथ मे थी कमल की जड। मैंने सुना था, कहीं-कहीं कमल की जड बडा प्रिय खाद्य है।

पूछा उससे, 'खाने म यह कैसा लगता है ?'

जीभ से एक रसीली आवाज निकालकर वह बोली, 'बहुत ही बेहतरीन। देखिए न, इसीलिए इतनी-सी चीज की कीमत कितनी है ! पाच आने पाव बताता है।'

पूछा इसे पकाती किस तरह से हो ?'

कमल की जड मे अगुली से हिस्सा करके दिखाती हुई बोली, 'यों समझिए—इसे एक, दो तीन—पाच टुकडे करेंगे। बहुतेरे लोग और भी छोटे टुकडे करते हैं। लेकिन खाने मे बडा टुकडा ही अच्छा लगता है। उसके बाद प्याज को भून लूगी, फिर जीरा, काली मिर्च, नमक-हलदी देकर पका लूगी। इसमे आलू भी डाल सकती हैं। मगर महगी कितनी है, सो देखिए। लू कि न लू, यह सोच रही हू !—अरे भाई, सवा चार आने म पाव भर दे न दो। साढे चार आना ? खैर, पौने पाच आना। इससे ज्यादा तो नही देती।'

और, उसने कुरते की जेब से पाच रुपए का एक नोट निकाला, पाव भर कमल की जड खरीदी, गिन-गुथ कर पैसे वापस लेकर चली गयी।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्य पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्यसनादेव सिद्धि समधिगच्छति॥

रात बीती भी न थी, गीता का श्लोक पढकर ठडे हाथ से ठेल कर मुझे बडी-दी ने जगा दिया।

आज योग का पहला स्नान है। पहले से ही तै था, अधेरा रहते ही उठकर हम ब्रह्मकुड चले जाएगे। सुबह पाच बजे से योग। दिन भर रहेगा। इतना ज्यादा

समय मुश्किल से मिलता है। फिर भी घाट से निर्विघ्न नहा कर लौट आना, आशंका की बात है।

आज तमाम दिन साधुओं का ही स्नान चलता रहेगा। पुलिस उन्ही के लिए घाट को खाली रखेगी। स्वामी अनुभवानंद ने बताया था, 'भोर के समय ही थोड़ी-सी सुविधा है। बाद में घाट तक नहीं भी पहुंच सकती हैं। उससे बेहतर है कि पहले ही स्नान से निबट लें। जुलूस में साधुओं की जमात चलेगी, वहीं खड़े होकर देखिएगा। यह भी तो खास तरह से देखने की चीज है। ग्यारह बजे निकलेगा 'निरंजनी अखाड़ा' उनके लौट आने के बाद 'निर्वाणी अखाड़ा'— करीब-करीब एक डेढ़ बज जायेगा। हम सबकी जमात निर्वाणी अखाड़ा के ही साथ जायगी। निर्वाणियों के स्नान के बाद जायगा 'जूना अखाड़ा'। तब तक सांझ हो आएगी। जभी तो कहता हूं काफी कहा है ? और भीड़ भी इस कदर होगी कि उस भीड़ में नहा नहीं सकेंगी। पता नहीं किधर को छिटक पड़ेंगी। वह और एक मुसीबत होगी।

बन्नी-दी चाहती थी साधुओं के स्नान के बाद पवित्र गंगा में फिर एक बार डुबकी लगाएं। यह सुनकर शशी महाराज ने दादा से कहा, औरतों का कहा मत सुनिए आप। भूल कर भी ऐसा काम न कीजिएगा। गंगा का जल सदा पवित्र है। जब सुविधा हो, तभी नहा लीजिए। चूंकि भीड़ की आप कल्पना भी नहीं कर सकती है इसीलिए ऐसा कह रहा हूं। मैं अपनी ही सुनाऊं आप बीती। एक बार जुलूस के साथ नहाने गया। महज घाट में उतर कर नहा कर निकलने में मुझे साढ़े तीन घंटे लग गए।'

बड़ी दी ने मुझे ताकीद की जल्दी से तैयार हो जाओ। इसी स्नान के लिए ही हम यहां आए हैं। 'ठाकुर-ठाकुर' करके एक डुबकी लगाकर निकल आइ बस इसी में शांति है। कपड़े कम से कम पहनो, ताकि झटपट गीले कपड़े बदल लो सको।

उठकर देखती क्या हूं कि बड़ी दी इसी बीच कुएं के पानी से नहा चुकी हैं। मुझे जरा भी खबर नहीं कि वह कब लालटेन जलाकर बाहर गई। बोलीं एक ऐसे दिन गंगा में उतरूंगी पहले ही एक बार शुद्ध हो लूं। और उन्होंने हम सबों पर, जिन्होंने स्नान नहीं किया था कमंडलु से हाथ में लेकर गंगाजल छिड़क दिया। हम लोगों को भी शुद्ध कर दिया।

जाते जाते राह में सोचती जा रही थी हम लोग ही सयाने हैं बहुत पहले जा

रहे हैं। बिना किसी झमट के मजे में नहा लेंगे। घाट पर पहुची तो देखा, इसी बीच उन लोगो ने भीड लगा दी है, जो हम मे भी सयाने हैं।

इन कई दिना की पहचानी हुई घाट वाली बढ आई और भीड को ठेलती हुई हमे लिवा गई। कडाके की सर्दी, हड्डिया बज रही थी, बगल से झुका कर शरीर को भीड के भीतर बढाते ही पानी मे जा पहुची। गिन गिन कर कई डुबकिया लगाइ। मा के लिए घडे मे योग का जल भर कर निकल आई।

बडी-दी छाती भर पानी म खडी मत्र पढ रही थी और आखें बद करके एक एक के नाम मे अजुरी म भरकर फूल पत्र, पैसा गगा को चढा रही थी। सेवा वाली की फुर्ती का क्या कहना ! बडी-दी का अर्घ्य गगा मे गिरने से पहले ही वह दात निकाल कर हसती हुई उसे लोक कर अचरा म भरती जा रही थी।

जी मे आया बडी दी को हिला करके कह दू जरा आख खोल कर देखो भी कि इतना कष्ट करके किसको क्या दे रही हो !" फिर सोचा, बडी-दी स्वय बुद्धिमती हैं—शायद हो कि देख-सुनकर ही उन्होने आखें बद कर ली हो। यो ही तो प्राय कहा करती हैं 'नाम लेकर चढा दिया इसी म मन की तृप्ति है। उसे किसने लिया, क्या हुआ इसका, यह सब नाहक ही क्या सोचना !'

ब्रह्मकुड के बीच म एक मोटे स्तभ के ऊपर गगा देवी का मदिर है। बहुतरे लोग तर कर मदिर की परिक्रमा करते है। दर असल यह शायद मानसिंह का भस्मस्तभ है। अकबर ने मानसिंह से कहा था 'आपने मेरे लिए इतना किया, मैं आपके लिए क्या कर सकता हू।'

मानसिंह ने कहा मैं मर जाऊ तो ब्रह्मकुड म मेरी अस्थि बहाने के बाद वहा पर एक स्मति स्तभ खडा करवा दीजिएगा।'

ब्रह्मकुड मे अस्थिभस्म बहाने स उस आत्मा का फिर बधन म नही आना पडता है यही सबका विश्वास ह।

श्यामापदो ससार त्यागी हैं योगी। उलटी पुलटी बात करते हैं—उनके मन की बात आसानी से समझ मे नही आती। वह कहते [redacted] 'अजी, ब्रह्मकुड म क्या शौक [redacted] तैरते हुए नहाता हू ? नीचे मुर्दो की हड्डिया गिज गिज करती है। खडे होते ही पावो मे चुभती हैं।'

घाट मे सीढी पर, सीढी के बीच मे, नीचे—देवी देवताओ की भरमार है। गगा महि शिवशभू रामचद्र, वीर हनुमान, कलकत्ते की काली, प्राचीन केदार-

बदरी, सीता जी,—जाने कौन कौन सी मूर्तियां ! एक एक ताक पर एक एक। बड़ी-दी दो कमडलु में भरा दूध और पानी सबके माथे पर ज़रा-ज़रा डालने लगी। बोली, लो, तुम भी डालो। बस 'शिवाय नमः' करके ही सब पर डालने में चल जाएगा।'

साधुओं के स्नान में अभी कुछ देर थी। गीले कपड़ों की पोटली हाथ में लिए-लिए घूमने में बड़ी असुविधा हो रही थी। मैंने कहा, 'हम लोग कनखल जाकर गंगाजल का बर्तन भीगे कपड़ों की पोटली रखकर आए तो कैसा ? हलके हाथों दिन भर मज़े में रहा जाएगा।'

'सूझ बुरी नहीं—' दादा ने कहा 'यही तो ठीक रहेगा। दोपहर के भोजन की कोई चिंता नहीं है। कल ही स्वामी जी से कह दिया है, दोपहर का भोजन हम कल नहीं करेंगे। कब लौटें क्या ठिकाना ? उन्हें बिठाए रखने से क्या लाभ ? वे लोग भी तो नहाने के लिए आना चाहेंगे। हम लोगों की वह चायवाली दूकान तो अच्छी साफ सुथरी है, भूख लगेगी तो वहीं खा लेंगे।

बड़ी-दी का आज उपवास था, शिवरात्रि का। मैंने कहा 'मैं भी उपवास करूंगी—कभी किया तो नहीं है।' मन में सोचा, जो हालत देख रही हूं खाना तो आज नहीं ही नसीब होगा, उससे बल्कि शिव के नाम पर रहा जाय तो कुछ काम भी बन सकता है।

कनखल से हरिद्वार लौटने लगी, तो रास्ता वह रास्ता नहीं रह गया था। शहर के किस छोर से स्नान-यात्रा का जुलूस निकला है—यह खबर चारों ओर फैल चुकी थी। रह रह कर पुलिस की सीटी बज रही थी। सड़किल पर सार्जेंट की दौड़ लग रही थी। चौड़ा रास्ता एक बारगी खाली था। उस पर होकर जाने की सबको मनाही थी। गली-गली से घाट की ओर दौड़ी। इनके पहुंचने से पहले किसी तरह हर की पैड़ी पर पहुंच जाएं बस। मगर मन मुताबिक बढ़ सकना मुमकिन था भला ! उतना ही आगे बढ़ पा रहे थे, जितना कि भीड़ के रेले से पहुंचा देना था। इस तरह से घाट तक तो आखिर पहुंच गयीं लेकिन हर की पैड़ी तक कैसे जाएं ! घाट को बल्लों से घेर दिया था। और कदम-कदम पर सिपाही एवं स्वयं सेवक मुस्तैद खड़े थे। लाठी ठेल-ठेल कर जनता के स्रोत को उलटी तरफ हटा रहे थे। एक इंच भी आगे खिसकने की गुंजाइश नहीं थी। हायरे ख्वामखाह कनखल क्या गये हम ! हाथ दुख जाता तो कपड़ों की गठरी को कंधे पर लिए

चलती, वही तो अच्छा था। अब तो सब गुड गोबर हो गया। अच्छा, चलो तो देखें, उधर से घूम कर जाया जा सकता है या नहीं। दल के दल लोग तो उस तरफ से जा रहे हैं शायद उधर खुला हो।

सीढ़ियों से चलकर पतली गली से रामचद्र जी को दायें छोड़कर दौडी। जाकर देखा, 'रास्ता बंद है'। वहां से कलकत्ते की काली को पार करके और एक तरफ का आयी —'रास्ता बंद'। सब भूल भुलाकर जिधर से भी दौड़ कर घाट पर जाना चाहा, 'रास्ता बंद'। प्राचीन बदार-बदरी की प्रदक्षिणा करके उस थोड़ी-सी पार्क में गयी—'रास्ता बंद'। ज्यादा देर भी नहीं थी। जुलूस शायद करीब आता जा रहा था। स्नान देखने के लिये लोग पागलों की तरह दौड़ रहे थे। वे किसी एक स्थान पर खड़े होकर देखना चाहते थे। इधर की भीड़ 'रास्ता बंद' देख कर उधर भाग रही थी। उधर की भीड़ कोई रास्ता न पाकर इधर को भागी जा रही थी। सभी यही सोचते उधर शायद रास्ता खुला मिले। इस आवाजाही की कैसी एक जानलेवा भयंकर धक्कमधुक्की!

निरुपाय होकर भले आदमी-से एक सिपाही को 'भाई जी भाई जी' कह कर पकड़ लिया। कहा 'जरा देर के लिये रास्ता छोड़ दीजिये। हम अंदर चले जाएं।'

भाई जी गंभीर बना रहा। गरदन हिलायी। हरगिज राजी नहीं हुआ। गरज की मारी, करती क्या! रह रह कर सिर्फ 'भाई जी भाई जी' कर रही थी और हसरत भरी निगाहों से घाट की तरफ ताक रही थी। इतनी आशा थी, इतना अरमान था कि साधुओं का स्नान देखूंगी, यह क्या हो गया! ऐसे रहने से तो किसी भी तरह से नहीं देख पाऊंगी। फिर कहा,— ऐ भाई जी—'। अब की न जाने भाई जी को क्या खयाल आया, इधर उधर गरदन घुमा कर—कोई देख रहा है या नहीं, यह देख कर उंगली के इशारे से कहा जल्दी आइये। और वह दूसरी ओर मुंह फेरे खड़ा रहा, जैसे अनजान हो।

एक ही छलांग में कांट-तार के घेरे को टाप कर अंदर दाखिल हो गयी। खींच कर बड़ी-दी को, दादा को अंदर किया। पुलिस का सिपाही दौड़ा। कहा, यह मेरे बहन भाई हैं। ब्रजरमण भी नहीं छूटे। देखते ही देखते हम चारों जने घेरे से घुस गये। अब चैन की सांस ली। अब क्या हड़बड़ी है? आहिस्ता से हर की पैड़ी पर, सामने की कतारें में जा बैठे। अब साधुओं को घाट तक पहुंचने में जितना भी समय लगे, लगे।

चारों ओर भीड़ ही भीड़। घाट पर, गंगा की धारा पर, पहाड़ पर, पेड़ों की डालों पर—जिधर भी नज़र डालती, लोगों का सर और रंगीन घूंघट गिजगिज कर रहे थे। जाने कब से इंतजार में बैठे हैं लोग। बताई की घड़ी दूरी, और कितनी देर है। समय बिताने के लिये स्केच की कापी निकाल कर गोदी पर रख ली। बड़ी परेशानी लग रही थी। तिस पर सबेरे से खाना नहीं मयस्सर हुआ बोलने की भी ताकत नहीं थी। कापी पर चुपचाप पेंसिल की लकीरें खींचते हुए मन में सिर्फ यही प्रश्न आ रहा था—इतने इतने लोगों का यह जो विश्वास है इसका क्या कोई मूल्य नहीं है? एक विश्वास से इतने इतने लोग जो जमा होते हैं उसकी बुनियाद क्या एकदम खोखली है? साधारण लोग किस ओर से विचार करते हैं? गंगा जल से पाप धुल जाता है, सुनकर वे हंसते हैं। गंगा जल क्या माहात्म्य है—यह दृश्य देख कर वह प्रश्न ही अब मन में नहीं आता।

— आप लोग क्या आनंदमयी मां के यहां से आयी हैं?'—गरदन के पास मुंह ला कर पीछे से एक महिला ने पूछा।

कापी के पन्ने पर नज़र रखकर ही गरदन हिलायी—'नहीं।

— तो फिर कौन मां के यहां से?'

धत्तरे की! बोलने का जी नहीं चाहता, फिर भी बक बक। बगल में बड़ी-दी गहरे ध्यान में मग्न थीं। नाम और भाव में अंतर नहीं था। झट से उनका नाम बता दिया 'हिरण्मयी मां।'

जब पेंसिल की नोक टूट गयी। साथ में न ब्लेड था, नाखून से ही पेंसिल की लकड़ी खोदने लगी। जरा-सा भी निकल आय तो काम बन जाय। सोचा साधु को देखते ही लापरवाही दिखाती हूं, किसी साधु भक्त को देख कर उसका मखौल उड़ाती हूं, 'उनकी तुलना में अपने को चतुर समझती हूं। और जितने बुद्धू क्या ये साधु ही हैं? बड़े बड़े पंडित, बड़े बड़े धनी के कितने साधन जो इनमें राख मल कर धूप, वर्षा, सर्दी की परवाह न करके भूख नींद भूल कर खुले आकाश के नीचे बैठे हैं—ये सब क्या ऐसे ही निर्बोध हैं? किस आशा से यह कृच्छ्र साधन करते हैं ये? किस दुर्वार आकांक्षा से ये खुद ही अपने आपको मां की गोदी से खींच कर ले आये!—'आप लोगों का आश्रम कहां है?

उफ कैसी आफत है! मुख्तसर कह दिया, 'आसाम में'। मौनव्रत कितना अच्छा है! आखिर यों ही क्या साधु लोग बात-बात में मौनी बाबा बने रहते

हैं ? धनजय दास—सतदास बाबा जी के शिष्य—उन्होंने 'मौन' लिया है। कब उसे तोडेंगे, पता नही। जरूरत पडने पर शिष्यों को स्लेट पर दो चार पंक्तियां लिख देते हैं। ये धनंजय दास भी बडे पंडित हैं। मगर सारे सर में जटा का जूडा बांधे जब बैठे रहते हैं तो अजाना आदमी उन्हें क्या समझे ! संतदास बाबा जी भी तो कितने ज्ञानी, गुणी और धनी थे। बडी दी से उनके बारे में सुना है पहले उनका नाम था—तारा किशोर चौधरी—मशहूर वकील।

—'अच्छा आसाम में कहां है आपका आश्रम ? कामाख्या में ?'

न, अब तो हार बैठी। अब क्या जवाब दूं ? भद्र महिला ने जब कामाख्या का नाम लिया, तब हो सकता है, आसाम के बारे में कुछ-कुछ जानती हैं। फिजूल की बातों का बडा झमेला है। उधर अंत न होय निबाइ। मैं बोल उठी, 'अरुणाचल आश्रम। इस नाम का एक पहाड है सिलचर के पास। गनीमत कि याद आ गया।

देखा बडी-सी एक बार शंकित और कंपित दृष्टि मुझ पर डाल कर आंखें बंद करके फिर अपने में डूब गई। इससे हिरण्मयी मां के रूप में और भी निखार आ गया। देखकर मैं आश्वस्त हुई।

दमादम ढाक, ढोल, बडे बांसुरी की आवाज कानों में आते ही चौकन्नी हो गई। देखते ही देखते झटपट जुलूस आकर घाट पर पहुंच गया। सैकडों की तादाद में साधु संन्यासी राख रमा शरीर गेरुए से घाट और घाट की सीढियां भर गई।

सबसे आगे नागा संन्यासी लोग कतार बांध कर पानी के पास खडे हुए। उनके पीछे दूसरे साधुओं का दल ऊपर तक उठी हुई सीढियां पर गैलरी भरे हुए-से खडे रहे। मंडलेश्वर के माथे पर फूल की माला सजी, जरी के काम का रंगीन छत्र सोना और चंवर पीछे झनमल पंखा दो आदमी उसका डंडा थामे। दूर से ही चिह्न देखकर पहचान में आ जाते हैं कि मंडलेश्वर स्नान के लिये आये। दूसरे साधुओं के गले में गेंदे की माला।

नागा लोग पहली कतार में खडे। उन सबने गले की माला को पटापट तोड कर पानी में फेंक दिया। इतनी इतनी माला—ब्रह्मकुंड का पानी तोडी हुई मालाओं के पीले फूलों से छा गया। स्रोत की ताल पर वे फूल पानी पर हिलने-डोलने लगे। कुंड की कैसी अनोखी शोभा हो गई !

साधु लोग खडे ही हैं। पानी में उतर क्यों नहीं रहे हैं ? कुछ की प्रतीक्षा में हैं

मानो। सोचा था वे आते ही पानी म कूद पडेंगे—आपस मे खराहट होगी, सब गिचपिच हो जायेगा। मगर वह तो नही। सब कुछ एक नियम विशेष से बधा है। बहुत सुदर!

जरा देर म भीड म मे एक आदमी आगे आये—हाथ म छोटा-सा एक चादी का सिहासन। पानी मे उतर कर सिहासन का डुबाते ही, माटे डडे के माथे पर बधे दा मडे पानी म फेंक गये। फेंकना था कि सिगा बज उठा। साधु लोग जय, गगा मैया की जय' कहकर पानी म कूद पडे।

गेरुआधारी साधुओ न पानी स निकल कर कोपीन बदला, छाती पर पीठ पर गत्ता बाधा, चेले चपाटियो की मदद से मडलेश्वरो ने पूरी ठाट बनाई और नागाओ न गीले बदन कापते-कापते सारे शरीर म राख मली। पानी लगे बदन मे सूखी राख आटे की तरह चिपक गई। दूर से देखा पानी सूख कर सफेद राख काले शरीर मे जहा तहा निखर उठी। जरा ही दर म एक एक नागा श्वेत महेश्वर बन जाएग। किन्ही किन्ही ने घुमा फिरा कर जटा म भी राख छिड़की—शायद इसलिए कि जल्दी से सूख जायेगी। किन्ही किन्ही ने आपस म एक-दूसरे की पीठ पर राख लगा दी। आपस म कैसा मल जोल! देखने म इतने अच्छे लगते हैं न ये! सच मानो बमभोले सदाशिवो का दल हो! दुनिया म इन्ह किसी भी चीज की जरूरत नही। अपन को भूल गये हैं पराया का भूल गये हैं—हया शम की सीमा स परे। जहा रहती हू वही तो, बगल म ही निर्वाणी अखाडा है। जब भी मौका मिल जाता है जाती हू वहा। अगना म बरगद के नीचे राख की सेज बिछा कर जिन नागा साधु ने आश्रय लिया है—उनका स्केच किया। उन्हे कोई खयाल ही नही महज चार हाथ क फासले पर ही मैं, मेरा जरा भी खयाल न करके कभी वह धूनी की आग का उसका देते हैं कभी पीतल के त्रिशूल को राख से मलकर झकमका देते है या कभी डमरू को बजा कर देख लत हैं वह ठीक है या नहीं।

झटपट सबका स्नान हो गया।

कुछ ही क्षणो म आगे पीछे जसा उनका नियम है व खडे हो गये। फिर बाजे बज उठ, फिर पताका उडन लगी हाथी, चतुर्दोल हिल उठा, फिर से जुलूस शहर से होता हुआ विल्वकेश्वर के मदिर की ओर चल पडा। आज सभी शिव के माथे पर जल चढाएगे। कुछ लाग विल्वकेश्वर के माथे पर कुछ लाग दक्षेश्वर

के माथे पर चढाएगे। यहा के मही दो सबसे बडे जाग्रत शिव हैं—सब लोग कहते हैं।

घाट के खाली होते ही पुलिस ने रास्ता खोल दिया। एक के बाद दूसरे अखाडे के आने म जो समय लगेगा, उतना समय आम लोगो को नहाने क लिए दिया जाता है। साधुओ के नहान के बाद उस जल म नहाने की कामना बहुतो को होती है।

झुड के झुड लोग आकर पानी म उतरने लगे। दादा ने कहा, 'नहान तो देख चुके, चलो अब चलें। नही तो जाने फिर कब रास्ता बद कर देगा, हम निकल नहीं पाएगे।'

लबे डग भरते हुए हम चौडे रास्त पर आ रहे। दौडती हुई एक महिला न हमारा साथ पकडा। हाफ्ती हुई करीब आई। बोली —'आप लाग किस रास्ते से जाएगे?' शक्ल नही पहचानती, आवाज पहचानी-सी थी। फुसफुसा कर बडी-दी से कहा, देखा तो घाट वाली वही महिला तो नही! 'हू' करके बडी-दी आहिस्ते से बगल से चलने लगी।

अजीब मुसीबत है! गगा क किनार बैठ कर जा-जो झूठी बातें कही, अब उनको सभालू कैसे?

तेजी से कदम बढाया। भद्र महिला दौडती हुई साथ हो गई। सत्सग का यह कैसा उत्कट आकर्षण!

आखिर करू तो क्या। मुह घुमा कर अब उनकी ओर देखा। सुदर सावला-सा मुखडा। उम्र खास ज्यादा नही जिस उम्र म स्त्रियो के चेहरे पर एक स्थिर स्त्रीत्व का सौंदर्य निखरता है, उसी उम्र मे अभी-अभी कदम रक्खा है। बोलते म दोनो गालो मे गड्ढा पड जाता है, बडी-बडी दो काली आखो म सरल बुद्धि-भक्ति की दमक फूट उठती है। पहनाव म सीधी-सादी एक अधमैली साडी हाथ म सोने की दो चूडिया।

महिला बोली, 'आप लोग नई साधिका हैं देखते ही समझ गई स्कच बना रही थी—कलाकार हैं आप? मैं पुरान पथी हू फिर भी, आप लोगो को बिलकुल पहचान ही नही सकती, ऐसी बात नही।'

पूछा, 'आप किसकी शिष्या हैं? आपके साथ कोई है नही क्यो?'

— साथी की क्या जरूरत? मन मे आकाक्षा जागी, अकेले ही चल दी।

स्नान करके लौट जाऊगी। बस, एक ही दिन का तो रास्ता है। बताऊ आपको, भक्त मैं बहुता की हू, पर अभी तक दीक्षा किसी से भी नही ली है। सभी दीक्षा देना चाहते हैं मैं ही अपने मन को स्थिर नही कर सकी हू। घर म भी कहते हैं, अभी तो क्या ऐसी पडी है ? धरम-करम का समय बहुत मिलेगा। लेकिन आप लागो को तो पता है, कहिए तो भला, अदर से ताकीद आती रहे तो कौन चुप रह सकता है ? जो चीज अदर से उभरा करती है वह तो फूट निकलना चाहती है। आप अपनी ही दखिए न गो कि आपकी साधना अलग है, फिर भी जो इतनी दूर तक आगे बढ आई है—वह इसीलिए तो कि भीतर की ताकीद थी ?

बातो बातो म बात कहा जा रही। डर से मैंने प्रसग को बदल दिया।

पूछा, 'ब्याह कहा हुआ है ?'

— कुमिल्ला मे। बचपन से ही राची म पली—शादी हुई घोर गवई गाव मे।

कसे तो है न,

आम मजरी की गध, लाए हवा मधु मद
उडाएगी तुम्हारे अलक।
पोंड की झींगुर ताओ क्या मत्र सुनाए कानों
मुद आएगी आखो की पलक।

— गा कि उस समय इसके माधुय को नही समझा था। चारो ओर झीगुरो की झी झी और मारे डर के मेरा बुरा हाल। यह कहा आ पहुची मैं ? घना जगल, साझ हाते ही घुप अधेरा। वह कवित है न रविठाकुर ऋषि का नाम तो सुना होगा ? ऋषि ही थे वह। जो साधना वह कर गये वैसी साधना कितना मे करते बनती है ? वह लिख गये हैं न,

दीघिर कालो जले साझेर आलो भले
दुधारे घन वन छायाय ढाका।
पुरानो सेइ सुरे के येन डाके दूरे
कोथा से छाया सखी, कोथा से जल।

कोथा से बाधा घाट अशथतल ।'[1]

क्या कविता है ! उस समय तो समझ नही पाई थी, अब अतस्तल स उसका मम समझ रही हू। हर कदम पर उनकी कविता का सुर प्राणा को झकृत करता है। जरा दूर जाने पर ही मन ठीक चीज को ढूढ पाता है—है न ? इसीलिये अब सदा जी मे आता है—

'डीघिर सेइ जल शीतल कालो,
ताहरि कोले गिए मरण भालो ।'[2]

'अच्छा, आपकी साधना किस किस्म की है ? यह न सोचें कि मैं कुछ अश्रद्धा करती हू। सिफ जानना चाहती हू। नयी साधिका मैंने और भी देखी अवश्य है—शिक्षित सप्रदाय ।'

देखा, बडी-दी होठ दबा कर हस रही है। मैं उसे क्या जवाब देती हू, यह सुनने के लिये उन्होने चलते चलते भी काना को उत्कण कर रक्खा था। मन की जलन को मन ही छिपाये, जसे ये बहुत आवश्यक बातें हैं। इस तरह से बोली, 'आप ठहरी कहा है ? खाइयगा क्या ? देखिये बाजार के खाने से होशियार अकारथ जान चली जायगी ।'

वह हसकर बोली, 'आज तो खैर उपवास है। यो ही कुछ नही खाऊगी। मगर और दो एक दिन जो रहना है, बिना खाये कैसे चलेगा ? चल क्या नही सकता है ? इसके बारे म आपकी साधना मे क्या कहते हैं ?'

हाय राम ! ले देकर बस एक बात ! पूछा बाल-बच्चे कितने है आपके ? उन सबा को कहा छोडकर आयी ? किसके पास—' सोचा यही एक रास्ता है जिस बात म किसी भी मा का मन ससार की ओर घूम जायगा।

वह बोली, 'बस एक लडकी है आठ साल की। ज्यादातर अपनी फूफी के पास ही रहती है। वह तो रेलवे म इजीनियर हैं—घूमत रहने का काम। आज यहा,

1 पोखर के श्याम जल म साझ की आभा झलमलाती है दोनो ओर के घन वन झाड से ढके। उसी पुराने सुर म कौन तो जाने दूर पर पुकारती है—हाय सखी कहा वह छाया और कहा वह पानी। वह बधा घाट और पीपल की वट-छाया कहा ?

2 पोखर का वह पानी शीतल और काला है। उसी की गोद में जाकर मरना भला।

ता चल गया। बच्चा का पढ़ना लिखना ठीक से हो नहीं सकता। पूरी स्कूल में लिखाया है। मनोजी को उन्होंने अपने ही पास रख लिया। यही तो है दुनिया अपनी। आपको इस विषय की जानकारी और ज्यादा है। आप ही मुझे यह सब जरा समझा दें न सुनूं।

परेशान सी इधर-उधर ताकने लगी। सामने ही मौलागिरि का आश्रम था। मन में भक्तों की भीड़। पूरा भारत मैं भीड़ में दुबक गयी। वह जरा देर इधर उधर ताकती रही फिर सामने जो धर्मशाला थी, उसी में घुस गयी। इतनी देर के बाद बड़ी मैं ... अब जवान वाली, तुम्हारी वजह से इज्जत आबरू बचाना मुश्किल है। आप जो करती हो करो मगर फिर कभी मुझे जो घसीटा—'

वहां से सीधे दशघाट आ गयी। यहां दनेश्वर शिव हैं। बेशुमार लोगों की भीड़। प्रांगण में विराट मेला लग गया था। कागज का बाजा, खोए का पेड़ा, बेसन का लड्डू गरम-गरम जलेबी दही की लस्सी बलून झुनझुना, काठ का घोड़ा, रंगीन कागज का खिलौना छाता फूलों का गुच्छा सोले के डंडे पर मना-सुग्गा दुम वाले हनुमान जी—और भी क्या-क्या! बूढ़े बरगद तले बचपन में जैसा रथ का मेला देखा था। एक तरफ दो बैंचों वाली थाली में ईख पेर कर काँच के ग्लास में बरफ के टुकड़े देकर रस बेच रहा है। सूखे गले में यह ठंडा और हरा रस जाने कैसा अमृत-सा लगता है। जाने क्या मैंने मरने के लिये आज उपवास का नाम लिया। थूक घोट घोटकर देखने लगी—एक एक परिवार बहू-बेटी बाल-बच्चों के साथ गोल होकर बैठे मिठाइयां खा रहे हैं।

ये सब भी दिन भर चक्कर काटते चल रहे हैं—भूखे पेट में थकावट ज्यादा आती है। लंबे-लंबे बेर तीन आने सेर—लड़के की मौसी ने आकर भरकर खरीदा। संतरे को दबा दबाकर देखा मोल में पटरी नहीं खायी—बच्चे को गोदी में उठाकर मां चलती बनी। पेड़ तले छांह में पश्चिम के बाबू चादर डाले दोस्तों के साथ घुटने पर पांव उठाये पड़े हैं। चारों तरफ एक तृप्ति सी विश्राम का भाव सा। दादा ने कहा 'मैं यहीं बैठता हूं। तुम लोग जाओ शिवजी के माथे पर जो भी चढ़ाना हो चढ़ाकर आओ। मैंने मन में मान लिया—सती के पुण्य से ही पति का पुण्य है।

शिवमंदिर के पास पहुंची तो आंखें कपाल पर पहुंच गयीं। ऐसी धक्कम

घुक्री ! और मदिर मे जाने का रास्ता बहुत सकरा। तिस पर रास्ते के दोना ओर ऊंची घनाई का ओसरा—दीवाल ही कहिये। सकरी सुरग हो जसे। उस रास्ते पर तगडे-नगडे पछाई जवान, पजाबी मारवाडियो की ठसमठस कतार—चावला की तरह चिपटी। माथे पर अपने-अपने अघ्य भरे हाथ को उठाकर कधे, छाती से टकराते हुए लोग आग की ओर बढते जा रहे हैं। यह लबा क्यू' कब से बढ रहा है और कब मदिर मे पहुचेगा—यह देखकर ही मूर्छा आने की नौबत। दक्षेश्वर के छोटे-से दरवाजे से एक ज्यादा आदमी एक साथ अदर नही जा सकते। दो ही दरवाजे--एक स आदमी अदर जाते, हैं दूसरे से एक एक करके बाहर निकल आते हैं। सोच ही नही पा रही थी कि यह भीड पतली कब होगी। पल पल क्यू की पूछ मे आदमी बढते ही चले जा रह थे।

बडी-दी के चेहरे पर उदासी घिर आयी। ब्रजरमण ने कहा, आप यहा से मन ही मन महादेव को प्रणाम करके अजलि अर्पित कीजिये—मैं दूध और फल फूल का पात्र लेकर जाता हू दक्षेश्वर के माथे पर चढा आऊगा।'

यह प्रस्ताव फिर भी अच्छा था। बडी दी नासमझ नही है। उछलकर हम चौतरे पर चढ गयी। दरवाजे की फाक स शिवजी नीचे क फश के बीच मे दिखाई दे रहे थे। फूल-बेलपत्ता मुट्ठी म भरकर बडी दी ने शिवजी का नाम लेकर छीट दिया। ब्रजरमण पीतल की बाल्टी मे दूध और फल ऊपर की ओर उठाकर भीड मे घसकर खडे हो गये।

यहा और रुकने से क्या लाभ ? दादा के पास चली आयी। उन्होने रास्ते के किनारे एक टूटे बरामदे म पनाह ली थी। पाव पसार कर आराम से बठ गई। नीचे एक वष्णवी गमछा बिछाकर भीख माग रही थी। उसकी ओर दिखाते हुय दादा ने कहा 'मजा देखा है, इसका घर ममनसिह है, विधवा ब्राह्मणी है—अब तक मैं इसी स बात कर रहा था।'

घुटने पर घुटना रखे वैष्णवी सिर झुकाय चुपचाप बैठी थी। जाने डबकर क्या सोच रही थी। काफी वक्त बीता। अचानक उसने सिर उठाकर पूछा 'मुसलमानो ने क्या एक बारगी मार दिया ?

— क्या ?'

—'हमारे देश को ? ममनसिंह को ?'

विधवा ब्राह्मणी, कम उम्र तीर्थस्थान —उन्मना, मदरी, दुखिया, भिखारिन—कुल मिलाकर, पता नहीं बीते दिनो का क्या निष्करुण इतिहास है।'

उसने कहा 'उन्ही लोगो के मारे तो भाग आयी। भाग बिना उपाय क्या था। छुटपन म ही विधवा हुई। बाप जीवित न थे। बड़े भाई के साथ रहती थी। वही एक भाई था। मुसलमान लोग मुझे टिकने नही दे रहे थे साँझ-सवेरे धमकी। आखिर एक दिन आधी रात को उनकी एक टोली आ धमकी—भाला, गडासा लिए। घर को घेर लिया। कहा—या नही जाती तो तेरे भैया को काटकर तुझे खीच ले जाएगे ! दीदी ने मुझे समझाया अब तो तुम्हारा यहा रहना नही हो सकता। तुम्हारे लिए मा के पेट का भाई मारा जायगा ? अगर भाई को बचाना चाहती हो तो देश छोडकर भाग जाओ। भाग आयी पिछले असाढ म तेरह साल हो गये।

गठिए से अब पगु हो गयी है। हाथ-पाव ठीक से हिला नही पाती। और, महीने भर पहले एक गाय ने सीग मार कर एक आख कानी कर दी।

रास्ते से एक धनी, बदन पर अरगडी का कुरता पैसा छीटते हुए मंदिर की ओर जा रहे थे। भिखारियो की जो पात सामने की ओर थी वैष्णवी उसके पीछे हो गई थी। उस पर दाता की नजर नही पड रही थी। गमछे को उठाकर घिसटती हुई वैष्णवी आगे बढकर हाथ फैलाती हुई महीन गले से बोल उठी बाबू ओ बाबू थोडी सी भीख यहा दो न !

बडी दी बोली, नसीब जली का हाथ पाव देखो, पत्ते की तरह कैसे छोटे-छोटे हैं। कभी भले घर की लडकी जो थी।

निर्वाणी अखाडा आ चला। रास्ता छोड दोरास्ता छोड दो —फिर शोर मचा। आज कब कहा अटक जाना पडे कोई ठिकाना नही। इन साधुओ के आने से पहले ही डेरे लौट जाना चाहिए। और सेवाश्रम म भी आज पहर पहर शिव की पूजा होगी। मौजूद रहना चाहिये। कम स कम शुरू की तरफ तो जरूर ही। बडी दी से सलाह हो चुकी थी—शिवरात्रि म जगह जगह घूम होगी सारी रात घूम घूम कर देखेंगे। मैंने फिर से वह रात वाली बात नही उठाई, द्विप्रहर रात्रि होते ही सो गयी।

बड़ी दी बोली—'कुभ स्नान, कुभ स्नान—हो गया। खैर निश्चित हुयी।

भूखे पेट नीद नही आयी। हवा के झोको से पास के दोनो युक्लिपटस के पेडो की डालें आपस मे टकरा कर रात भर भट-भट करती रहो।

एक किस्सा सुना था। एक बुढिया तीरथ को आयी मगर अपनी सम-बोडे की ततरो को याद न भूल सकी। मदिर-मदिर मे ठाकुर के दशन करती और सोचती, शायद गया घुस आयी बकरी लतर चबा गयी। बुढ़िया लतरो के लिये जो याद लिये आयी थी वसी ही लौट गयी। देव-दशन नसीब नही हुआ।

वही दशा मेरी भी हुयी क्या ? नीद टूटते ही लौकी के मचान की याद क्यो गडने लगी। पता नही क्या हुआ उसका। आते वक्त कितनी बतिया देख आयी थी उसमे ! इतने दिना मे जरूर ही बडी-बडी हो गयी होगी। रोमू ने उन सबो का क्या किया ? किसको किसको दिया ? क्या क्या पकाया ?—कुए पर धूप मे पीठ रख कर कितनी ही बातें सोचने लगी।

कित कष्ट की है वह लतरो लौकी की ! यही पहली बार मेरी लत्तड मे लौकी लगी। सुना है बेशुमार, बेहिसाब फलती है लौकी। खाकर, बाट कर खत्म नही की जा सकती। लोग काट-काट कर गायों को खिलाते हैं। और, मैं लगाती तो लतर होती फुनगिया फैलती, फूल फूलते और एकाएक एक दिन लहलहाती लत्तर मुरझा जाती। क्या, तो जड मे दीमक लग गया, घोंघे ने जड काट दी, असली मोटी लत्तर म कीडे लग गय, ज्यादा खाद पडी इसलिये जड सड गयी—कितनी कितनी आफत।

कई दिनों तक उधर नही गयी। माया बढाने से क्या लाभ ? जो रहने की नहीं, वह सहज मे ही चली जाय।

कबख्त मन से चुप नही रहा जाता। पाचेक दिन के बाद दिन के काम-काज चुका कर चोटी गूथती हुई एक दो डग भरती आखिर मचान के पास जा खडी हुयी। आडे-आडे लत्तर की तरफ ताका। जिसकी माया त्याग दी उसकी तरफ क्या सीधी निगाहो ताका जा सकता है ?

—रे रोमू रोमू दौड, देख जा—' जोर से चिल्ला उठी मैं। पत्ते की आड मे छोटी-सी एक लौकी नजर आ रही है।' रोमू दौडा-दौडा आया, 'कहां-कहा ? ऐ मामी जी, वह रही एक और—वह देखो और एक, और भी एक।' लतर के

चारो तरफ उसने दौड धूप शुरू कर दी। फैली हुई लत्तर में कितनी नन्हीं कोमल लौकिया।

मेरी वही लौकिया बडी हुइ, मैं देख भी न पायी।

—यहा हो तुम ? मैं यहा वहा खोज मरी तुम्हें।'—कहते-कहते बडी-दी आयी। बोली, चलो, जल्दी तबू म चलो। टोकरी भर मटर की छीमियां दे गया है, उन्हें छुडाना है। रामकृष्ण देव के जन्मोत्सव का भोग होगा। ज्यादा समय नही है। झटपट जुट जाओ।'

दल बाधकर टोकरी को घेर करके बैठ गयी। खेत से तोड कर तुरत-तुरत ताजी छीमिया लायी गयी थी—हाथ से पट पट दबाती और झर-झर दाने निकल आते। सोचा था, समय ही कितना लगेगा ! मगर देखा, दोपहर ढल गयी ! बडी दी ने झाड झूड कर एक एक दाने को उठाया, छिलके और दानो को अलग-अलग टोकरी म सजो कर आखिर कमर सीधी करके खडी हुयी।

'दिन बीते झूठे कामो म, रात गयी निंदिया मे'—बडी दी की कृपा से यह होने का उपाय नही। इस समय हमारे जीवन का एक ही उद्देश्य—सत् काय सत सग। दिन रामकृष्ण देव की सेवा मे लगा कर शाम को साधु-दशन को निकली। बडी दी ने कहा, उस दिन भडारे मे लगा कि महादेवानद जी को देखा, भोला-गिरि आश्रम के मडलेश्वर है वह। चलो न, चलें शायद उनके दशन हो जाए। बहुत दिन पहले एक बार सिलचर थे।

महादेवानद जी छत पर टहल रहे थे। इस समय रोज ही थोडी देर पायचारी करते हैं वह। हम कुछ देर इतजार करना पडेगा।

मदिर पार करके हम अगना मे पहुचे। आश्रम के लोग जाते आते रहे सर उठाकर देखत रहे, लेकिन हम कहा बठें यह किसी ने नही बताया।

दादा ने कहा करना क्या है खडी ही रहो। दशन के लिये लोग कितना कष्ट उठाते हैं और हम से इतना भी न होगा ?

अगना म ककडो पर खडी सोचने लगी घास रही होती तो कितने आराम से बठ जाती ! इतनी दूर चलकर आयी, पर दुख रहे थे।

महादेवानद जी नीचे उतरे। अगना के ठीक बीच मे एक आराम कुर्सी पडी

थे। बगल में, पीठ में कुशन। रोज शायद यहीं आकर बैठते हैं। महादेवानंद जी के उतरते ही एक ने आराम कुर्सी को झाड़-पोंछ कर जरा आगे खींच दिया। वह बैठे नहीं। चारों ओर ताक कर अंगना के एक ओर एक खाट पड़ी थी, हम लोगों से बातें करते हुये वहीं जाकर खड़े हुये। भक्त सेवक ने आखिर आराम कुर्सी वहीं ला दी। वह बैठे आमने-सामने खाट पर हम भी बैठ गये पांव लटका कर। जान में जान आयी।

—'छोटे और बड़े में यही पर फर्क है'—दबे गले से बड़ी-दी बोली।—'देखा न, उन्होंने आते ही पहले देखा कि हम कहां बिठालेंगे। इसीलिये अपना आसन छोड़कर इतनी दूर आ गये।'

बूढ़े आदमी हंसमुख। सीधीसादी बातों से सहज ही गप शप जम गयी। दादा ने पूछा, 'हम जैसे मामूली गृही लोगों के लिये साधना का सहज रास्ता क्या है ?'

महादेवानंद जी कुछ देर चुपचाप माला जपते रहे। बोले,

'भज है मन हरे नाम—
गौरी शंकर सीताराम,
राधे कृष्ण राम राम,
खाली जिह्वा कौन काम ?

थोड़ा कर वह हो-हो करके हंस पड़े। बोले, 'यही असली बात है। खाली जिह्वा कौन काम ?—जीभ को खाली रखने से क्या लाभ ? हाथ-पांव से काम करते रहने पर भी—शिव शिव शिवो, शिव शिव शिवो—यह तो हरदम ही बोला जा सकता है। नाम जप सदा करना होगा। एक बार एक स्त्री ने आकर कहा मुझको आप गायत्री मंत्र दीजिए। मैंने पूछा, तुमने किसी से मंत्र दीक्षा ली है ? वह बोली, हां, ली है पर वह दूसरा मंत्र है। मैं गायत्री मंत्र चाहती हूं। मैंने कहा, देखो सभी मंत्र एक ही हैं ? गायनात् त्रायते इति गायत्री—बार बार जिसका गान करने से त्राण मिलता है, वही गायत्री मंत्र है। मननात् त्रायते इति मंत्र—जिसके पुनः पुनः स्मरण करने से त्राण मिलता है, वही मंत्र है। एक ही बात है। तुम्हें मंत्र लेने की आवश्यकता नहीं, उसी मंत्र का स्मरण करो।

हां मंत्र सब जगह, सब अवस्था में लिया जा सकता है। इसी बात पर एक

सभा म बडा तक खडा हो गया। एक दल ने नही माना, उन्होने कहा, अशुचि अवस्था म मत्र का उच्चारण नही चल सकता। मैंन कहा बखूबी चल सकता है। यह सुनकर सभा मे गडबडी शुरू हो गयी। कुछ छोकरा ने जूता घिसना शुरू कर दिया मैं जिस पडित का प्रतिवाद कर रहा था, दल उसका बडा था। सभा टटे टूटे, ऐसी हालत हो गयी। एक ने उठ कर कहा, आप प्रमाणित कर सकत हैं कि सब अवस्था म ही मत्र का उच्चारण चल सकना है ? मैंने कहा, बिलकुल प्रमाणित करूगा। मुझे मात्र पाच मिनट का समय दिया जाय।

'पाच मिनट के लिए सभी जरा शात हो गए।

मैंने कहा अपवित्रता की कहे तो हमारी सारी देह ही अपवित्र है। हमारा सारा शरीर गदी वस्तुओ से भरा है। जन्म जन्मग्रहण—हमारा तो सब कुछ गदगी से ही है। पवित्रता कहा पर है ? शरीर के कौन-से हिस्से को काटकर फेंकिएगा ?

आखिर सभा के सारे लोगा न मेरी बात मान ली।

मगर बात यह है कि जप तप करने के समय सुविधा हा तो जितना साफ-सुथरा रहा जा सके अच्छा है। जप-तप करने से मन को एकाग्र तो करना है।'

व्रजरमण ने पूछा, 'स्नानादि का प्रयोजन कितना है ?' वह बाले स्नान करने से शरीर और मन बहुत कुछ शुद्ध होता है। समय हो, सुविधा हो तो यह अवश्य करना चाहिए। लेकिन राह बाट मे बीमारी की हालत मे तो नहाया नही जा सकता। उसके लिये भी विधि है। शास्त्र म आठ प्रकार के स्नान का उल्लेख है। उनमे से तीन तो जहा-तहा, जब तब किया जा सकता है। जसे गगा स्नान। शरीर पर गगा जल के छीटे देने स ही काम चल जाता है। आग्नेय स्नान—यज्ञ का भस्म कपाल गला हाथ छाती, पीठ—शरीर के पाचो अगा मे मलने से आग्नेय स्नान होता है। यह स्नान सबसे सुविधाजनक है। किसी डिब्बे म यज्ञ का भस्म भरकर रख लिया। जरूरत पर काम मे लाया। कहीं जाते हा तो कागज की पुडिया मे जेब म डाल लिया। एक स्नान और है वायव्य स्नान। गाय के खुरो की मिटटी। गाय के चलने से माटी पर उसके खुर का जो दाग लगता है उसकी माटी। उसे कहते हैं—गोपदरज। यही गोपदरज शरीर के पाचो स्थाना मे लगा लीजिए स्नान हो गया।

शायद ठड लगे, इसलिए एक भक्त ने चादर लाकर महादेवानद जी पर डाल

दी। भोलागिरि आश्रम के शिव मंदिर में आरती का घंटा बज उठा। अब इन्हें रोक रखना उचित नहीं। हम लोग उठ खड़े हुए।

मंदिर में पास-पास तीन कमरे। श्वेत पत्थर के बीच में शिवजी स्थापित हैं। चांदी की आठ पखड़ियों पर चांदी के शिव—नए प्रकार के। इससे पहले कहीं नहीं देखा।

दाईं ओर के कमरे में शंकराचार्य की मूर्ति। बच्चे जैसा मुखड़ा। देखने में यह मूर्ति बड़ी अच्छी लगती है। यह सोचकर दंग रह जाती हूं कि कितनी कम उम्र में यह किस अपार पांडित्य के अधिकारी हुए थे।

कहानी सुनी है, छह-सात साल की उम्र में ही शंकराचार्य ने संसार छोड़ना चाहा था। मां ने बाधा दी।। एक दिन नहाने के लिए वे नदी में उतरे थे, मगर ने उनका पांव पकड़कर खींचा। मां घाट पर खड़ी थी। शंकराचार्य ने कहा, 'मां, तुमने मुझे संन्यास नहीं लेने दिया, अब देखो कि तुम्हारी नजरों के सामने ही किस तरह से मगर खींचे लिए जा रहा है मुझे।' मां अकचका गयी।

मगर जितना ही खींचता, शंकराचार्य उतना ही चीखते—मां, तुमने मुझे सन्यास की अनुमति नहीं दी, अब देखो क्या हो रहा है?

खींचते-खींचते मगर शंकराचार्य को बीच नदी में ले गया—बस, गला भर डूबने को बाकी था। ढंग से भी उन्होंने कहा 'मां मुझे मगर ले गया, तुम इसको सह सकीं, मगर मेरा संन्यास लेना तुमसे नहीं सहा गया'। तब-तक मां की सुध लौटी। वह बोल उठी, 'मैं तुम्हें संन्यास की अनुमति देती हूं, तुम बाहर निकल आओ।'

यह सुनते ही मगर से पिंड छुड़ाकर शंकराचार्य बाहर निकल आए। और आते ही संन्यास लेकर संसार छोड़कर चले गए। सोलह साल की उम्र में उन्होंने सभी शास्त्र समाप्त करके वेदांत का भाष्य, गीता का भाष्य, बारह उपनिषद का भाष्य लिखा। पैदल चलकर कुमारी अंतरीप से हिमालय, इधर कामरू कामाख्या तक पर्यटन किया।

बत्तीस वर्ष की आयु तक जीवित थे। इतने ही दिनों में क्या नहीं किया उन्होंने। पुरी में गोवर्धन मठ, बद्रीनारायण में योशी मठ, द्वारका में शारदा मठ काशी में शृंगेरी मठ—चार स्थानों में चार मठों की स्थापना की। हिंदू धर्म को

सुनियन्त्रित रूप से सवार कर संन्यासी सम्प्रदाय को दशनामी मुक्त कर गए। उन्होंने अपने एक जीवन में ज्ञान का जो दान दिया, लाखों लाख ज्ञानी आज भी बिना किसी दुविधा के उसे मानते चले जा रहे हैं।

बड़ी-दी ने कहा, 'स्वयं महादेव ही शंकर रूप में अवतीर्ण हुए थे। गीता में है—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत—जब-जब धर्म का विलय होता है धर्म की रक्षा के लिए भगवान हमारे बीच आते हैं। शंकराचार्य भी वैसे ही धर्म विलय के समय में आए थे। जब एक ओर देश के ऊपर बौद्ध धर्म की बाढ़ आई, दूसरी ओर मुस्लिमों का जुल्म जारी हुआ—शंकराचार्य आकर हिंदू धर्म की नींव को फिर से मजबूत कर गए।

और मंदिर के उस तरफ, शिवजी के बाईं ओर वाले कमरे में भोलागिरि की श्वेत पत्थर की मूर्ति। ऊपर से आंखों पर काला चश्मा जैसाकि वह लगाया करते थे। ढाका में रहते समय बचपन में कई बार भोलागिरि को देखा था। लंबा चौड़ा, हट्टा-कट्टा, गोरा चिट्टा शरीर। उन्हें देखने के लिए कितनी भीड़ लगती थी! जहां जाते, वहीं ऐसी धूम धाम होती, गोया वह बेटी के ब्याह का उत्सव हो! मैं मां का आंचल पकड़ कर जाया करती थी। वह मूर्ति मैं आज तक नहीं भूल सकी हूं। *पत्थर की बनी यह मूर्ति मानो कुछ दुबली-सी लगी। शायद उनके जीवन के अंतिम समय की हो!*

भोलागिरि के ही मुंह से सुनी थी, जाने कितने दिन पहले की बात। ढाका के मशहूर धनी—बाबू के पोते ने स्वर्गीय स्त्री की याद में शहर से दूर अपने ही एक बगीचे में शिवजी के मंदिर की प्रतिष्ठा की। दिन भर घूम सबके लिए द्वार खुला, भोलागिरि स्वयं वहां उपस्थित, उन्हें देखने के लिए कितनी कितनी दूर से कितने लोग आ रहे थे!—याद है, वह सज्जन, जिन्होंने मंदिर की प्रतिष्ठा की नंगे बदन, सुनहली बूटीदार बगनी रंग की बनारसी पहन शिवजी की मूर्ति को माथे पर रखकर मंदिर की परिक्रमा कर रहे थे। कितने पहले की बात मगर आज भी वह छवि आंखों में साफ झलकती है। एक कमरे में भोलागिरि बैठे हैं, भक्तवृंद उन्हें घेरे हुए हैं। पता नहीं मैं कैसे तो उस कमरे में आ पहुंची। अभी आज, महादेवानंद जी ने जैसा कहा—मुंह से 'शिव शिव शिवो' कहो और हाथ से काम करो—उस दिन उस कमरे में भी मैंने ठीक यही सुना था। भोलागिर अपने शिष्यों को समझा रहे थे—एक हाथ से चरखा चलाने और दूसरे से सूत खींचने की अदा

दिखाते हुए कह रहे थे, 'देखो, हाथ से यो सूतना और मुह से कहा करना, 'शिवो शिवो शिवो'।

अधेरे म हडबडा कर चलते समय रास्ते मे जाने किससे जोर का धक्का लग गया। वह चीख उठा, 'कौन है रे ? आख खोल कर नही चल सकता !'

कैसी मुलायम और महीन आवाज ! रज हुआ है, फिर भी आवाज से मानो शहद की मिठास निकल रही है।

टार्च बत्ती जलाई। कलेजा मरोड उठा। इसी कलेजे से उसका सर टकरा गया था। मेरे अभिजित की उम्र का एक कोमल किशोर, दोनो आखो का अधा।

गुस्से, से दु ख से उसके दोनो हाठ उस समय भी काप रहे थे। कोई जवाब न पाकर मेरे बदन पर हाथ फेर फेरकर टटोलते हुए उसने कहा, कौन ? सेठानी ? अहा-हा, गुस्से मे मैं किसे क्या कह बैठा। माफ करो, माफ करो मुझे।'

सखुए की ओट मे पैरवा का चाद उगा था। मन की गुफा की जाने किस अतल गहराई मे एक पीडा की बासुरी गूज उठी। सुनना नही चाहते हुए भी उस सुर को टाल नही पा रही थी। जी मे आने लगा, कोलतार की इस चौडी समतल सडक से छिटक कर उस जगल के अदर ऊबड-खाबड ककरीली राह पर छिटक कर जा रहू, जा रहू काली-काली कटीली झाडियो मे।

बाइ ओर वाले घर के ओसारे पर अधनगे शिशुओ के दल को लेकर एक बूढा बैठा था। बीच मे मिट्टी के तेल की एक ढिबरी मानो कोई मजेदार खेल हो। पोपले मुह हसते हुए वह बुड्ढा ढोलक पर थाप मार कर गा रहा था—

'सुख-दुख कुछ भी नहीं इस जग मे—
अरे मन, दुत बनो नाम नशे मे,
वह सुधा सना राम राम ही सब कुछ है।
बोलो, राम राम।

उमग कर बच्चो ने धुन उठाई— राम राम।

रात बीत चली थी, तभी से पता चल रहा था कि बाहर साय-साय हवा बह रही

है। बिछौने पर लेटी-लेटी साफ सुन रही थी। गनीमत कि डबल कपड़े वाले तंबू में हवा नहीं घुसती। नहीं तो फिर क्या गत होती! सिरहाने की तरफ कपड़े में ही कटी खिड़की—हलके परदे से ढकी। बार-बार सर उठाकर देखने लगी, वहां पर सुबह की जोत कितनी निकली। तमाम रात कसरत करके कंबल के अंदर मुंह ढककर निश्वास प्रश्वास से बंगा को थोड़ा गरम किया था, इसी समय जरा आराम की खुमारी-भी लग रही थी। और अभी ही बिस्तर छोड़कर उठ जाना पड़ेगा!

आज सुबह ऋषीकेश जाने की बात थी।

मुंह उघार कर आखें पिट पिट करके देख लेती, कौन जगा कौन नहीं जगा है देखकर फिर मुंह ढक लेती। पहले और लोग उठ लें। उठ कर तयार हो लेने के बाद जब तक मुझे ताकीद नहीं करते, मैं बिस्तर नहीं छोड़ती। मगर ग्रह का ऐसा फेर बड़ी-दी उठकर कब जो बाहर जा चुकी थीं मुझे पता ही नहीं चला। गीले गमछे को निचोड़ती हुई अंदर आयीं। भीगे बालों से टप-टप पानी च रहा था। उन्होंने इधर-उधर देखा और मुझे सोते देखकर खाट के पास आ गइं। और दिन होता, तो बड़ी-दी मेरे कपाल पर हाथ फेरते हुए धीरे धीरे पुकारतीं—'उठ पड़ो चाय की घंटी बजने का समय हो आया।' लेकिन आज उन्हें बहुत काम था। दिन भर के लिए सब कुछ सजो-सहेज लेना था उन्हें। आज इसीलिए कपाल पर हाथ रखकर उन्होंने एक झटका दिया यानी, उठ जाओ।

भोर का समय, ब्रह्ममुहूर्त। बतकही की गुंजाइश नहीं थी—लिहाजा हाथ-पांव सिकोड़े उठ बैठना पड़ा। बठने से भी नहीं चलने का, बिछौने से उतर पड़ी। उतर कर तंबू के दरवाजे को हटा कर मुंह निकाला—अरे बाप रे! लमहे में खोली में मुंह छिपाकर कछुआ बन गई। लगा सर्दी ने हमारे निकाले हुए मुंह पर हजारों डंक वाला एक थप्पड़ लगा दिया।

लेकिन अंदर बठे तो दिन नहीं कटने का निकलना ही पड़ेगा। बड़ी दी की तरफ ताका। साड़ी की लाल कोर से घिरे मुखड़े पर सर्दी के हमले की कोई निशानी नहीं थी। उन्हें देखकर हिम्मत बटोरी। आखिर वह भी मनुष्य हैं मैं भी मनुष्य हूं। अगर वह तयार हो सकती हैं तो मैं क्यों नहीं हो सकूंगी। तो? दतवन लोटा, तौलिया हाथ में लेकर धड़ाके से निकल पड़ी।

चाय पीकर, झोला झोली कंधे पर लटका कर बस स्टैंड को चल पड़ी। दिन

भर के लिए एक मोटर त हो गई। सवार हो गई उस पर।

सरपट भाग चली मोटर। देखते ही देखत शहर पार करके निजन वन के रास्ते पर पहुच गई। दोना तरफ सखुआ, जामुन, नीम अश्व के पेड। बीच-बीच मे आवला भी नजर आ रहा था। रिजव फारेस्ट। छाह शीतल रास्ता।

साथ म शशी महाराज थे। उन्होंने कहा, पहले यहा हमेशा हिरन और मोर दिखाई देते थे। हैं अभी भी। हो सकता है लौटते वक्त नजर आए।'

दूर पर जगल से घिरे पहाड पर सादे मकानो की कतार झलमला उठी।

शशी महाराज ने कहा यह नरेंद्र नगर है। अभी वह टिहरी के महाराज की राजधानी है।

राजधानी मे अग अग म सूरज की किरणो ने कसी शोभा निखार दी थी! जितना ही आकी-बाकी राह स चल रही थी राजधानी कभी दाए कभी बाएँ कभी सामने, कभी पीछे—पल-पल घूमत हुए उसने नाचना शुरू कर दिया, लुक्का चोरी खेल रही हो जसे। घूम घूम कर मुग्ध नयनो उसकी ओर ताकती रही और उनके साथ सुर मिलाकर मन ही मन खिलखिला कर हसती रही।

ऋषीकेश के रास्ते मे 'सत्नारायण' का मदिर। 'नारायण जी के दशन करके ही चलें'—शशी महाराज ने निदेश दिया।

हम लोग गाडी से उतर पडे। सामने की सीट पर थे शशी महाराज। दरवाजा खोल कर पाव दान पर पाव रखते ही मानो गेहुअन साप पर नजर पड गई, हडबडा कर पाव समेट कर उन्होने खटाग से दरवाजा बद कर लिया।

हो क्या गया उन्हे ?

वह बोले, आप लोग आगे बढिये, मैं पीछे से आ रहा हू।—कहकर सिमट सिमुट कर शशी महाराज गाडी पर बैठे रहे।

फाटक से मदिर के अदर जाने लगी तो देखा बडी-दी खिक् खिक करके हस रही हैं। माजरा क्या है ? बडी-दी ने पीछे पलटकर शशी महाराज की ओर देखा, फिर उगली से फाटक के कार्निश की तरफ इशारा किया। उस पर चार पाच बदर बैठे थे। यात्रियो को देखकर कुछ खाने के लिए मिलेगा, इस आशा से उसु खुस कर रहे थे। अब समझ मे आया कि शशी महाराज उतरे क्या नही।

सत्यनारायण—काले पत्थर की मूर्ति सुदर, सुडौल बनी। लेकिन काले पत्थर की काली आखो से भक्तो को तृप्ति नही हुई—उन्होने चादी के पतले पत्थर की आखें लगाकर उन पर काली पुतलिया बिठा दी हैं। इसीलिये, सभी मूर्तिया मे देखती हू, देवता के मुखडे पर आखे मानो जलती रहती हैं। सादी आखो म गोल काली पुतलिया निगाहो को कसी तो तज कर देती हैं—इससे देवता की आखो की वह कोमलता नही रह जाती। सुना था, रामकृष्ण देव न एक बार किसी से कहा था— तुम लोग देवचक्षु आकना नही जानते। मुझे दो, मैं आक देता हू। और उन्होन अपने से देवता की आख आक दी थी। देवता की आखें भी भक्त के हाथ क स्पश का आसरा करती हैं।

सत्यनारायण के पास ही एक पनचक्की। घटाघट चक्कियो की आवाज के साथ पिसकर आटा निकल रहा था। खुले मे एक कुड। उसी कुड के पानी को इतनी सी जगह म ऊचा नीचा करके लाकर इस पनचक्की को चलाने के काम म लगाया गया है।

कुड के बीच मे एक मदिर। पानी पर बधे हुये रास्ते स मदिर म गयी। कौन-स देवता है यहा ? सीढी क पास एक बगाली परिव्राजक बठ थे। रूखे दुबले-पतले—कुछ दिनो से यहा आ टिके हैं। बगाली यात्री दखकर वह हमारी ओर बढ आये। बोले यह शिव की मूर्ति है।

यह मूर्ति शिव की कसे हो सकती है जबकि मूर्ति का ज्यादा हिस्सा लाल कपडे स लिपटा था बाकी तेल सिंदूर पुता। बडी-दी किंतु परतु करने लगी। बोली 'चिह्न से अलग-अलग देवता पहचाने जाते हैं। इसम शिव का तो कोई चिह्न नही मिलता।

परिव्राजक न कहा तो विष्णु।

बडी-दी ने सिर हिलाया उहू विष्णु भी नही।

— तो फिर रामचद्र ही होंगे।

यह आदमी पागल तो नही है ।

ब्रजरमण अब तक बडे ध्यान स देख रहे थे। उन्होने कहा मूर्ति के चरणो तले सप दृष्टिगोचर हो रहा है दोनो ओर पक्षी के दो डन दिखाई दे रहे हैं आखो की आकृति गोल, मुह मे चोच है। मुझ लगता है यह मूर्ति गरुड की है।

वही तो । नारायण के वाहन गरुड, गरुड के बिना उनका कैसे चलेगा !

फिर जाकर गाडी पर बठी । फिर दोनो बगल से पेड दौडने लगे, जगल दौडने लगा, भागने लगे हरे-भरे खेत, खेतिहरो की बस्ती, भैसागाडी, भेडो का झुड—कितना क्या । इस तरह बगल से निकल रहे थे कि जरा भी दया माया नही । कहा, मैं तो इस तरह से नही जा सकती ? जाते जाते उसी बीच पुराने पेड के तने को पकड लेती हू, पकड लेती हू सरसो के खेत पर झर पडी धूप की झलक को । मन को डुला जाती, मन को—ग्वालिन के भारी घाघरे के नीचे लगाई लाल कोर की रेखा—परत-परत मे चलने की ताल-ताल पर उलझ पुलझ पडती । डाल और लता ने आपस मे लिपट कर धुधली जोत सनी जो झाडी तैयार की है उस आश्रय का प्राण रो उठता ।

बाजार के मोड पर गाडी रुकी । ऋषीकेश आ पहुचे हम । हरिद्वार की तुलना मे *ऋषीकेश बहुत निर्जन है । एकात म साधन भजन के लिए साधु-सत* यही ज्यादा रहत हैं । तीर्थयात्रियो की भीड जरूर हाती है पन्तु वे लोग आते और चले जाते हैं—खास टिकते नही ।

हरिद्वार को देखकर लगा था हरिद्वार पहाडो की गोद म है । देखा, ऋषीकेश तो उसस और भी करीब है, बिलकुल पहाड की छाती के पास । घर द्वार, रास्ता घाट, सब कुछ को गोया कलेजे से जकडकर रक्खा है—नीले आचल से घर कर ।

त्रिवेणीघाट । गगा को स्पर्श करने के लिए नीचे उतरी । ऐसा नही लगा कि ज्यादा पानी है । घाट के पास बहुत-सा काले पत्थर-सा इकट्ठा किया हुआ, पानी उन पर स उछल-उछल कर जा रहा है ।

बच्चो की टोली आटे की गोलिया लिए बेतरह तग कर रही थी—लेनी ही पडेंगी । पडो ने भी उनकी ताईद की—यहा मछलियो को खिलाये बिना तीरथ का कोई फल नही होता ।

मैंने कहा 'मछलिया कहा हैं कि खिला दू ?'

— वह रही, वह !' कहकर पडे न उगली बढा कर दिखाया ।

'वह सब मछलिया हैं ।' मैं तो दग । मैंने तो सोचा था, वह पत्थर की ढेरी है । इतनी मछलिया ! एक पर एक चढती गिरती हैं, हरपता स्रोत मे बिलकुल

बे खौफ। जहा पजा भी नही डूबता पाव था, उस पानी मे लुडमती धलती हैं। भाई पडी इतनी बडी बडी मछलिया। क्या जाने ज्यादा देर तक इन्हें देखते रहने से कब मछली खाने से विरक्ति हो जाय।

यहा के पडे घाट म नहा रहे हैं गीता पाठ कर रहे हैं, साबुन से कपडे भी फीच रहे हैं। साबुन लगाने या कपडे फीचने की यहा सख्त मनाही है—घाट पर काली पटिया पर बड-बडे सफेद हरूफो म लिखा है। यात्रियो के वक्त ये पडे गगा के पानी को पवित्र रखने के लिए बहुत सतक रहते हैं। उस दिन हरिद्वार मे व्रजरमण नहाने को उतर तो कुल्ली करने लगे। यह देखकर एक पडे ने चिल्ल-पा मचानी शुरू कर दी— मुह धोना है तो लोटे म पानी लेकर किनारे मे जाकर मुह धो लो—गगा मैया को क्यो अपवित्र करत हो।'

त्रिवणी घाट पर रामचद्रजी का मदिर। सीताजी के उद्धार के बाद रामचद्रजी ने यहा तपस्या करके प्रायश्चित किया था। लडाई मे कितने कितने जीवो की जानें ली, पाप का खडन किये बिना उन्हे भी रिहाई नही थी।

पुजारी ने हाथ मे प्रसाद दिया—छोटे-छोटे लायचीदाने जैसा। मुट्ठी भर नन्हे फूल हो मानो। इस तरह की मिठाई इधर के बाजारो म भी हमेशा देखा करती थी। रग बिरगे भी बनाते हैं। लाल, पीला बगनी सफेद—बारी-बारी रग मिलाकर दुकान के सामने टोकरियो मे भरकर उसी तरह से रख देते हैं, जसे मोदी की दुकान मे आटा मदा रक्खा जाता है। दूर से देखने से ऐसा लगता है, मानो रग बिरगे कपडे जोडकर बनाये हुये बहारदार छाते हो एक एक।

मदिर के प्रागण म सीढी से घिरा हुआ एक कुड। पानी बहुत नीचे। कई बदर अतिम सीढी पर जाने क्यो बार बार चक्कर काट रहे थे। तभी से देख रही थी। अचानक एक बदर झट पानी मे कूद पडा और इस पार-उस पार तरने लगा।

बदर तैरते हैं? यह तो बडी मजेदार बात है। इसके पहले तो कभी नही देखा। इस सर्दी मे ठड नही लगती है?

कुड के जल को स्पश करने के लिय बडी-दी नीचे उतरी थी। मैं मन ही मन खौफ खाने लगी। तुरत मुझे बुलाए शायद, नही तो पानी लाकर थोपेंगी।

ठडा पानी माथे पर से जब टप टप बदन पर चूता रहता है—कैसी विडबना है वह। बडी दी जहा भी जाए सब कुछ का स्पश करना चाह उनके अनुसार सब

कुछ को सर पर चढ़ाना निहायत् जरूरी है। कहती है, आखिर आयी किस लिये है ?'

पानी मे हाथ डालते ही बडी-दी ने पुकार कर कहा, 'अरे यह तो खासा गरम है !'

सुनकर हम सभी झट झट उतरे। सच तो, यह तो गरम पानी का कुड है। अभी यह बदर ऐसे मौज से तैर रहा है। बो तो, मैं भी उतरू।

किनारे पर पीपल का पेड—उसके पत्ते झडकर कुछ तो सड गये हैं, कुछ सीझ रहे हैं और कुछ टूट के गिरे हैं अभी-अभी।

पडा ने आखें उलटकर, हाथ घुमाकर कहा, यह गरम पानी कहा से आ रहा है, कोई नही बता सकता। सब भगवान की लीला है।'

मदिर के बाहर, रास्ते के किनारे बरगद के नीचे, यहा-वहा छोटे-छोटे घरा मे तमाम साधु हैं, सभी सारे बदन पर राख मले बैठे हैं, माथे पर जटा-जूट। चलते-चलते देखा।

रास्ते के पास धूल सने दो नगे शिशुओ के साथ एक नगे साधु खेल रहे थे। बडा घोडा बना था, छोटा उस पर सवार होगा। शिशु सीधा खडा नही हो सकता था।—बार-बार उलट जाता था। साधु ने उस नन्हे को घोडे की पीठ पर बिठा दिया औंधे पडकर नन्हे घुडसवार को बचाये रहे। घोडा घुडक्ता चल रहा था। घोडा हस रहा था, घुडसवार हस रहा था, साधु भी हस रहे थे खिलखिला कर। जोरदार खेलने के बाद साधु सामने के रास्ते से चल पडे, बच्चे की तरह ही झूमते हुए, दोनो हाथो को झुलाते हुए।

दो-तीन मोड घूमने के बाद भरतजी का मदिर। शशी महाराज ने कहा, 'भरतजी की बहुत बडी जमीदारी है। यही यहा के राजा हैं, बाकी सब प्रजा, स्वय रामचद्रजी भी।'

भरतजी का रग रामजी जसा काला। धपधप सफेद आख। मयफिल मे नाचती हुइ नाचवाली नाचते-नाचते किसी समय घाघरे के दोना कोने को दोनो हाथो उठाकर माथे के दोनो ओर फैलाये एक खास अदा से खडी होती है भरतजी की भी ठीक वसी ही सज्जा। झलमल करता हुआ घाघरा पाव के नीचे से ऊपर तक उठ गया है—उतनी दूर तक के फलाव मे सोना चादी की जरी-चुमकी भरी पोशाक दशको के मन म राजकीय एश्वय की छाप छोडती है।

सामने एक चौकी पर ढेरों चांदी के बरतन—गड़ुआ थाली, लोटा, कटोरी। कुछ सोने जैसा भी जगमगा रहा है। भीतर अंधेरा। दीपदान के माथे पर महज एक दीए की अकंप लौ खड़ी। दूर से रेलिंग घिरे राजा को साफ देखा नहीं जा सकता।

मंदिर की परिक्रमा करने में बाहर की दीवाल पर दृष्टि गई। जगह-जगह पर झांक रही थी—खादी हुई मूर्तियां पत्रलता का नकशा, मोर पंख। कभी मंदिर पत्थर का था, आज उसे मोटे पलस्तर से ढंक कर कटे-कटे पल बनाकर बिलकुल नया मंदिर बना दिया है—चकमका देखा और सोचने लगी। पहले जब जहां गयी, जितने भी मंदिर देखे सबके बाहर को ही ठीक से देखा। जतन से कापी पर उसकी छाप उतारी। मन और मस्तिष्क से परिमाप समझने की कोशिश की और इस बार मंदिर में आयी अंदर के विग्रहों का देख देखकर माथा नवाता जा रही हूं। झोले की कापी झोले में ही बंद है, उसे एक बार को भी नहीं खोला। *ठिठक गयी। मन में द्वंद्व जगा—सही कर रही हूं कि गलत।* और, जल्दी जल्दी कदम बढ़ा कर यात्रियों के बीच अपने को डुबा दिया।

ऋषीकेश में साधु संतों के लिये तीन चार सदावर्त हैं। बारहों महीने खुले रहते हैं। पंजाबी नेपाली बाबा काली कमली वाले का दान-सत्र। सबसे बड़ा यही है। बहुत बड़ी धर्मशाला, बहुत बड़ा इंतजाम। धर्मशाला के चारों ओर अनगिनती कमरे। बहुतेरे साधु यहां रहकर शास्त्रों का अध्ययन करते हैं।

साढ़े दस बज रहे थे। दल के दल साधु संन्यासी, बाउला वैरागी आ-आकर अंगना को भरते जा रहे थे। एक कमरे में बड़ी पतली दाल और परात भरी रोटियां। वह सब एक एक करके कमरे के सामने जाकर खड़े हो रहे थे—किसी के हाथ में खप्पर किसी के हाथ में कमंडलु किसी के हाथ में कटोरा, किसी के हाथ में लोटा। उन बरतनों में आठ-आठ रोटियां और दो दो डब्बू दाल दी जाने लगी।

ऐसी भीड़, इतने इतने लोग—*मगर धक्का मुक्की नहीं* शोर शराबा नहीं, उच्छ्वास-उल्लास नहीं। जिनका जो अपना नाम-गान करते हुए आ खड़े हुए और रोटी दाल लेकर उसी तरह से चले गये। इकतारा बजाते हुए एक वैरागी नाचते हुए आया और खाना लेकर नाचते हुए ही चला गया। गोया

खाना कोई उपलक्ष की चीज ही नहीं। भूख लगती है, खाना पडता है। इसीलिये ले जाता हू—सब म एसा ही एक भाव।

दोनो जून इसी तरह मे खाना देने की व्यवस्था यहा है। इसमे कोई हर फेर नही, रुचि-अरुचि नही। बहुतेरे साधु दूर के बहुत दूर के जगलो मे गुफा, गहवर में रहते हैं, दोनो बेला आ नहीं सकत। सबेरे के जप-तप के बाद एक बार निकलते हैं चलकर आते हैं गगा म स्नान करके रोटी दाल लेकर चल जाते हैं। दिन भर क लिए निश्चित।

हर साल जाडे मे इस दान सत्र स साधुओ को काला कबल दिया जाता है।

एक तरफ दफ्तर। कमरे म बरामदे म लाल कपडे स बधी महाजनी बहिया लिये इसक कमचारी हिसाब किताब मे लग हुए थे। जाने कितने रुपये यहा रोज खच होत हैं। वतमान महत भी सामने बैठे थे। कामो का निर्देश दे रहे थे। बाबा काली कमली वाले के एसे दानसत्र केदार बद्री तक हर पडाव पर हैं।

बाबा काली कमली वाले की कहानी है—तपस्या मे सिद्धि लाभ करके वह कलकत्ते मे गगा के घाट पर आकर बैठे रहे। एक सेठ ने देखा, दिनो से साधु उस जगह से हिलते ही नही—न खाते हैं न सोते हैं। देखकर सेठ क मन म भक्ति उपजी। एक दिन उन्होने आकर फल और मिठाई साधु के सामने रखदी। साधु ने सर हिलाया—नही खाऊगा। सेठ ने बडी मनुहार बिनती की—'कृपा करके थोड-सा खाइये।' साधु ने कहा, खा सकता हू मगर एक शत पर—अगर मुझे एक लाख रुपया लाकर दो।

सेठ जी राजी हो गये। उन्होने एक लाख रुपया लाकर साधु को दिया।

कोई-कोई यह भी कहते हैं, बाबा काली कमली वाले बगाली थे। साधना मे जब उन्हें सिद्धि मिल गई तो कलकत्ते आये। हरीसन रोड के मोड पर गस के खबे के नीचे खडे रहने लग। इक्के-दुक्के करके उनके पास भीड जमने लगी, घोडे रुक जात गाडी थम जाती। सवारियो का जाना आना ठप हो गया। पुलिस ने आकर डाट डपट की। न तो वह साधु को हटा सकी, न हटी भीड। साधु के मुह मे बस एक ही बात—'जब तक मेरे पैरो के पास एक लाख रुपया जमा नही होगा, तब तक यहा इसी तरह से खडा रहूगा, एक इच नही खिसकूगा।'

खैर, इन दो मे से जो भी कहानी चाहे सच हो, एक लाख रुपया इकट्ठा करके बाबा काली कमली वाले लौटे और उन्होने जगह जगह साधुओ के लिए सदावत

नदी का नाम है चंद्रभागा—सुशीला कुमारी कन्या हो मानो। तन-मन से साधुओं की सेवा करती जा रही है।

बड़ा ही अच्छा परिवेश। अत्यंत ही मनोरम स्थान है। शांत, गंभीर। धरती माता यहां चुप चुप बातें करती हैं। हवा धीमे बहती है, नदी चुपचाप बहती है सारा काम चुपचाप करते हैं सब। दिगंत स्तब्ध, तपस्या के लिए अनुपम स्थान। निर्भय फैला हुई विराट पहाड़ की छाती।

दुनिया के शोर शराबे से बचकर ऐसी जगह में आकर अकेले रहना—यह भी एक विलासिता है। जो यहां आकर रह पाते हैं, उनसे रश्क होना है। जी को जुड़ा लेने की यह निश्चित जगह है।

ऋषीकेश से स्वर्ग द्वार और भी कई मील की दूरी पर है। रास्ते में एक पुल पर से गुजरते हुए शर्मा महाराज ने कहा, चंद्रभागा को शांत कहते हैं यह चंद्रभागा नहीं, हतभागी है। बीहड़ नदी है। कब पागल हो उठे ठिकाना नहीं। पुल के नीचे यह जो पत्थर और सूखा बालू भरी फैली हुई भूमि देख रहे हैं पहले यहां पर शहर था। कहां गायब हो गया वह सारा कुछ आज उसकी कोई निशानी भी नहीं है। हां, वह देखिए शहर के सारे कुएं ज्यों के त्यों रह गए हैं बाकी सब कुछ को बाढ़ का पानी धो पोंछ कर ले गया।

'इन एक-एक कुएं के आस-पास दालान-कोठा शहर-मकान जो कुछ भी था उन सबकी जगह आज बालू और पत्थरों से भरा रूखा-सूखा चौर है। पक्के या बंधी कच्ची जगतवाले कुएं जो यहां-वहां हैं ये सब महाश्मशान के साक्षी हैं।

एक जगह पर नमक से भरे चमड़े के तकियों का ढेर लगा था—निरपाल सा ढेरा। पहाड़ी व्यापारी इन तकियों को बकरी की पीठ पर लाद कर पहाड़ों पर जाते हैं। हो सकता है यहां ये तकिए उतार कर वे लोग आराम कर रहे हैं। घास की खोज में बकरियां पत्थरों की फांकों में मुंह लगाती ।

कुछ कोढ़ी लोग आकर हमारी गाड़ी कर खड़े हाथ मुंह नाक में मक्खियां भिनक रही चाहिए खाएंगे। पास ही के एक पहाड़ी टी इन

आकर यो भीख मागने की इजाजत है। दादा ने उनके गलते-से हाथ मे पसे दिए। रुपया तुडाते समय शायद ही कि यही पसे फिर हम दूकानदारो से लेंगे।

दादा ने कहा, 'कोढ की बीमारी यो नहीं फैलती। मैंने डाक्टरी की किताब मे पढा है कि लहू मे उसकी छूत लगने से यह रोग होता है।'

गाडी गगा के किनारे रुकी। इसपार का नाम है रामतीथ, उसपार का स्वगद्वार। राम एक पजाबी साधु थे। बडी कम उम्र मे उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी। एक एक करके उनके शिष्यो की सख्या बढती गई। आठो पहर उन्हें घेरे रहने। गुरु को लेकिन यह भीड भाड बिलकुल पसद न थी। वह अपने आप मे ही डूबे रहना चाहते थे। यह हो नही पा रहा था। आखिर एक दिन उस कम आयु मे ही वह ऊचे पहाड पर से गगा मे कूद पडे। इस घटना के बहुत दिनो के बाद किसी ने यहा घाट बनवा दिया। साधु राम का नाम याद मे इनके साथ जुडा रहा।

रामतीथ मे यात्रियो को इसपार उसपार करने करने के लिए नाव एक ही थी। दिन भर वही लोगो को ले जाती-ले आती। यह इतजाम भी उन्ही बाबा काली कमली वाले का है।

नाव से पार होकर हम स्वगद्वार पहुचे। यही पर से द्रौपदी के साथ पाच भाई पाडव स्वग की ओर रवाना हुए थे।

बडी दी बोली, 'ऐसा पवित्र स्थान, फिर इसी पुण्य भूमि पर धरती की माटी से गगा सबसे पहले मिली, भला यहा पर एक डुबकी न लगाने से चल सकता है?'

वास्तव म यहा पर गगा का कैसा अनोखा रूप! उसकी हसी और उल्लास का कोई अत ही नही। हरापन लिए नीली जल धारा तेजी से दौड रही है—कसी छलकती हुई, कैसी प्रखर गति! मानो इसन कानो वही सवनाशी प्रेम की पुकार सुनी हो, जिस प्रकार से बेताब होकर कुल-वधुए कलक का भय भूल कर घर से निकल पडती है।

जगल से भारी-भारी बडी-बडी लकडिया काट कर पानी मे बहा दी हैं। ढेरो लकडिया पानी के बहाव मे झुड बाध कर बहती चली जा रही हैं। इन्ही लकडिया को पकड कर हरिद्वार के इस सूखे नाले मे इकट्ठा किया जाता है। कही तो लकडिया भवर मे पडकर एक ही जगह चक्कर काट रही हैं। कही एक के बाद

दूसरी लकडी पत्थर से अटक जाती है। सरकार के लोग आकर लंबे बास की ठोकर से उन्हें छुडा दिया करते हैं। उन लकडियो पर माटी खोद कर खानेवाली चिडिया भी बहती चलती है। ओदी लकडियां से खोद-खोद कर क्या तो खाती हैं जान। नील धारा में अपने सफेद काले डने फैला कर वन-बत्तखें तैरती हैं। उड कर दूर कहीं जाती हुयी ये एकाएक बीच ही मे उतर पडी हैं शायद।

नहा कर स्वर्गद्वार के बंधे घाट पर आयी। घाट के एक ओर शिवजी का और दूसरी ओर नारायण का मंदिर। शिव जी के माथे पर जल चढ़ाया, नारायण मंदिर से कपाल पर कुकुम का टीका लगा आई। श्वेत पत्थर के नारायण—ध्यानी बुद्ध की नाइ बठे हैं। वैसी ही भंगिमा। नयापन है। मुखमंडल की बनावट बहुत सुंदर।

सूना मंदिर। आस-पास कोई कहीं नहीं। शांत वातावरण। नारायण के सामने बडी-सी दीवाल से सट कर बठ गई। मैं समझ गई अब इन्हें देर लगेगी।

मैं दबे पावों बाहर निकल आई। गंगा के बिलकुल सामने घाट पर के मोटे खंभे से ओठग कर बैठ गई।

चारो ओर ऊंची कतार नीले पहाडो की—कितनी हलकी-सी लग रही थी। गोया अभी-अभी उड कर नीले आसमान से मिल जाएगी। जल थल-नभ में नीलेपन की भरमार—मानो सारा रंग चुपचाप यहीं पर उडेल दिया है। नीलिमा की इतनी बहार मन को अकुलाहट देती है। बदन से आंचल को खींच कर दोनों हाथों से छाती को दबा लिया।

—हाय राम, तुम यहा बठी हो, और, हम खोजते-खोजते हैरान।'

देखा सामने दादा खडे हैं। बोले, उस तरफ जरा ही आगे गीता भवन है। देखने ही योग्य है, जाकर देख आओ। हम लोग देख आए।'

गंगा के उस पार से ही मैंने देखा था चौडे बंधे घाट पर विराट एक लाल प्रासाद। वही प्रासाद गीता भवन है।

करीब जाकर देखा। गीता भवन की पूरी दीवार में खोद कर समूची गीता लिखी गई है। लाल सीमेंट की दीवारें—सादे रंग से खुदाई को भर कर संस्कृत के श्लोक लिखे—बहुत ही सुंदर लग रहे थे। एक से आकार और स्थान में ऊपर नीचे लिखे श्लोक। दूर से एक अनोखा ही प्रभाव डलता है। लगता है भवन में न जाने कितने कारुकार्य किये हुए हैं। उस पार से मैंने सोचा भी यही था।

सामने के लंबे बरामदे पर गीता की व्याख्या के आधार पर दूर तक बहुत-सी रंगीन तसवीरें। टिन के पतले पत्तरों पर तेल रंग से आंकी हुयीं। तसवीरों का काम अभी चल ही रहा था। एक सहायक छात्र को लेकर कलकत्ते के कलाकार सरकार आए हुए थे। एक कमरे में बैठकर वह काम कर रहे थे। तेल रंग की छवियों को सूखने में समय लगता है। उन्होंने एक ही साथ पांच-छह तसवीरों में हाथ लगाया था। कोई सूख चुकी थी, कोई सूख रही थी, किसी का रंग अभी एकबारगी गीला था। ठंडी जगह में उन्हें सूखने में कम-से-कम पांच छह दिन का समय लगेगा। तेल-रंग के साथ यही एक कठिनाई है कि एक रंग जब तक भली भांति सूख नहीं जाता, तब तक उसपर दूसरा रंग नहीं लगाया जा सकता।

शशी महाराज ने आकर ताकीद की। 'गरुड़ चट्टी' जाने की बात थी। उन्हीं से सुना था, वहां एक झरना है। उस झरने में ऊपर से पेड़ का पत्ता गिरता है और साथ-ही-साथ फकाल बन जाता है। यह अजीब-सी बात सुनी तो मैंने जिद की, जैसे भी हो, उसे देखना है। इसीलिए उन्होंने जल्दी की ताकीद की—'काफी दूर जाना है और शाम से पहले लौट भी आना है। यहीं इतनी देर होगी, तो काम कैसे चलेगा?'

पहाड़ पर से पत्थरों को रौंदते हुए ऊंची-नीची राह से हम चले। इधर और भी सुनसान। आबादी नहीं के ही बराबर। ऋषीकेश से स्वर्गद्वार और भी निर्जन। स्वर्गद्वार में पक्के की छोटी छोटी बहुतेरी कुटियां। जो लोग एकांत में साधना करना चाहते हैं, केवल वही लोग यहां रहते हैं। बाबा काली कमली वाले ने यहां पक्के की सौ कुटियां बनवा दी हैं। पक्के की कुटिया का मतलब कि एक निहायत छोटा-सा कमरा। किसी तरह से सोया बैठा जा सकता है। ठीक भी है, जो लोग गुफा-कंदरा में बैठकर तपस्या करना चाहते हैं उन्हें इससे बड़े कमरे की जरूरत भी क्या! जाते-जाते ही कितने ही ध्यानमग्न साधु दिखाई दिए। कोई अंधेरी कोठरी में, कोई सामने धूनी जलाए हुए। बड़े-बड़े पुराने पेड़ों के नीचे ढकी कुटिया, आम के बगीचे की फांक में साधुओं के झोंपड़े। किताबों में पढ़े तपोवन में ऋषि मुनियों के आश्रम जैसे। जैसे बनवास में सीता की गृहस्थी हो। साफ-सुथरा प्रांगण—डाल पर झूल रहे हैं डमरू और त्रिशूल। साधुओं में से कोई झरने के नाले में खाने के बर्तन धो रहे हैं, कोई गंगा से पानी भरकर ला रहे हैं और कोई छोटे-से ओसारे पर बैठकर गुन-गुन करके नाम भजन कर रहे हैं। यह दूसरी ही एक दुनिया है।

सोचना पड जाता है, आखिर किस सुख का संकेत पाकर अपने सारे के संसार से नाता तोड़कर ये धूल की गिरस्थी बसाकर अपने-आप में मगन हैं।

बड़ी-दी ने कहा— 'होकर भी जिस धन का धनी, मणि को नहीं मानते हैं मणि—तो क्या इन लोगों को उसका कुछ इशारा मिला है? देख नहीं रही हो, कैसी बेफिक्री, कैसा तृप्ति का भाव! और हम इसी के लिए आकुल व्याकुल होकर मरते हैं कि किस चीज में कितना सुख है। मगर समझ कहां पास है?'

मैंने मन ही मन दुहराया—'येनाहं नामृतास्या किमहं तेन कुर्याम्।'

ऋषि याज्ञवल्क्य घर-संसार छोड़ कर जंगल जा रहे हैं। अपनी पत्नियों को धन रत्न गाए दे रहे हैं—यह लो, यह लो।

मैत्रेयी ने कहा, 'अच्छा इनसे मैं अमृता होऊंगी क्या?'

—'नहीं।'

—'इससे?'

—'नहीं।'

—'यह लेकर?

—'नहीं।'

—'तो फिर प्रभो, जो लेकर मैं अमृता नहीं होऊंगी, वह लेकर मैं क्या करूंगी?

—यह है केदार-बदरी का रास्ता'—शशी महाराज ने दादा को समझाया। बोले—'पैदल जाना हो तो इसी रास्ते जाया जाता है।'

केदार-बदरी यहां से कुल एक सौ पैंसठ मील है। उधर, उस पार देवप्रयाग तक मोटर का रास्ता है। हम आगे बढ़ते गए। पहाड़ियों का झुंड बैल घोड़ा लिए हमसे आगे निकल गए। बच्चे को पीठ पर बांध कर नेपाली-दंपति बेखटके हमसे कतराकर निकल गए। तरुणी धरनी हंसते-हंसते पहाड़ पर गायब हो गई। माथे पर गठरी लिए गृहस्थ शहर से सौदा-पाती करके लौट रहे थे। सभी आते और बढ़ जाते मोड़ घूमते न घूमते आंखों से ओझल हो जाते और हम कई जने चल रहे हैं तो चलते ही जा रहे हैं। आखिर अंत कहां है इसका? दिन भर चक्कर काटती रही पर जवाब दे रहे थे। पूछा, शशी महाराज, और कितनी दूर है?'

शशी महाराज आगा-पीछा करने लगे। बोले, 'ग्यारह साल पहले आया था, कितनी दूर है, अब ठीक-ठीक अंदाज नहीं कर पा रहा हूं।'

समय पर, ग्यारह साल पहले जो बहुत नजदीक था, ग्यारह साल के बाद तो वह दूर चला ही जाएगा।

बड़ी-दी ने कहा, 'छोड़ो भी, पत्ता के कंकाल देखने से बाज आई। चलो, चलें। इतनी दूर आ निकली, फिर इतनी ही दूर लौटना है—और कुछ देखना भी नसीब न होगा ?'

वहां तो, झर-झर-सी कुछ आवाज आ रही है। झरना ही है न ?

शशी महाराज लपके उस आवाज की ओर। उनके पीछे-पीछे हमलोग भी दौड़े। हाय रे पहाड़ की आवाज मानो किसी मायाविनी की पुकार हो! कहां कौन ? मील, फर्लांग देखना और गिनना तो सब होता है, लेकिन जिसे चाहते हैं उसे कहां पाते हैं ?

आगे-पीछे कदम बढ़ाते हुए चलते रहे। चलते-चलते एक बार चौंकने होकर नजर उठाकर देखा—दाहिने ओर के पहाड़ से आके-बांके सोते में झरना उतर रहा है।

शशी महाराज ने कहा जहां तक मुझे याद है, ऊपर चढ़ना होगा।'

मगर रास्ता कौन बताए ?

चट्टी के एक पंडे ने कहा सीधे ऊपर चढ़ जाइए। वहां एक महात्मा हैं, उनसे कहने से वह रास्ता दिखा देंगे।

नाले के किनारे किनारे हम ऊपर चढ़ने लगे। कुछ दूर ऊपर गए तो पत्ता की छौनी वाले एक छोटे झोपड़े में एक साधु जी मिले। धूनी जलाकर बैठे हुए थे। पास में सूखी डाल के सहारे मोटा एक ग्रंथ माटी से अलग करके रखा हुआ था। कमर में एक मोटी जंजीर, जंजीर में कौपीन बंधा। साधुजी बोलते नहीं, उठकर कहीं जाते नहीं, उनकी साधना है आकाशवृत्ति। सामने जो मिल जाएगा, वही खाएंगे। खाने के लिए दर-दर भटकेंगे नहीं।

सोचने लगी आबादी से दूर कहीं किसी की नजर पड़ने की संभावना नहीं—गांव वाले लोगों को भी क्या खाक खबर हो! आखिर रोज रोज का खाना कहां से आएगा ? क्या पता! ज्यादा सोचते नहीं बना, सोचकर कोई किनारा नहीं पा सकी। इस रहस्य को समझने की कोई और ही शक्ति होती हो शायद।

किशोर अविनाश—एक अरसे तक उसकी कोई खबर नही मिली। हम लोगो से बहुत निकट था। स्कूल मे पढता था। 'दीदी दीदी' कहा करता था। मोह हो गया था। अचानक वह लापता हो गया। उस रोज उसी अविनाश को कितने दिनो के बाद हरिद्वार मे देखा। कितना बडा हो गया है अब—जवान। लेकिन चेहरा वसा ही कोमल-कोमल है। दीक्षा ली है। एकात मे साधन भजन करता है। अबकी उसने 'दीदी' कह कर नही पुकारा। जब सब स्त्री उसकी मा हैं। बोला, यह एक अजीब ही तजर्बा है मा। उनके भरोसे रहने की एक क्या जा मिठास है, उसकी कल्पना नही की जा सकती। पहाड मे 'माधुकरी वत्ति' अपनाई थी। दिन मे सिर्फ एक बार पहाड से नीचे उतरा करता। 'नमो नारायण' कहते हुए तीन घरो के द्वार पर जा खडा होता। जिस दिन जो नसीब हो जाता, उसी पर गुजारा। एक दिन का जिक्र है खास कुछ नही मिला महज दो रोटिया। लौट आया। उन दोनो रोटियो को सामने रखकर मैं रो पडा। बडा ही दु ख हुआ। बडी भूख लगी थी। उन दो रोटियो के खाने से भूख तो और भी सुलग उठेगी। दिन भर, रात भर आखिर कसे काटूगा ? उनकी लीला। रोता रहा और सोचता रहा। इतने म एक गुजराती सज्जन आए। बोले, ब्रह्मचारी जी, दया करके आइए और हमसे भीख पाइए।

इस ओर साधु-सन्यासियो को खाने के लिए बुलाते हैं तो कहत हैं—भीख पाना। ये गुजराती परिवार के साथ वन भोज के लिए आए थे।

उस दिन रात को मैं फिर एक बार रोया भगवन् बिना समझे-बूझे हम तुमपर किस आसानी से नाराज हो जाते हैं।'

साधुजी ने हाथ हिलाकर शशी महाराज को आगे बढ जाने का इशारा किया। उनकी कुटिया के पास से पानी का नाला नीचे को घूम गया है। फिर तो यही है झरना! झरने का अदाजा पाकर शशी महाराज अतर्ध्यान हो गए। कहा गए वह गए कहा हम ढूढने लगे। जगल के अदर से शशी महाराज की आवाज आई —इधर आइए देख जाइए।'

हम दौडे। वही पहलेवाला नाला यहा पर चौडा कुछ ज्यादा। स्वच्छ और निमल पानी सर-सर भागता जा रहा था।

— यह देखिए ये जो पत्ते गिरे हैं, किस क़दर जम गए हैं। —शशी महाराज

ने पानी के अदर से एक पत्ते को खीच कर निकाला।

पानी मे क्या है, पता नही।'जिस ओर होकर पानी तेजी से बह रहा है वह रास्ता सख्त पत्थर का है, सीमेट से बधा हो जस। जितना ही आगे बढती गई, वह नाला उतना ही और ज्यादा धप धप सफेद सख्त पत्थरो का लगने लगा। पहाड की चोटी पर, घने जगल मे है वहा पहुचकर देखना असभव है रास्ते का कोई ठिकाना नही। ऊपर का वही झरना नाला होकर नीचे बहता आ रहा है। कितने पेडो के, कितने प्रकार के पत्ते उस नाले म हरदम टपकते है। कुछ तो पानी के वेग से बह जाते हैं और जो इस उस जगह म अटक कर रह जाते हैं, वह पानी के नीचे जमकर पत्थर पत्ता बन जाते हैं—एक लग कर दूसरा—इस तरह से। दोनो किनारे के कन फल पानी मे गिरे हैं—शुरू मे काली लकडी से लगे सब्ज पत्ते पानीवाले सादे पत्थर के। उनके ऊपर जाने किस चीज की एक सफेद परत-सी पड जाती है। मगर पेड नही मरता है। जगली गेंदे की जड को पानी धो ले गया है, जड पत्थर-सी जम गई है मगर फुनगी पर दो पीले फूल फूले हुए हैं।

यही पानी जब नीचे उतरा है तो अपनी सारी शक्ति गवाते हुए उतरा है। नीचे वह महज मामूली पानी है कुड म भरा हुआ।

कुछ वैसे फासिल उठाकर आचल मे रक्खे। ले जाकर अभिजित को दिखलाना होगा, नही तो बाप बेटे मिलकर मेरे कहे को हस कर ही उडा दें।

बडी-दी बोली, यही तो गगोत्री है। कल्पना करो इसी तरह से तो गगा धरती पर उतरी हैं।'—यह कह कर उन्होने झरने का ही थोडा-सा पानी लेकर माथे पर छीटा।

इतनी देर के बाद शशी महाराज के होठो पर हसी की लकीर फूटी। मेरे तीखे उच्छवास ने उनको खुश कर दिया। बोले 'हो गया न ? अब तो यकीन आया ? अब चलिए लौटें।'

कूदते हुए हम नीचे उतरे। अब थकावट नही महसूस हो रही थी। हसी, गप शप उमग के ज्वार म कब जो हम लक्ष्मन झूला का पुल पार करके इस पार आ गए—पता नही। होश आया तो उलट कर खडी हो गई।

लक्ष्मण झूले का पुल—कितनी ही तस्वीरें देखी हैं इसकी। रस्सी के इस पुल

स भड-वकरियः पार होती हैं। मुह की लगाम थाम लोग खच्चरो को ले आते हैं झुली पीठ पर टोकरे का कितना बोझा पार करते हैं—ो तम्ब खडे दो ऊच पहाड नीचे की गहराई म बहती हुई गगा की धारा। दखन म सर चकरा जाता है और उसी पुल को बया तो कोई ख्याल किए बिना ही लौट आई।

शशी महाराज ने कहा इस पुल को पार करना पहल बडा खतरनाक काम ही था। कई साल पहले एक मारवाडी ने बहुत रुपए खच करके इसको बनवा दिया है। वह अपनी बूढी मा को लेकर कदार-बदरी जा रहा था। मा ने कहा, मैं तो यह पुल नही पार कर सकूगी। मैं बल्कि तबतक इसी पार रहती हू, तुम इस पुल को बनवा दो। और बूढी मा लक्ष्मण झूला मदिर के पास साल भर तक इतजार करती रही आखिर पुल बना, तब वह केदार-बदरी गइ।

लक्ष्मणजी का मदिर इस पार है। ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त उन्होंने दो सौ वर्षों तक एक पाव पर खडे रहकर किया था।

दादा ने कहा गनीमत कि कलयुग म अब वैसा ब्राह्मण पदा नही होता। जब लक्ष्मणजी की यह गत हुई तो हम पर क्या बीतती, जरा सोच देखो।

लक्ष्मणजी की मूर्ति श्वत पत्थर की है।

चार भाईयो म से तीन भाई के तो दशन हुए, रह गए शत्रुघ्न।

पडे ने कहा, चलिए न वह भी दिखा दू। जरा ही दूर आगे वह मदिर है रास्ते पर। देखा। चार मे म तीन भाई काले, केवल लक्ष्मणजी गोरे।

ब्रजरमण ने कहा जैसा कि वणन मे आया है उसस मेल नही बठा। शत्रुघ्न भी गोरे ही थ। कवल भरत जी रामचद्र जी जस श्यम वण के थे।'

हम हरिद्वार लौट आए। टैक्सी वाला कनखल जाने को राजी नही हो रहा था। किसी टक्स का झमेला था। मोड पर उतार कर उसन दिलासा दिया, 'बस दो डग आगे जाने स ही तागा मिल जाएगा।'

निरजनी अखाडे के अदर से लौट रही थी। रात काफी हो चुकी थी। गगा के किनारे बरगद के नीचे अघेरे म इधर को पीठ किए नागा हाथ मुह म बासुरी लिए दाए हाथ से डमरू बजा रहा था।

धूनी की रोशनी म कुछ जगमगा उठा—हाथ म वह क्या बधा है? वही

ब्रह्मकुंड में उस दिन जिस नागा संन्यासी को देखा था, उसी के हाथ का सोने का तागा।

दो-खाट तक फैले भारतवर्ष के मानचित्र को खोलकर उस पर दादा मैं और बड़ी-दी झुकी पड़ी थी। खोज-खाज कर जगहों के नाम निकाल रही थी और उनपर लाल-नीली पेंसिल से निशान लगा रही थी। दादा ने ब्रेडशा खोलकर अपने चमड़े की जिल्द वाले नोट बुक में मिनट, घंटा, स्टेशन और दूरी नोट कर ली।

कुंभस्नान हो गया। अब देशभ्रमण की बारी।

बड़ी दी बोली, जब निकल पड़ी हूं तो सहज ही नहीं लौटने की। दिल्ली में खोकन है छोटा मुन्ना है, उनसे मिलकर पहले मथुरा-वृंदावन जाएंगे।

वृंदावन में लेकिन जल्दीबाजी से काम नहीं चलेगा। आस ही पास में गिरि गोवर्धन है, बरसाने है, नंदगांव है—घूम घूम कर सब कुछ देखूंगी।

दादा ने कहा ठीक है।

—वृंदावन से जयपुर, उदयपुर, चित्तौड़—'

—'चित्तौड़ में लेकिन कुछ दिन रहना होगा—

दादा ने कहा, रहेंगे।'

—'पुष्कर, द्वारका—ये भी तो महातीर्थ हैं।

—कुंभ के बाद ही झुंड के झुंड लोग द्वारका जाएंगे। हम लोग उनसे पहले ही क्यों न लौट आए?'

दादा ने कहा, 'चलो।'

—इस बार अयोध्या जाने की भी इच्छा है।'

—हर्ज क्या है?' दादा ने कहा।

—सवेरे सवेरे तंबू के अंदर बैठे क्या हो रहा है?—कहते-कहते शशी महाराज भीतर आए।

सांस-सी लेकर दादा उठ खड़े हुए। बोले, कहां तक जाने का इरादा है,

उसी का हिसाब लगा रहा था। आप क्या जानें औरतों का मन है न ! खींचते खींचते अंत तक न जाने कहां ले जाए। बात मानकर चलने की यही तो मुसीबत है।

— उसके बाद ? यहां फिर कब लौट रहे हैं ?'

— यहां फिर क्या ? नहान तो हो ही गया। घूम घाम कर अब घर लौट जाएंगे।'

— अरे ! कुंभ के लिए आए और कुंभ-स्नान नहीं कीजिएगा ?'

— ऐं ! बड़ी-दी अकचका उठीं— यह फिर क्या किया ? स्नान नहीं ?'

— स्नान तो बेशक किया मगर कुंभ का नहीं —शास्त्री महाराज ने सर हिलाया।

'स्नान कर लिया पुण्य कमाया अब आगे कदम चलने की तैयारी—जगह जगह चिट्ठी जा चुकी—आ रहे हैं आ रहे हैं—शोर मच गया। अब यह कह क्या रहे हैं। शास्त्री महाराज !

मैंने कहा बड़ी-दी, यह तो देख रही हूं तुम्हारे रूपा मिस्त्री की कहानी हो गयी।

बुढ़ापे में रूपा मिस्त्री को लिखना सीखने का बड़ा शौक चर्राया। जाने कहां से एक स्लेट ले आया। खल्ली से उसके दोनों ओर अट शट लिखकर रोज लाता, बाबूजी, देखिए तो हुआ क्या नहीं। बाबू गरदन हिलाते—नहीं। रूपा मिस्त्री का चेहरा स्याह ! वह सिर्फ स्लेट को उलटाता-पुलटाता रहा। कहा, इतना इतना लिख गया एक भी ठीक नहीं हुआ ?

खाली तंबू में बैठ कर आपस में बात करते रहे।

दादा ने कहा, ऐसा हो सकता है भला ! यह देखो न मैंने अखबार की कतरन रखी है। अखबार में छपा था—14 फरवरी, 18 मार्च और 13 अप्रैल इन तीन तारीखों पर तीन स्नान। इनमें से कोई भी कर लिया, बस ! भीड़ बढ़ जाने से पहले ही हमलोग लौट जाएंगे यही सोच कर तो आरंभ में ही आए। बात ठीक नहीं होती तो अखबार में विज्ञापन देता कहीं ?

बड़ी दी ने ज्ञान महाराज को बुलाकर पूछा 'अच्छा, अभी-अभी जो यह योग गया, इसी में नहाना तो कुंभ का नहाना हुआ—है न ?'

बड़ी-दी की बात सुनकर ज्ञान महाराज हो-हो करके हंस उठे। बोले 'अजी

कुभयोग तो अभी लगा ही नही है। शिवरात्रि और कुभ—दोना अलग अलग हैं।' बडी-दी हताश होकर लाट आइ। मन की शका जा नही रही थी। पूर्णानद, तत्वानद, रघुवीरानद, आत्मानद—जो स्वामी जी भी मिल जाते बडी दी उन्ही से कातर होकर पूछती कुभ का पहला स्नान तो हो ही चुका क्यो ?'

उनका मतलब यह कि काई भूल से भी एक बार कह दे हा कुभ-स्नान हो है। मगर यह सुनकर सब हसते हुए आगे बढ जाते, जाते जाते उलट कर देखते हुए फिर हसते।

बडी-दी का मुह सूखकर इत्ता-सा हो जाता।

मैंने कहा, 'दीदी, बगाल म भी क्या सभी लोग इस तत्व को जानते हैं कि किस दिन कौन-सा योग है ? यदि न जानते हा तो लौट चलने म क्या हर्ज ह ? जानते हो, तो बात अलग है। बदनामी होगी कि गए तो कुभ-स्नान के लिए और बिना नहाए ही लौट आए।'

दादा ने कहा, बात यह दुरुस्त है। शायद यह कोई नही जानता। नही तो आखिर हम भी तो वही के हैं फिर यह गलती कसे करते ? अजी किसी को खाक भी पता नही चलेगा, चलो, लौट चलें।—दादा बडी दी के मुह की ओर ताकने लगे, इजाजत मिलती है या नही।

थमथम करता हुआ चेहरा लिए बडी दी न दाए बाए सिर हिलाया, 'उहू, यह भी हो सकता है कही ? पहला काम है कुभ का स्नान, घूमना फिरना उसके बाद। अब तो हमने सही-सही जान लिया कि 18 माच को कुभयोग का आरभ है, 13 अप्रैल को अत। खैर अत वाले योग से काई मतलब नही, लेकिन जसे भी हो 18 माच वाला स्नान करना ही होगा।

—'उसके बाद उतनी उतनी जगह घूमने का समय भी रहेगा ? —दादा सोच मे पडे।

आज से 18 माच। अभी तीन सप्ताह और। एक ही जगह इतने दिनो तक पडे रहने से क्या लाभ ? अभी तक यहा साधु सतो की भी वसी भीड नही हुई है कि घूम घूम कर उन्ही लोगो के दशन करके दिन बिता सकें। इससे बेहतर है कि इसी बीच जहा तक हो सके, घूम आया जाय।

दादा ने कहा, तो फिर कुछ जगहा के नाम काटो। जो सूची तयार की गई है,

उसम से आधे राम घाम काट डाला—गिनी चुनी कुछ जगहों को रंग सो बाकी फिर कभी अगर नसीब म होगा ।

दादा न नोटबुक निकाली । नए सिर स फिर गाडी और समय नोट करने लगे।

आम के बगीचे म लगभग सभी तबू खाली हो गए थ। सीली जमीन पर पडी चटाइयो को धूप म सुखाकर मोड करके रख लिया गया । कई दिनो के बाद फिर सो जरूरत पडेगी इनकी। शिवरात्रि के अवसर पर जो लोग आए थे, वे दूसर तीर्थाटन म निकल पडे। मणिबहादुर भी वृदावन चले गए। जाते समय वह बार-बार कह गए पूर्णिमा तक आप लोग भी जरूर आइए।

शशी महाराज ने भी पीठ ठोक दी जाइए जाइए, देख आइए। हरिद्वार ज्ञान का स्थान है वृदावन है भक्ति का। वहा मन म एसी भावना रखकर सब कुछ को देखिएगा। वृदावन तप का क्षेत्र है। आज स तीन सौ साल पहले, वही उस समय महाप्रभु के शिष्यो ने तप का स्रोत बहाया था, आज भी वह स्रोत वैसा ही बह रहा है। सनातन गोस्वामी का स्थान देख आइएगा। मन म हर घडी उनके उस भाव को जगाए रखिएगा। भक्तो ने कैसा भगवत् प्राण होकर तपस्या की थी कि भगवान ने जब आकर पूछा, क्या पकाया है ? नमक हो तो नदारद है, खाऊ कैसे ?' तो भक्त ने कहा खाना हो तो खाइए नही तो अपनी राह लीजिए। मेरे पास जो है मैंने वही दिया। सोच देखिए कितना बडा भक्त होने पर वह भगवान स ऐसी बात कह सकता है । वृदावन ऐसी ही तपस्या से कायम है, मदिरो से नही ।

तै हुआ ऐसा ही होगा। होली के समय वृन्दावन मे ही रहा जाएगा। जीवन म कितनी होली आयी और गयी कितना रग खेला, लोगो पर डाला, अपने ऊपर लिया। लेकिन रग लेना जाना किसन । अबीर लगे शुभ्र कुद हाथ से छूटकर रास्ते की धूल मे लौटने लगता है। अबकी देखें ब्रज की होली म वह रग कहा पहुचता है !

बडी दी ने कहा, 'नोट बुक मे अच्छी तरह से लिखो तो ज्ञान महाराज से पूछ कर कि केदार-बदरी किस रास्ते से आसानी स जाया जाता है ? इस बार न सही, बद्रीनाथ खीचें तो एक बार जा कर ही रहूगी ।'

ज्ञान महाराज एक नही विभिन्न ऋतुओ म आठ-आठ बार केदार-बदरी गए हैं। हर जगह का नाम, कहा किस चीज की क्या कीमत है रात म कहा क्या खाना

अच्छा है, भोटियों के क्या कहने पर क्या कहना चाहिए—ये सारी बातें वह तोते की तरह रटा मक्त हैं।

बड़ी-दी ने पूछा, अच्छा, मैंने सुना है केदार-बदरी का द्वार जब खुलता है तो छह महीने के फूल और दीए, ज्यो के-त्यो ही मिलते हैं। फूल को तो खैर मान सकती हू बफ मे ताजा रह सकते हैं मगर बत्ती कैसे रहती है ?'

ज्ञान महाराज ने कहा, 'यह क्या ऐसी अनोखी बात हुइ ? उस बार तिब्बत गया था—एक मदिर म मैंने देखा पाच मन घी जिसमे आ सके, ऐसा एक प्रदीप सोने के दीप-स्तान पर रखा है, ऊपर सोने का ढक्कन लटक रहा है। जाड़े म घी जमकर मोमबत्ती जसा हो जाता है उसके जलने म कोई कठिनाई नही होती। केदार-बदरी म भी ऐसा ही होता है। जस ही बफ का गिरना शुरू हो जाता है। दीए मे काफी घी डालकर पडे लोग दरवाजा बद करके उतर आते हैं। बत्ती जलती ही रहती है।'

बगल म बैठी एक बुढिया अम्मा यह कहानी सुन रही थी। बोली—हु-हु, ऐसा होता है। मैंने भी सुना है, सब तो भगवान की इच्छा है ? है कि नहीं ?'

यह बूढी कुभ नहान के लिए मानभूम से आई है। बाल विधवा हैं शिवानद महाराज की शिष्या। बाप कई बीघा धान का खेत दे गए हैं। पूरे साल का धान बेचकर पाच बीस दो रुपया लेकर इतनी दूर अकेली ही चली आई हैं। बाली, 'देवता के पास आई हू, असुविधा किस बात की ? बडी ही भक्तिमती, सरल, लज्जाशील। मदसूरत पर नजर पडने हो घूघट काढ लेती हैं फुसफुसाकर बोलती हैं। मौका निकालकर केदार-बदरी से भी हो आई हैं। बोली, पैदल ही चली गई। रुपये भी क्या ज्यादा लगत हैं। मेरे तो पच्चीस रुपये भी नही लगे। बगल मे दो कबल दबाए चल दी। साथ म और भी एक बुढिया थी, चल नही सकती थी—सो, वह 'कडी' पर गई। कडी की तकलीफ की कुछ पूछो मत बिटिया ! टोकरी म बिठाकर पीठ पर ल जाते हैं न ! झकर-झकर झटका से बदन की सारी हड्डिया ढीली हो जाती ह।'

हम लोग इह बूढी अम्मा ही कहते। तीनेक महीने यहा रहने की इच्छा थी उनकी। बार-बार यही पूछती रहती, तुम लोग यहा और कितन दिन हो ? सभी तो चले गए केवल तुम्ही दोनो रह गयी हो। तुम लोगो के चले जाने के बाद मैं रसोई मे खाने नही जाया करूगी। अकेली औरत, लाज लगती है। ठाकुर

वे मंदिर म जाऊगी वही से प्रसाद लेकर लौट आया करूगी। [साथ म चूडा-मूडी गुड है। वही थोडा थोडा खा लिया करूगी।

बगल में ही एक छोटे म तबू म अकेली रहती है। रात को दीया-बाती की भी जरूरत नही। कहती हैं अधेरे म चुपचाप मजे म रहती हू।

स्वामीजी लागा का उनके लिए बडी फिक्र थी। बूढी हैं कही बीमार-बीमार पड जाए। इसलिए उन्ह जितनी जल्दी वापस भेज सकें उतने ही निश्चित हो सकें।

यह सुनकर बूढी अम्मा के जी को ठेस लगती। कहती कितनी खुश हू यहा, हर घडी कितना आनद मिल रहा है। लेकिन ये स्वामीजी लोग जब मुझे वापस भेज देने की कहते हैं तो मुझे बडा दुख होता है। इतनी सारी खुशी मानो गम मे बदल जाती है। हरदम हुए विषाद हुए विषाद लगता है। मैं सोचने लगती हू तो क्या ऐसा इसलिए हो रहा है क्योकि मेरे पास रुपए नही हैं ?'

मैंने कहा, रुपया रहने से क्या होता ?'

—'स्वामीजी को देती। आजकल खिलाने म भी तो कुछ कम खर्च नही लगता।'

मैंने कहा 'आप यह क्या सोचती हैं ? कौन किसे खिलाता है ? सब कुछ तो ठाकुर की देन है वही खिलाते हैं।

— तुम ठीक कह रही हो ? तो ये लोग मुझे रुपए की वजह से नही भेजना चाह रहे हैं ? मुझे गलत खयाल हुआ था, है न ? खैर तो अब वैसा नही सोचूगी। देखो न, किस शाति से हू। जी मैं आया, कभी ब्रह्मकुड या सतीघाट चली गयी, नही तो न सही अखाडे के घाट मैं डुबकी लगाकर चली आती हू। आकर ठाकुर को मंदिर म प्रणाम कर लेती हू और फिर तबू के अदर बैठी रहती हू। जप तप करती रहती हू। ऐसी एकात कुटिया कितना को नसीब होती है ? उन्ही की किरपा से तो मिली। अब रखें तो रहूगी भेज दें तो चली जाऊगी। यही तो वाजिब है। इसके लिए अब जी नही खराब करूगी।'

जब समय है तो ऋषिकुल देख आया जाय। गुरुकुल तो उस दिन देख लिया। गुरुकुल ब्रह्मचर्याश्रम है—आर्य समाज का विश्वविद्यालय। पचासवें वर्ष की जयती होगी, बहुतेरे आमंत्रित व्यक्ति आएगे बडा समारोह होगा। रास्तो की

मरम्मत हो रही है, पडाल बन रहा है। विराट अहाता है—इधर-उधर कुल मिलाकर सत्रह सौ बीघा।

नगे बदन लगोटी पहने घुटे सर वाले ब्रह्मचारियो की एक टोली खुले मैदान म दौड धूप कर रही थी। आज सबको सर धोने के लिए एक एक लोटा गरम पानी मिलेगा। इसीलिए नहाने से पहले अग-अग की हरकत कर रहे थे ये इस तरह से। सबकी तदुरुस्ती बहुत अच्छी है। देखकर बडा अच्छा लगता है।

परीक्षा खत्म हो चुकी है। छुट्टिया चल रही हैं। छुट्टियो मे कोई अपने घर नही जा सकता। यहा लगातार कई साल तक रहना पडता है। कुछ लडके बगीचे म झडे हुए पत्ते बुहार रहे थे, कुछ लडके खिडकी-दरवाजो पर रग लगा रहे थे, कुछ मिलकर सोने के कमरे को पानी से धो रहे थे। चौकिया पर गद्दी का मुडा हुआ बिछौना। सिरहाने की तरफ एक-एक दीवाल-अलमारी—कपडा-लत्ता, किताब-बही रखने के लिए। भोजन के कमरे मे कतार से लबे लबे आसन बिछे—घटी बजते ही थाली ग्लास लिए लडके खाने बैठ जाते हैं।

वहा के भी तीन विभाग हैं—आयुर्वेद, आर्ट्स, वेद विद्यालय। बहुत बडे-बडे भवन—बिडला हाल, हवन-मदिर—और भी क्या-क्या। सिर्फ एक गोशाला के लिए ही किसी सज्जन ने बहत्तर हजार रुपए दान मे दिए हैं। और, गोशाला का दरवाजा भी कैसा, किसी किले का फाटक हो गोया! इटो की चुनायी। हर के ऊपर चलिया पडी।

फाटक के पास मजन, तेल, हजमी गोली की दुकान—ये सारी ही चीजें यहा के आयुर्वेद विभाग की बनी।

सेवाश्रम क पूरब की ओर गुरुकुल, पश्चिम की तरफ ऋषिकुल। इस ऋषिकुल के प्रतिष्ठाता हैं दुर्गादत्त शर्मा और मालवीयजी। शिक्षा-दीक्षा, तौर तरीका, सब कुछ गुरुकुल जसा ही। लेकिन प्रागण मे दाखिल होते ही चारा तरफ कैसा गदा-गदा-सा दिखाई पडा। बरामदे मे शिशु-ब्रह्मचारी सब स्तव-पाठ करने के लिए खडे हुए थे—किसी ने कबल ओढ रखा था, किसी ने धोती का छोर बदन पर लपेट लिया था। कोई गजी पैंट पहने, किसी का अभी तक नहाना नही हुआ—बरामदे के नीचे ही बैसे लडके नल के पास खडे होकर अगडाई लेते हुये तेल लगा रहे थे। मले कपडे, फटे कबल, रग-उडी दरिया जहा-तहा भरी—मक्खियो की भिन्‌भिन्‌—जसे कि कोई रेफ्युजी कैंप हो।

ऋषिकुल के पास ही श्री गुरु मंडल आश्रम। सुना था, यहां हाथ की लिखी 'हरिवंश' की पुरानी पोथी है।

दोपहर थी। उस कमरे को बंद करके वहां का आदमी चला गया था। हम लोगों के आग्रह करने पर एक आदमी कुंजी की तलाश में गया।

अंगना में नारायण का मंदिर, उसी मंदिर के ओसारे पर हम सब प्रतीक्षा में खड़े रहे।

ओसारे के एक ओर रंग बिरंगी झालरों से घिरा एक पलंग। उस पर ग्रंथ साहब। एक सिक्ख महिला आईं। गंगा जल के लोटे को पास में रखकर पलंग पर बैठ गईं। गंगा नहाकर घर लौटते हुए ग्रंथ-साहब के दो एक पन्ने पढ़ लेंगी। विराट पोथी पढ़ना इनकी पूजा-अर्चा सब कुछ है।

खूब कस कर पेट में बेल्ट बांधे, कमीज पहने एक छोटा-सा लड़का बार-बार इस तरफ बढ़ता और अजनबी लोगों को देखकर पीछे हट जाता था। कई बार उसने ऐसा ही किया, उसके बाद पांव दबाए आया और झट पलंग के नीचे घुस गया। दो एक बार हाथ लगा कर जमीन को टटोला और एक ही सांस में दौड़ कर भाग गया।

मैंने उझक कर देखा, मोटे पाए की आड़ में खड़ा होकर उसने एक बार इधर उधर ताक लिया और धूल लगी मुट्ठी का चटपट कमीज की जेब में डालकर छाती और कपाल में फेर लिया।

जो आदमी उस बंद कमरे की कुंजी की खोज में गया था, वह लौट आया। बताया कुंजी वाले सज्जन तो ढूंढे मिले नहीं। हो सकता है बाजार गए हों या गंगा के घाट पर। 'हरिवंश' देखना नसीब नहीं हुआ।

और सब कुछ देखना तो हुआ चंडी पहाड़ और मनसादेवी के मंदिर को दूर से ही सर नवाया। उतने ऊंचे पहाड़ पर चढ़ने की बड़ी दी को मनाही है। दादा के भी घुटने में दर्द है, ऊंची-नीची जगह में चलने में तकलीफ होती है। मैंने मेघा तक उठे मंदिर-शिखर की तरफ एक बार नजर उठाकर ही झुका ली। बेशक जानती हूं, माताएं दयावती होती हैं, माफ कर देंगी।

केवल बिल्वकेश्वर का दर्शन बाकी रह गया, आज ही कर लें, क्या हर्ज है?

भोलागिरि आश्रम के उलटी तरफ बिल्वकेश्वर हैं। बिलकुल सीधा रास्ता। मंदिर तक तांगा जाता है।

पहुचते ही सबसे पहले कालभैरव मिलते हैं। कालभैरव से आगे बिल्वकेश्वर। सफेद धूलभरी पगडंडी टेढ़ी-मेढ़ी गई है। उसी से आगे जाने पर पक्के का अगना मिला। अगना के एक किनारे नीम का पेड, नीम तले बिल्वकेश्वर।

अगने के एक ओर बैठे एक साधक—सारा सर सफेद, दाढ़ी-मूछ सफेद, वदन मे जैसे पुराने ऋषि-मुनि की छवि। कई छात्रो को सामने बिठा करके वह शास्त्र पढा रहे थे। उस दिन का पाठ समाप्त हुआ। अपनी-अपनी पोथी समेट कर छात्र लोग उठ गए तो हम जाकर उनके पास बैठे। उनसे बिल्वकेश्वर के बारे मे पूछा।

वह बोले, 'इन्हे नही जानते? यही स्वयभू शिव हैं—सती को इन्होंने यहीं पर दर्शन दिया था। यह जो नीम का पेड है, इसकी जगह पहले बेल का गाछ था। चूकि वह बेल के पेड तले थे, इसलिए नाम पडा बिल्वकेश्वर'।

यानी सती की, शिव को देखकर यही, न ययौ न तस्थौ वाली दशा हुई थी। शिव के मुह से व्यग सुनकर सती मुह फेर कर चली जा रही थीं। जिनको पति रूप मे पाने के लिए उन्होंने यह कठोर तपस्या की, उस शिव की निंदा सुनना सती के लिए असभव था।

सती को लौट जाते देख शिव ने अपना सही रूप धारण किया और कहा, 'अरे, चली न जाओ, जरा उलट कर देखो तो कि मैं कौन हू।'

शिव को देखकर सती की अवस्था वैसी ही हो गई, न जाते बने, न रहते।

बिल्वकेश्वर से जरा आगे बढिए, तो सतीकुड। दो ओर खडे पहाड, उन पहाडो की गोदी की ओट मे यह कुड, अब बधवा कर उसे कुए-सा बना दिया गया है।

पहाड पर सूखी घास की लिक लिक पतली गुच्छिया नीचे की ओर झूल रही हैं। कुछ पेडो ने सहारा पकडने के लिए अपनी जडें फैलाई हैं। ऊपर की ओर डाल नही, पत्ते नही, धूप हवा के लिए आग्रह नही। उन्ह पत्थर से रस खींचने मे ही अपनी सारी शक्ति लगा देनी पडी है।

यहा आकर खडे होते ही नद दा[1] की वह तसवीर याद आई—हाथ की माला फेरती हुई गले तक झरने के पानी में खडी सती जप कर रही हैं।

उपयुक्त स्थान शायद तप को सहज ही सफल बनाता है।

---

1 नदलाल बसु

सतीकुंड से सटा-सा ही पहाड के कुछ ऊपर एक छोटी-सी गुफा। इसी गुफा मे बैठकर भोलागिरि ने सिद्धि पाई थी। किस्सा सुना है, भोलागिरि जिस दिन इस गुफा मे पहली बार बैठे, बत्ती जलायी तो देखा, रोशनी से डर कर एक साप सरसराता हुआ बाहर निकल रहा है। 'भागो मत बेटे'—कहकर भोलागिरि ने हाथ की बत्ती बुझा दी। वह उसके बाद जितने दिन तक उस गुफा म रहे, कभी बत्ती नही जलाई। अभी भी वहा प्राय बडा विशाल साप दिखाई पड जाता है। पहाडी लकडहारे आते-जाते उसे देखा करते हैं। बीच-बीच मे वह साप बिल्वकेश्वर के अगना तक आ जाता है।

गुफा तक ऊपर जाने के लिए रास्ता या सीढी नही है। पकड धकड कर चढना पडता है। हम लोगो को इतने म ही इतनी तकलीफ! और वे लोग इसी तरह से सदा चढा-उतरा करते थे। जान-सुन कर कही ऐसे दुगम स्थानो को वे चुना करते थे।

सतीकुड के इस पार वाले पहाड पर घना जगल। दोनो पहाडो के बीच नीचे की जमीन पर कुछ झोपडिया—स्त्री-पुरुष, बच्चे-कच्चे से भरी। लगा, *एकाएक ही बस गई हैं, एकाएक एक दिन उजड जायेगी। कैसा उटाऊ-सा भाव।* लबे-पतले आगन म एक लबे चूल्हे पर कतार से हडिया चढी थी।

मैंने कहा, 'बडी-दी, देखो देखो, कितना अच्छा इतजाम है! समवाय रसोइ का कैसा गजब का तरीका! बिलकुल नई चीज। हम लोग भी तो ऐसा कर सकते हैं।'

खीचती हुई मैं बडी-दी को वहा लेगई। करीब गई तो देखा, अगना के इस छोर से उस छोर तक एक नहीं, बसे पाच छह लबे चूल्हे थे। हर चूल्हे पर हडियो की सोलह-सोलह वाली तीन पात। इतनी हडियो का चावल कितने लोग खाते हैं?

धू धू आग जल रही थी। कई पहाडी औरतें चूल्हो के दोनो ओर सूखी लकडियो के छोटे छोटे टुकडे डाल रही थी।

और भी करीब गई। हाय राम, चावल कहा! हडियो म लकडी की टुकडियां उबल रही थी। कथ तयार हो रहा था।

पहाड के ऊपर जो जगल है, उसी मे कथ के पेड हैं। मर्द लकडी के छोटे-छोटे टुकडे काट देते हैं औरतें उनके गट्ठरों को पीठ पर लादकर नीचे ले आती हैं। कथ

को लकड़ियों का ढेर लगा है। पानी में उबाल कर रस निकाल लेने के बाद वही लकड़िया सुखाकर फिर जलावन के काम आती हैं। आच लगाते लगाते लकड़ी को सिझाकर जो कवाथ पानी का तैयार होता है, वही है कथ। कथ तैयार हो जाते ही हाडी समेत उसे झोपड़े में रख देते हैं। एक तिल इधर उधर होने की गुजाइश नही— बडा कड़ा पहरा।

मा की याद आ गई। उनके लिए अगर थोड़ा-सा कथ ले पाती। नही तो जाकर कही उनसे कहा कि हमलोग कथ तैयार करना देख आये हैं, तो वह कई दिनो तक मेरा मुह भी नही देखेंगी। बोलना चाहूगी तो सिर्फ इस-उस कमरे में जाती रहेंगी, नाहक ही भडार घर की सीसी-बोतलो को इधर उधर करती रहेंगी, घड़े में से सरसो उझल कर फिर से उसे फटकने लगेंगी। जब उनका गुस्सा थोड़ा कम हो जाएगा, तो बोलेंगी, 'थोड़ा-सा अच्छा कथ जाने कितने दिनो से नहीं मिला है, बालू मिट्टी की मिलावट और वह भी पाच रुपया सेर ! वहा बढ़िया चीज मिलती और सस्ती भी मिलती। थोड़ा-सा ले ही आती तो कौन-सा पुराण अशुद्ध हो जाता !'

उस बार जमशेदपुर गई। मा जो बिगड़ी कि मत पूछिए ! बोली, 'लड़ाई के चलते काटिया नही मिलती मसहरी लगाने के लिए। जमशेदपूर तो सुना है, लोहे की जगह है, याद से दो चार काटिया-कीलें तो ले आनी थी।'

बड़ी-दी ने झट एक काठी बीन ली। जो आदमी घर की हाडी लिए जा रहा था, उसके पीछे-पीछे दौड पड़ी, 'ऐ भैया, हम सब बगला मुलुक से आये हैं— देखने के लिए हमको थोड़ा-सा कथ दीजिए'—कहकर उन्होंने काठी बढ़ा दी, अगर थोड़ा-सा दे दे।

वह आदमी दौडकर अदर चला गया। वही से बोला, 'देखना हो तो यहा देख जाइये'—उसने दूर से हथेली फैला दी।

ठिसुआ कर बड़ी-दी ने हाथ की काठी को फेंक दिया। बोली देखा, दिया नही जरा-सा। चखकर देखती कि टटका कथ खाने में कैसा लगता है।

राह घाट में धीरे धीरे भीड़ बढ़ती ही जाने लगी। आस पास जो सूखी जमीन थी, दोनों शाम उनमें डेरे खड़े होने लगे।

दूकानदार लोग कच्ची लकड़ी के तख्ते बाधकर, जितना बन सकता था, घर

के बरामदे बढ़ा ले रहे हैं। कोयले और लकड़ी के कोयले के अलग अलग चूल्हे बना रहे हैं। साधु-संतो के लिए थोड़ी ही थोड़ी दूर के फासले पर अन्न-सत्र खोले जा रहे हैं। कहते हैं, अभी वास्तविक भीड़ वृंदावन में है। होली के बाद सारे लोग वहां से दनादन चले आयेंगे। सोचने लगी, जब अभी ही यह हाल है, तो उस समय न जाने क्या होगा ! एक बात की आफियत जरूर हो गई है, गह बाट सब पहचान ली है। कम-से-कम खो जाने का डर नहीं रहेगा।

हाथ में तांबे का पुष्पपात्र लिए एक पुजारी हंसते हुए आकर राह रोक कर खड़े हो गए। सुंदर सुडौल-सा मुखड़ा, पहनावे में गुरुआ रंग का तहमद, बड़े चीन्हे-चीन्हे से लगे।

कि याद आ गया, अरे रे ! ये तो उस दिन वाले वही सज्जन हैं जिनके बगीचे में मैंने फूलों से भरे नासपाती के पेड़ पहली बार देखे। लेकिन यह क्या ? उस दिन इनका बाना गृहस्थ का था और आज साधु का वेश !

वह आज भी हमें सादर अपने बगीचे में लिवा गये। बगीचे में ही इनके रहने की एक छोटी सी कोठरी है। चिक पड़ी हुई—आधी अंधेरी-सी कोठरी। नाम है प्रयागदास अवधूत। उदासी सम्प्रदाय। इनके पिता बर्मा में खासा बड़ा व्यवसाय करते थे। उनके इकलौते लड़के। इक्कीस साल की उम्र में इन्होंने घर छोड़ दिया और लगातार तेईस वर्षों तक साधना करते रहे। अब बहुत हद तक गृहस्थ-से हैं। बपौती धन से जगह-जमीन खरीदी और बाग-बगीचा लगाकर साधु-सेवा कर रहे हैं। घर के ठीक आमने-सामने रास्ते के उस पार जो जमीन पड़ी है, उसमें अन्न-सत्र खोलेंगे। शुभारंभ में पूजा करके वहीं से लौट रहे थे। इसी बीच हम लोगों से मुलाकात हो गई। बोले समय-सुविधा हो, तो बीच-बीच में आ जाया कीजिये।'

मोड़ पर जो पान की दूकान है, उसमें पान वाला अपने नन्हें बच्चे को हिला-हिला कर गोदी में सुला रहा था—'जय हनुमान कि बीर हनुमान, बीर हनुमान कि जय हनुमान !'

उसके यहां से दो आने के बीड़े खरीदे।

रात को भोजन करके रसोई से लौट रही थी अपने तंबू में। बूढ़ी अम्मा ने बड़ी-दी से कहा, 'हां बिटिया, तुमको तो देख रही हूं रानी बिटिया को भी देख रही हूं। दोनों ही बड़ी भली हो तुमलोग। अच्छा, तुम्हारे भाई कैसे हैं बेटी ?'

हसकर बडी-दी ने कहा, 'भाई भी मेरे बडे अच्छे हैं।'

बूढी अम्मा बोली, 'सो नही कहती। कहती हू, भाई के धरम ज्ञान तो है ?'

बडी-दी ने कहा—'क्यो नही ?'

—'तो वह साथ जो नही आए ?'

परेशान-सी होकर बडी-दी ने थूक सटका, 'न-न, आते जरूर। मगर कामो का बेहद बोझ था फुरसत नही—'

—'नही-नही सो नही पूछ रही हू'—यह कहकर बूढी अम्मा ने मेरी ओर ताक कर बडी दी से कहा, 'यह उमर,—मैं कहती हू, विच्छेद तो नही ?'

नई दिल्ली का कौन-सा आकर्षण है मैं सोच नही पाती। रगीन फूलो की झाडियो से घिरा बडे-बडे पेडो के पहरे मे हरी लान वाला एक एक कैदखाना हो जैसे ! न तो खिडकी से बगल के मकान मे बासी बतन माजती हुई बुढिया नौकरानी नजर आती है न ही छत पर पडोसी की लडकी नाखून से चीरती हुई गीले बालो को सुखाती हुई दिखाई देती न तो दीवाल के उस ओर से सास-पतोहू के झगडे का कोई कलरव सुनाई पडता है और न ही सुनाई पडती है छक्डा गाडी की कान फाडनेवाली घडघडाहट, ट्राम-बस की भद्दी आवाज, फेरी वाले की चीख, मीटिंग मे जुलूस बनाकर जारी हुए किसान मजदूरो के नारे !

बिस्तर पर पडे पडे मन ही मन सोच रही थी और एकटक खिडकी की ओर देख रही थी। खिडकी पर सुबह की आभा नही फूट रही। हो क्या गया आज ? किसीकी कोई आहट ही नही। सझली-दी के बगीचे के बडे बडे पेडो पर कितनी ही चिडियो का ये बसेरा है, रात बीतते न बीतते उनकी बोलियो से नीद खुलती है। आज अभी तक वह सब जाग क्यो नहीं रही हैं ? एक छोर से सिर्फ एक पोड ही रह रह कर बोल उठती थी—घुघुच्चु घुघुच्चु।

सझली-दी की मा कहती हैं, पोड की पुकार सुला देती है।' मैं आखें बद किए सुनने लगी—घुघुच्चु घुघुच्चु। उफ, कैसी पीडा ! इस पुकार से मन के भीतर पीडा घुमड घुमड उठने लगी।

बिस्तर छोडकर बाहर निकल आई।

चारो तरफ कैसी तो एक घुटती हुई पीडा।

होकर भी भोर नही हो रही, जग कर भी पक्षी गीत नही गा रहे। बग़ीचे में इतने तो खुशबू भरे फूल भरे पडे हैं, मगर कही एक भी मधुमाछी का गुनगुन नही। केवल कई छोटी चिरैया खुले मे फुदकती फिर रही थी, घासों म चोच म खोज-खोज कर कोडे खा रही थी। इनको गोया सुख दुख का कोई बोध ही नही। भूल कर भी कोई इनकी ओर उलट कर नही ताकता। धूल के रग की चिडिया, गोल-गोल दबी दबी-सी बनावट, देखने से बल्कि ऊब ही आती है। न कोई रूप, न ही काई गुण। वसत के रगो की बहुविध विविधता मे, कल-कलरव की महफिल मे ऐसी चिडिया के लिए जगह ही कहा ?

इसीलिए सबकी अनादर-अवहेलना से दूर हटकर शायद ये कई आपस म ही मिल जुलकर एक साथ रहती हैं। जाडा, गर्मी, वर्षा, वसत—कोई परवाह नही। कष्ट के आतक से ये सन्नाटे मे नही आ जाती। सदा छह्-सात मिलकर ही कोने कतरे मे, अधेरे म छिपकर फुदकती फिरती हैं। अगरेजी मे इसीलिए इन चिडियो को 'सेवन् सिस्टर्स' कहते हैं।

सात बहनें। सोचती हू, किस अभियान से ये ऐसी निर्विकार हो सकी। अभिमान कि आघात ?

अचानक ही पछतावा होने लगा। अनजान मे पल-पल कितना दोष किया करती हू। इन सात बहनो को आज तक मैंने किन फूटी आखो देखा किया है। रसोई के पास पालक-साग की क्यारी मे जब ये झुड मे उतर आई, दोनो हाथो ढेला पत्थर लिए म दुर् दुर् करती हुई मारने के लिए दौडी। लेकिन आज इन चिडिया न मन म कौन-सी माया बिखेर दी ! मानो इसी क्षण की ये उपयुक्त सगी हैं, मौका देखते देखते इतने दिनो के बाद आज अपना परिचय दिया।

चारो ओर एक घुटन-सी। घर-बाहर सन्नाटा-सा। कही भी हसी का नाम नही। जानती हू यह स्थिति ज्यादा देर रहने की नही। फिर भी इन कुछ क्षणो की वेदना ही तो असीम है।

अब तक टुपटाप पानी पड रहा था शायद बालो से पानी टपक रहा था, साडी, चादर गीली लग रही थी। पैरो तले की घास पर पानी की बूदो के मोती फले थे। बडी खुशी हुई।

दबी व्यथा को आखो मे पानी से ही हलका कर लेना पडता है, इसके सिवा और कोई दूसरी तरकीब नही। कहा, 'धरती, रोओ, और रोओ, अपने आसुओ से फिर एक बार सब कुछ को बहा दो। जभी तो होठो पर हसी निखार सकोगी। नही तो या घुमड कर रोना—देखकर भी कलेजा मरोड उठता है।

घर से चिट्ठी आई। राणा-दी ने लिखा है, भैरव की बाढ म सानू दी के स्वामी, छोटी फूआ के भाई, बतसी की बहिन-बेटी का लायक लडका—बेचारी विधवा का एक मात्र सहारा—और राणा बहू ठकुरानी की लडकी राखी के पति-पुत्र दोनो—बह गए। गोद का बच्चा अभी महज डेढ साल का है। पत्नी और बेटे को ले जाने के लिए प्रोफेसर दामाद छुट्टी लेकर आए थे। भैरव का पुल पार नही कर सके—गाडी को रोक कर लूटेरे घुस आये—मार-काट कर ऊपर से प्राय सबको पानी मे फेंक दिया।

और नही पढा जा रहा था। गोदी से बच्चे को छीन लिया ! अहा रे !

उसी के साथ राखी का भी काम तमाम क्यो नही कर दिया। कलेजे मे शूल बीध कर उसे क्या जिंदा छोड दिया ?

चारा ओर यह सब हो क्या रहा है ? जान की कोई कीमत ही नही रह गई है मानो। जैसे-तैसे ले ली। अखबार पढने म कलेजा काप उठता है। चिट्ठी आने पर उसे खोलने म डर लगता है। जी मे आता है—दूर और दूर भाग जाऊ—जहा कानो मे एसी कोई बात न पहुचे। घर म, बरामदे पर छटपट करती रहती, रास्ते मे, मैदान म चक्कर काटा करती। दोना हाथो से कान बद कर लेती, जी-जान मे आखें बद किये रहती। लेकिन हाय ! यह तो सीधे अदर के दरवाजे पर ही धक्का मारती है—बचने का रास्ता कहा ?

कहा, 'बडी-दी लौट चलो। अब तीरथ मे घूमना अच्छा नही लगा।'

लोग कहते हैं मन को थिर करने के लिए ही तीरथ है। तो फिर घर के उस कोने के लिए ही मन इस तरह से उतावला क्या होता है ?

इसी के जवाब म बार-बार सुनती आई हू—इसी का तो नाम माया है। इस माया को जीतना पडेगा, तभी मुक्ति मिल सकती है।

वैसी मुक्ति की मुझे दरकार ही क्या पडी है ? डरपोक मन विद्रोह कर

उठता और तुरत फिर डाट बताता चुप्। जो जानती नही, उसे जबान पर
मत लाओ।

अपनी वष्णवी सहेली के लिए मन मेरा अकुला उठता। काश, इस समय वह मेरे
पास होती। लगता है उसकी बात मैं खूब समझती हू। उसकी देखी हुई राह
मानो दिन की रोशनी म देखी हुई साफ सुथरी राह है।
और कुछ नही कोई बात नही मेरे पास बैठ कर सखी गाना गाती रहती। मैं
आखे बद किए सुनती। उसका गीत ही उसके मन का भाव है मुह की भाषा है।
जब आ रही थी, तो एक सूनी दोपहरी म उससे मेरी मुलाकात हुई थी।
चित्र बनाते-बनाते जी कैसा हो उठा। हाथ की कूची मैंने उतार कर नीचे
रख दी। भरी दोपहरी मे बाहर आकर आगन के शरीफे के पेड के नीचे बठ गई।
घर की पिछौती का गोबर से पुता यह अगना छोटा-सा मेरे फुरसत के समय
मन के विलास का आश्रय है। घूमती फिरती हू दात से तिनका कटती हू और
यहा-वहा बैठकर माटी पर हाथ फेरती हू।
कुछ दिनो से ही देखती आ रही थी सूखी-सी छोटी डाल की नाईं कोई पौधा
माटी फोड कर बाहर निकलता आ रहा है। पत्ते उगने की नौबत नही आती,
नारियल के झाड़ू से मुन्नी उसी पर से गोबर पानी घसीट दिया करती। गोबर-
माटी सोख कर वह सूखी-सी लकडी मोटी हो आई। बेडोल डाल—खीज कर उस
रोज दाव से काट कर उसे नाले मे फेंक दिया। आज देखा, वहा एक दुबली-सी
मुलायम डाल निकल आई है—उस पर कई लाल-लाल पत्ते—अभी तक अपने
को साफ-साफ फला नही पाए हैं। झुक कर देखा, तुरत के पैदा हुए शिशु
के नन्हे हाथो की लाल उगलियो की नोक हो जसे। तीन-तीन पत्ते। बेल का
पौधा। प्राण की कसी शक्ति। पैरो से रौंदती रही, डाल तोड दी, पूरा-का-पूरा
काटकर उखाड फेंका—फिर भी वह नही मरा। किस मौके से जाने उसने
वसतागम पर अपनी कोपलें बिछा दी।

मर के न मरे सखी, कसी है यह ज्वाला।
गले में डालो उठा के यह काटों की माला।

गीत की कडी से चौंककर पीछे की ओर ताका। जरा पता नही चला कि

सखी कब आकर मेरे पास बैठ गई है। सखी मुस्करा रही थी। होठो पर उसके हसी लगी ही रहती है। जानने की ख्वाहिश होती है कि यह सदा प्रवाहित हास प्रवाह उसे किस ऊची चोटी से मिला। सखी हसती रही और गाती रही—

'आकुल शरीर आज, व्याकुल रे मन !
मुरली की धुन सुन टूट जो बधन।

मेरी सखी बडी छोटी मोटी-सी है। बातो-बातो मे यह समझ मे आता है कि घर की बडी लाडली-दुलारी थी। मगर आज उसे उसका कोई गम नही, कोई गिला नही। कुछ और ज्यादा जानना चाहती हू तो सखी मेरी हसकर कहती है 'वह मेरा पूर्वाश्रम है। नाम नही बताना चाहिये।'

रोमू कहता, 'तुम्हारी सखी का रग क्या खूब है मामी बूढी हो गई, मगर अभी भी जैसे फूटा पड रहा है। उमर जब होगी, तब कैसा होगा न जाने।

यह बात मैं भी सोचती हू। खूटी-से खडे छोटे छोटे सफेद बालो म भरा घुटा सर। वर्षा का फूला कदम फूल हो जैसे। दात एक भी नही। चेहरे पर झुरिया। फिर भी नाक मुह-ठोडी की क्या खूब बनावट ! आखें और भौह कैसी गजब की। उस दिन की वह छवि हर घडी आखो मे झलमलाती रहती है। मैंने पूछा था, 'सखी, मा-बाप के उस सुख के बसेरे को छोडकर चली क्यो आई ? छोटी उम्र मे क्या ही गलती कर बैठी।'

'गलती ! गलती कहती हो उसे ?' सखी का हसमुख चेहरा थमथम कर उठा, गोरे कपाल पर काली दोनो भवें टकार-सी कर उठी दोनो आखो की काली पुतलिया मे मानो दप्-दप् करके दो दीए जल उठे। उसी लौ की जोत मुझ पर डालती हुई सखी ने गाना शुरू किया—

'प्रेम नहीं, यह प्रीति नहीं अभिचारी तत्र !
काला नाग डसे तो उस पर चले न कोई मत्र।'

आज वह काली धारीदार एक साडी पहनकर आई थी। देखकर मैं अपनी हसी रोक नही पा रही थी। कहा, 'बडी फब रही है।

सखी ने कहा, घोस के छोटे लडके का ब्याह हुआ। नई बहू ने बडे शौक से यह साडी मुझे पहना दी। बहुए मेरी साज-पोशाक देखकर आपस मे हसती हैं।

मन ही मन मैं भी हसती हू । पता है तुम्हें जिस दिन उनका हाथ पकडकर पहली बार मैं राह म निकल पडी तो मेरे पहनावे म सफेद डोरीया साडी थी । ओर आज,

'सारे तन में अपने कालिख कलक को लगाकर,
काले मितवा को मैंने हिरदे मे रखा छिपाकर ।'

गात गात काली डोरिया साडी के अधेरे को सखी ने भलीभाति बदन म लपेट लिया ।

पूछा, तुम्हे उस पर कभी गुस्सा नही आया ? यो छोडकर चला गया ?'

लबे निश्वास को दबाकर सखी बोली तुमसे झूठ क्या कहना, अपनी बडायी नही करूगी । गुस्सा बेशक हुआ था—बेहद गुस्सा हुआ था । उससे भी ज्यादा हुआ था दु ख और उसस भी ज्यादा अभिमान । और उससे भी सौ गुना ज्यादा जो जानमारू है वह धिक्कार मन म जगा । कलेजे का इस पार-उस पार धिक्कार की आच मे जलकर अगार हो गया ।

देखो पास का जो आदमी दूर चला जाता है उसे पकडना चाहने जसी विडबना दूसरी नही है ।'

सखी चुप हो गई । हथेलियो से दोनो आखें छिपाये बठी रही ।

बोली दिन बीतते चले जलन बढती गयी । अब सहा नही जाता । यह आग काहे से ठडी करू किस कुए का पानी डालू ? बेताब तडपा करती हू ठडे फश पर छाती दबाकर सोती हू । मगर शाति नही नही है शाति । आखिर पागल हो जाऊगी क्या ? इसस तो पागल हो जाना भी बेहतर है । मगर वही कहा होती ? दोनो आखो की बारिश से सूखी धूल तक कीचड हो जाती है ।

सोचती हू एक दिन तो वह निदयी ही मेरी निगाहो मे परम सुदर था । उस सुदर के हाथो अपने को लुटा देने मे खुद को सौभाग्यवती समझा, उसकी छाती पर सर रखकर मैंने स्वग के सुख को तुच्छ समझा । उस दिन हमारे प्रेम मे रत्ती भर भी खाद नही थी न थी कही जरा भी मिथ्या । तो तो उसी क्षण को मैं जी से जिलाए क्यो नही रखती हू ?

जिस दिन इस सत्य का पता चला जी गई मैं । उस आनद की न पूछो । तब जिस सागर के किनारे नीड बसाने की उम्मीद म बठी थी, उसी सागर की लहर लहर म मान-अभिमान, घृणा क्रोध, सब कुछ को बहाकर हाथ मुह धोकर उठ

आयी। घर लौटकर माटी का दीया जलाकर देवता के सामने रखा—देखा, वह मुखड़ा और यह मुखड़ा आज एक हो गया है। तब से मैं रोती नहीं हूं। क्या रोऊं ?

'चडीदास बोले कांदो किसेर लागिया।
से कालो रोये छे तोमार हृदये लागिया।'[1]

सक्षली-दी ने आकर कहा, चलो, उस दिन वाला गुबज देखने चलोगी ? बारह मील है। लम्बा ड्राइव मजा आयगा।

मैंने कहा 'नहीं सक्षली दी तबीयत नहीं हो रही है।'

—'तो फिर बिड़ला मदिर चलो। मा भी जाने की कह रही थी। एक ही साथ दिखा लाऊं।'

उस बार भी बिड़ला मदिर गयी थी। श्वेत पत्थर का विशाल मदिर दरवाजे पर टोकरियों गुलाब की खुशबू। जो भी आ रहा था दोने भर फूल खरीदकर अदर जाता था। एक-एक करके सीढ़ियां चढ़ने लगी, इधर बाघ उधर सिंह। सूड़ से सूड़ मिलाये रेलिंग म हाथियों की पात। कार्निशा पर कमल की कलियां। घाट पर हर खभे पर अघ्य सजाया हुआ। दीवालो पर रगीन और खुदी हुई तसवीरें। फाक फाक मे पुराण की गाथाएं। फश पर कटे पत्थरो का पीला-काला नकशा। पक्षा मदिर को घेरकर बधी हुई सूखी नहर। बाघ के खुले विशाल मुह मे नकली गुफा—ऊट, गैंडा, झरना, झाडियो भरी शौकीन बगिया, झूला—सब कुछ को पार करके पड़ के नीचे आलू चना खाकर जब बाहर निकल आई, तो एकाएक खयाल आया, ज, सब कुछ तो देखा, मगर मदिर के देवता को तो नहीं देखा। सक्षली-दी बोली, 'इतना सोच क्या रही हो ? जाने की इच्छा नहीं है ? पहले देखा है ?' मैंने कहा, सो हो। चलो फिर एक बार चलू। देख ही आऊं, वहां क्या है।'

---

[1] चडीदास कहते हैं रोती किस लिए हो। वह श्याम तो तुम्हारे हृदय से लगा है।

व्रजरज

देखते-देखते भर गया। गाड़ी के छोटे-से डब्बे में पंजाबी, मारवाड़ी, गुजराती,
पंजाबी, सिंधी, नेपाली, उड़िया, बंगाली—सब प्रदेश के यात्री ठसाठस भरे।
सभी एक ही उद्देश्य से जा रहे थे, मथुरा-वृंदावन, श्रीकृष्ण की लीलाभूमि के
दर्शन के लिए। जैसे विभिन्न भाषा-भाषियों ने एक ही परिवार बना रखा हो।
एक के लिए दूसरे को एक-सा दर्द। वह उसके बच्चे को गोदी में खींच लेती। वह
उसके बैठने के लिए जगह छोड़ देता, टिफिन का बक्सा, पीतल का डिब्बा खोलकर
खान का सामान बाटकर खाता, मिट्टी की सुराही से भर कर ठंडे पानी का ग्लास
मानाबारी महिला घाघरावाली नई बहू की ओर बढ़ा देती, मराठी माँ की गोद
में बैठा नन्हा-सा बच्चा सबकी तरफ हाथ बढ़ा देता—कहता, 'शेक हैंड'।
मा-मौसी तो हसते-हसते लोट-पोट। नमो सोयी हुई बोली, शायद हो कि मामा-
चाचा ने शौक से सिखाया हो। उठ-उठ कर सभी उस नन्हे हाथ से हाथ
मिलाकर 'शेक हैंड' कर आते। भला वैसी पुकार सुन कर भी कोई रो रह
सकता है।

गाड़ी मथुरा में रुकी। यहा से वृंदावन तीनेक कोस है। बस, टैक्सी, तांगा—
यही तीन सवारियां। पहले से ही यह तै था कि वृंदावन घूम घाम कर लौटती
बेर हम मथुरा मे कई दिन रहेंगे। जब इसी रास्ते से आना ही पड़ेगा, तो दूर का
ही मामला पहले चुका लें।

स्टेशन पर उतरे। कुली के माथ पर असबाब चढ़ाकर प्लेटफारम से बाहर
निकले—छत्ते से भड़के हुए बर का झुंड हो जैसे—गाड़ीवानों की एक टोली
आयी और कुली के सर पर से बक्स बिस्तर, हम लोगों के हाथ से थैली, बैग,
गठरी—जो भी हाथ लगा, झपट्टा मार कर पल में गायब हो गयी! ओफ़ ही
यह घटना घट गयी। खाली हाथों हम भौचक्के-से रास्ते पर खड़े रह गए। बड़ी-
दी ने कहा, 'अजी, एक-दूसरे का मुंह क्या ताक रहे हो, खोजो, जल्दी खोजो।

देखो भी, सब चल कहा दिए। ऐ कुली, असबाब सब कहा गया?" बेवकूफ कुली ने हथेली उलटा दी।

'खोजो-खोजो, देखो देखा' करते हुए पागल की भांति दौड़ते रहे।

बड़ी दी बोली 'वही तो वह—वहा—, ऊपर, भीतर—'

देखा, सती की देह की तरह हम लोगों के सारे सामान इधर बिखरे मे कई तागा म जा पहुचे हैं। तागवाला बेफिक्री के साथ बायें हाथ से लगाम और दायें से चाबुक थामे तैयार। बस चलने भर की देर।

सारे सामानो को एक जगह बटारना एक खासा झमेला। अपना दावा कोई भी छोड़ने को तैयार नही। एक गाडी पर टिफिन केरियर जा पहुचा है, लिहाजा हम उसी पर जाना है। किसी की गाडी पर साह का सदूक—वह उसी को जकड बैठा है। उस गाडी पर सवार हो तो अपना ट्रक वापस मिले। इसी तरह से कोई लालटेन कोई बाल्टी कोई बिछौना, कोई बेंत की टोकरी दोनो हाथो दबाए बठा रहा। उपाय ही क्या था। खोज से थकावट आ गई। पैरो मे खडे रहने की ताकत नही रही। जी म होने लगा कि पाव पसार कर रास्ते की धूल पर ही बैठ जाऊ।

आखिर किसी ने सारे सामानो को दो तागो मे कर दिया, उसकी ठीक-ठीक याद मन मे स्पष्ट नही हो रही है। देखा बक्से पर दोनो पाव रक्खे दो ओर की गठरी मोटरी को अगोरे अगल-बगल बठी मैं और बडी-दी वृदावन की ओर चली जा रही हैं। स्टेशन को बहुत पहले ही छोड चुके हैं।

सफेद धूल भरा रास्ता। दोनो ओर रूखे मदान, ऊचे-नीचे सफेद माटी के टीले और कटीली जगली झाडिया। पत्ते धूल से धूसर। रास्ते से बस मोटर गुजरती तो गर्द का तूफान उठाती जाती। धूल की उस आधी से रास्ता, गाडी, आदमी, पेड, परो के पजे, माथे का आकाश सब ढक जाता। काफी कुछ देर तक आख नाक बद करके रखना पडता है। जिसे प्राणायाम का जितना ज्यादा जोर है, उसी का उतना बचाव हो पाता है।

बडी दी ने कहा, 'यही व्रजरज है। इसी रज पर चैतन्य महाप्रभु लोटा किए थे। इसी एक रास्ते से दल के दल यात्री आ रहे थे, दल के दल यात्री वापस जा रहे थे। जसे रात दिन उत्सव का निमत्रण हो। आने जाने का विराम नहीं।

कितने ही मैदान, मंदिर, धर्मशाला पार करके वृंदावन पहुंची। आसारे पर बैठकर पड़े पान चबा रहे थे और यात्रियों पर निगाह रखे हुए थे—किसे घेरें, किसे पकड़ें।

रास्ते के किनारे कोपीनधारी छोटे लड़कों का दल—काठ का आईना बायें हाथ मे लिए तिलक लगाते।

जप की थैली हाथ मे लिए बंगाल वैष्णवी हड़बड़ाती जा रही थी—बूढ़ी, युवती—साथ-साथ भीड़ लगाए।

गाड़ी गली से जा रही थी। घर के सामने के छोटे-से अंगने मे मोर, कबूतर, कौआ, मैना, सुग्गा मिल-जुलकर दाना चुग रहे थे। दादा पोता पक्के के बरामदे पर बैठे मुट्ठी मुट्ठी दाना छींट रहे थे।

रामकृष्ण सेवाश्रम पहुंचने मे शाम हो गयी। यहा भी कनखल की ही तरह अस्पताल को लेकर ही इनका काम-काज। ये रोगियो की सेवा के लिए हैं। बेर, बेल के पेड़, तरी-तरकारी के खेत, इनारे का पानी, रसोईघर, सोने के कमरे, ठाकुर का मंदिर—सजी-सजाई सी गिरस्ती।

पूर्णिमा करीब थी। बड़े बड़े काले पेड़ो की छाया मे चांदनी से सफेद माटी चकमक कर रही थी। उस झलमलाहट म मैं इस उस पेड को याद रखकर घूमती फिरने लगी।

हवा मे उड कर एक अनोखी ही सुगंध आयी जिसने मन को मस्त कर दिया। जी भर भर कर सांस खीचने लगी। उफ, कैसी खुशबू। आवेश से आखें मुंद आने लगी। कौन-सा फूल है? पहचाना-पहचाना-सा लग रहा है, मगर पहचान नही पा रही। फिर सांस खीची—यह तो बिलकुल अपना-सा है, बहुत ही निकट का, लेकिन हैं कहां? जैसे अपने घर की बहू, मगर आठो पहर की नहीं। एक विशेष व्यक्तित्व के आवरण मे ढका हो जैसे। इस उस पेड म खोजा, इस पेड़ तले, उस पेड़ तले गयी—काले पेड ने अपनी घनी अंधेरी गोद मे मुझे निविड़ता से खीच लिया—मगर कुछ पता नही दिया।

कानो मे जोरो की एक गूंज सुनाई पड़ी जैसे पानी भरे बादलो की गरज, जैसे दोनो तट छलकाकर वेग से बहने वाली नदी की उमड़, जैसे झरने का गर्जन, वज्र का निनाद।

डरते हुए कदमो से आगे बढी। चादनी मे यह कैसा दृश्य ! दिग न्तित तक फैला चादनी घुला यमुना का बालुका तट और उस पर लगा है साधुओं का मेला।

दूर तक फैली बालुका राशि गोया पद्मा नदी के गदले पानी का समदर—सामने कूल किनारा नही। उसी की छाती पर धूनो की धीमी जात का महारा लिए अनगिनती साधु निडर बहते जा रहे हैं। मन सन्न रह गया। काहे का यह सफर ? कहा जाकर रूकेंगे ये ? आधी पानी, सूखा, तूफान—किसी बात का कोई खयाल नही। बडे विश्वास के साथ बहाव मे नाव को छोड दिया है। जम, मा की गोद मे लेट कर उसके मुह की ओर ताकते हुए शिशु बिलकुल निडर होकर दूध पी रहा है।

साधुओ की धूनी छावनी छाटी होते-होते कहा—यह उधर आखो की आट म ओझल हो गयी है। जी मे आया, चलू करीब जाकर देखू—इसी रात म, इसी समय, अभी ही।

बडी-दी ने टोका, 'इतनी रात को कहा जाओगी ? कल देखना।'

कल देखूगी दिन की रोशनी म—वह और ही चीज होगी। आज के इस देखने न देखने का वह रहस्य तब तक रह नही जायेगा। न जाने कितना क्या उस साफ प्रकाश मे खो जायेगा फिर क्या उसे ढूढ कर पाऊगी।

कहा, 'बडी दी, यह तो एक बहुत बडा नुकसान है।

—'अच्छा, तो सोच देखू।'

आश्रम का रात का काम जब चूक गया तो उन्होंने जिन पर इस आश्रम की सारी जिम्मदारी है कहा— अगर निहायत ही जाना है, तो इस ब्रह्मचारी को साथ ले लीजिये। किसी ऐसे का साथ रहना अच्छा है, जो राह-बाट जानता हो। और उस तरफ नागाओ की भीड है। जानती हो तो है ये नागा बडे बदमिजाज होते हैं गुसला। बात-बात मे मार काट शुरू कर देते हैं। उनके पास बडे ही पने पने खूखार हथियार होते हैं। इसलिए इन मेलो मे उन लोगो को एक किनारे जगह दी जाती है। आप लोग उस तरफ मत जाइये, उन लोगो से होशियार।'

सब्र नही कर पा रही थी। नागा साधुओ के डर से राख रग की चादर से खूब अच्छी तरह से बदन और मुह ढक लिया, अब यह समझने का उपाय नही रहा कि कौन क्या है।

बालू पर खाली पावों चलने में ही आफियत होती है, लिहाजा जूते घर छोड़ लिये और कमरे में ताला बंद करके निकल पड़ी। स्वामी जी हा-हा करके दौड़े आये, 'राम राम यह क्या कर रहो हैं, पैरों में ठंड लगने से तबीयत खराब हो जायगी। आप को पता नहीं है न कि बालू इस समय किस कदर ठंडी है, सर्दी से कापेंगी। बेला बढ़ने से बालू जैसे गर्म होती है, बेला झुकने के साथ-साथ वैसी ही ठंडा भी होती रहती है।'

लाचार लौटी और कमरा खोल कर जूते पहन लिये।

सेवाश्रम की सीमा के ठीक बाद ही यमुना के बालू का चौर। पहले यमुना यहीं से होकर बहती थी, अब खिसकते खिसकते कितनी दूरी पर कहां जाने बालू की छाती में मुंह छिपा लिया है चांदनी में आसानी से दिखाई नहीं देता।

बांध से नीचे उतर कर एक पांव उठा कर, दूसरा बालू पर रोप कर बालू के चौर से चलने लगी। सच ही उफ किस कदर ठंडी! जो थोड़ी-सी बालू जूते के ऊपर आ-जा रही थी, चमड़े में लगकर सर्दी की उस रात में सिहरा देती थी।

शुरू में ही नाना सम्प्रदाय कतरा कर बचती हुई चलने लगी और आड़ी निगाहों देखती चली। बहुत बड़ी जमात। सब अपने-अपने काम में मशगूल। कोई धूनी पर रोटी सेंक रहा है, कोई पीतल की थाली में आटा गूंध रहा है, कोई उस ठंडे बालू पर ही केहुनी पर सर रखके सो रहा है और कोई-कोई गोलाकार बैठे बातें कर रह हैं—*शास्त्र की व्याख्या चल रही है, और कोई-कोई हाथ में जप की माला* लिए निकट ही ध्यान में बठे हुए हैं। बीच-बीच में बालू में दो-एक सूखी डालें गड़ी। साधुओं में से किन्हीं ने लाई होगी। उन डालों पर उनके काठ के कमंडल, रुद्राक्ष की माला, लाल कपड़े में बंधी छोटी-सी गीता लटक रही है—बुकसेल्फ, वार्डरोब स्टीकस्टैंड—यही सूखी डाल सारा कुछ। एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, सालों ऐसे ही चलता है। घर-द्वार की फिक्र नहीं, सुख की नींद में बाधा नहीं। पाथेय का अभाव नहीं। मजे में हैं।

बड़ी-दी बोलीं—'हम समझते क्या हैं? हमें ज्ञान ही कितना है? नहीं तो, कह क्या सकते हैं कि किस शक्ति की बदौलत, किस महान् उद्देश्य से ऐसा कृच्छ्र साधन करते हैं ये? इनके बीच तो महा महा पंडित भी राख मले बैठे हैं—हम पहचान सकते हैं? है उतनी क्षमता हममें?'

कितने असख्य साधु-सत इकट्ठे हुए हैं यहा ! एक ही साथ इन इतने साधुओं के दर्शन की कभी कल्पना भी नही की थी। यही तो एक देखने की खास चीज है, जो अपनी आखो देखे बिना समझाया नही जा सकता। हरिद्वार मे लेकिन ऐसा नही देखा। शहर म पहाड पर, गगा के किनारे सब बिखरे पडे हैं।

साथ के ब्रह्मचारी ने कहा, 'अभी तो फिर भी भीड घट गयी। और पाच-छह दिन पहले आयीं होतीं तो देखती कि भीड किसको कहते हैं। एकादशी की परिक्रमा समाप्त करके सकडो की तादाद मे रोज ही ये हरिद्वार चले जा रहे हैं।'

नागा-सम्प्रदाय को पार करके हम दूसरे अखाडे मे जा पहुचे। ये भी कपडा का खास व्यवहार नही करते, मगर नागाओ की तरह बिलकुल नगे नही हैं। यहा अवश्य वृदावन के नियम के मुताबिक नागा लोग छोटा-सा कोपीन पहने रहत हैं। कह नही सकती यह नियम कहा से, कब से, कसे चल पडा।

चौर पर थोडी ही दूर-दूर पर टयूबवेल, बिजली की बत्तियो की कतार, रेडियो, लाउडस्पीकर। सरकार का इतजाम—हर समय सफाई होती है, ब्लीचिंग पावडर छिडका जाता है, सखुए के पत्ते, फटे कागज, बादाम के ठोंगे बुहार-बुहार कर मेहतर टोकरियो मे भरते हैं। उसी के साथ-साथ लाउडस्पीकर पर नामगान और गीता पाठ चलता रहता है।

बहुतेर सम्प्रदायो के महतो ने बडे-बडे तबू और छावनी डाली है मनमानी जगह घेर कर—विग्रह को पधराया है, बीच मे शामियाना।

ऐसे ही एक पडाल मे रासलीला हो रही थी। देखा, दर्शक मडली मे साधु लोग ही हैं—भस्म रमाया शरीर, माथे पर जटा की बडी-बडी टोकरी सी।

छोटे-छोटे लडके राधाकृष्ण और आठ सखिया बने थे। जरी, रागे और चुमकी का घाघरा-ओढनी, काले सन की लबी चोटी माथे पर नाक मे बुलाकी, मुकुट पहने—कुर्सी पर बैठी राधा को घेरे आठो सखिया कृष्ण के वियोग मे व्याकुल। सभी सखिया एक दूसरो के बदन म लोटती हुई-सी बैठी केवल 'हा कृष्णचद्र, हा व्रजमाधव, हा गोपीरमण, हा प्राणवल्लभ' कह-कह कर कलेजा मथने वाला निश्वास छोड रही थी और रह रह कर विलाप कर रही थी।

मैं यह देखने के आग्रह से खडी रही कि ये आखिर रो कबतक सकती हैं। उनका विलाप लेकिन खत्म नही हो रहा था। एकरस दु ख देखते-देखते मैंने गरदन घुमाकर इधर-उधर देखना शुरू किया। दूर से भी लोग अपनी-अपनी जगह पर

बैठे लेटे रासलीला देख रहे थे। उधर से कोई जाता-आता और रासलीला देखने मे बाधा पड़ती, तो लोग डाट कर उसे हटा देते।

पडाल से दायें जरा दूर हट कर एक और जमघट। वहा काला वेस्टकोट पहने, जिस पर मेडलो की भरमार थी, एक जादूगर साधुओ को तीर का खेल दिखा रहा था। दशको म से ही हसते हुए दो जने उठकर आए। जादूगर के कहे मुताबिक, दो धागो मे पत्थर के दो टुकडे बाध कर दो ओर खडे हो मुट्ठी दबा कर उसी तरह से हिलाने लगे, जैसे राह घाट मे लडके एक दूसरे का धागा काटने का खेल खेलते हैं। जादूगर ने दूर खडे होकर तीर के एक ही निशाने मे दोनो धागो को काट दिया।

मारे खुशी के साधुओ ने तालिया पीटी। चारों ओर वाह-वाह होने लगी।

अबकी एक छाते मे बाध कर चार तरफ धागे मे पत्थर के चार टुकडे लटकाए गए। उस छाते को ओढकर एक आदमी माथे पर घुमाता रहेगा पत्थर बधे धागे चारो ओर घूमते रहेंगे और जादूगर एक ही तीर से चारो ही धागो को काट गिरायेगा।

गोपियो का रोना धोना खत्म हो चुका। सभी सखिया आपस मे गले लग-लग कर मच से निकल गईं। भला विरह वेदना मे कोई कमर सीधी करके खडी रह सकता है! इधर गोपिया गईं उधर हाथ मे मुरली लिए कृष्ण जी मच पर आए।

मथुरा म राजा होकर कृष्ण जी सुखी नही हैं। जाने किस एक दुख ने उन्हे अकुला दिया है। सिंहासन पर बठ कर अपना सर जो झुकाया सो उठाया ही नही। सभा पारिषदो की विनती बेकार गई। बडी देर तक उसी तरह से रहने के बाद कृष्ण ने उद्धव का बुलाने का हुक्म दिया।

बडी दी ने कहा, 'चला चलो, अब क्या दखोगी ?'

मैंने कहा, उद्धव को इन्होन किस जरूरी काम से बुलाया, जरा यह देख लें। बस, जरा देर और रुको।'

सभा के बीच स ही अनुचर लोग चिल्ला कर उद्धव को पुकारने लगे। जाडे की रात। पाव समेटे बठे हैं सभी। बार-बार उठना सभव है भला! धोती के छोर

से मुह पोछते हुए उद्धव आ पहुचे। कृष्ण को सर झुकाए देखकर बोले, 'बात क्या है, क्यो बुलवा पठाया ?'

कृष्ण ने रोते रोते कहा, 'मुझे गोकुल की याद आ गई।'

उद्धव ने कहा, 'हरि को गोकुल की याद आई। और किसी की या' आती है ?'

रुलाई थमती नहीं। कृष्ण ने कहा, 'व्रज की।'

उद्धव न पूछा, 'व्रज की याद आती है। और किसकी ?

दुख से कृष्ण का सर झुकते झुकते छाती के पास पहुच गया। वह जितना ही कहने लगे, 'मुझे माखन की याद आती है, दही की याद आती है, मा यशोदा की याद आती है बाप नद की याद आती'—उद्धव उतना ही कहने लगा 'और किसी की याद आती है ?'

इतना खोद-खोद कर पूछने से कृष्ण स और रहा नहीं गया। दोना हाथा से उद्धव को गले लगाकर फफक कर रो उठे। दरअसल उन्हे गोपियो की याद आयी है। उफ क्या रोना ! आसू की बाढ बाध तोड बढी। दर्शको म से ही किसी न एक लाल अगोछा फेंक दिया। उद्धव उसी से कृष्ण क आसू पोछने और उन्हें दिलासा देने लगे। कृष्ण जोर जोर से रोने और गाने लगे—

ऊधो क्या रे तुम व्रज कु गमन करो
मेरे बिना राधिका, गोपी, तिनको दुख हरो।

मुह पर आचल डालकर ही ही हसन जा रही थी। ठिठक गई। अलक्ष्य मे मुह पर मानो कोडे की मार पडी।

जरा ही दूर पर धुधली रोशनी मे एक खूटे से टिक कर बठे एक बहुत ही बूढे याली फटा न ओढे दोनो घुटना मे मुह गाड कर बडे ध्यान से रासलीला देख रहे थे और उनके झुर्रिया वाले गालो पर दोनो आखो क आसू की अविराम धारा बह थी।

मैंन कहा, 'चलो बडी-जी, अब लौट चलें।

— अभी उधर तो बहुत कुछ देखना रह गया।

मैंने कहा, 'रहने दो। कल देखा जाएगा।'

फिर बालू से चलकर धर पकड कर बाध पर पहुची। सेवाश्रम का दरवाजा

खुला ही था। फिर भुनगा चल रही थी। कुए के पास वाले बंधे हुए रास्ते पर पाव रखते ही पिछली रात वाली उस महक ने सारी भावनाओं को दबा दिया। नजर उठाकर देखा, नीबू का छोटा-सा पेड़ सादे-सादे फूलों से मोती का फुहारा सजाए हुए है।

कॅव, कॅव, कॅव। रात के अंतिम पहर से यह बोली शुरू हो गयी—ठीक जैसे कान के पास। नींद की क्या मजाल। घना अंधेरा था फिर भी उठ बैठी। गिरहान की ओर की खिड़की के पल्ले खोल दिए। उस ओर घनी झाड़ियों का जंगल-सा। उन्हीं सब की डालों पर कुछ मोर मोरनी इधर से उधर कूद रहे थे और चीख रही थी—कॅव कॅव, कॅव। कितनी कर्कश आवाज! इतनी सुंदर चिड़िया की यह कैसी आवाज! यह विषमता जी को बुरी लगती है। मन मानना नहीं चाहता। अच्छे गायक के गले से कटु बातें सुन कर कितनी ही बार कितनी मायूस हो चुकी हूं। सोच ही नहीं सकती जो एस सुकंठ का अधिकारी है जिसकी आवाज में ऐसा मधुर बरसता है उसमें इतना जहर कैसे रह सकता है? ऐसा भी हो सकता है! जरूर हो सकता है, वरना इन्हीं आंखों यह देख कैसे पाती हूं। सुनती तो हूं कि विश्व प्रकृति में अगल-बगल दो विपरीत धर्म चलते हैं। यह शायद उसी नियम का एक रहस्य है।

बड़ी-दी पहले ही जग चुकी थी। जगना भी क्या कहूं सोई ही कब कि जगेंगी। रात में करवट बदलते हुए जितनी भी बार मैंने आंखें खोलीं देखा कि बड़ी-दी खाट-से लगी खिड़की के सींखचे को पकड़े स्थिर बैठी हैं। मैंने उन्हें रात में ऐसे अकेले जगते और भी बहुत बार देखा है। स्वच्छ, सन्नाटा रात में आसमान भर सितारों को टटोलती हुयी कौन-सी खोयी निधि को खोजा करती हैं वह? जो लोग एक बार चकमा देकर गायब हो चुके हैं वे क्या अब सहज ही पकड़ में आएंगे भला!

बड़ी-दी के आंख मुंह में उनींदी रात की थकावट। जानती हूं मैं फिर भी पूछा, हुआ क्या था बड़ी-दी? नयी जगह में सोने में असुविधा हुई?'

—'नहीं-नहीं। बड़ी अच्छी चांदनी रात थी, समझने में धोखा होता था कि चान्दनी है कि दिन की रोशनी। वही देख रही थी बैठी-बैठी।'

—'यही देखने में सारी रात बैठकर गवा दी?

बड़ी दी का हसता-सा मुखड़ा उदास हो आया। बोली, 'कोशिश तो लाख करती ▮ रानी, नींद आती कहा है ? मेरी रातें इसी तरह से गुजरती हैं। लगता है बिछौने पर अगारे बिछे हैं।'

बड़ी-दी को सोचती हुयी बाहर निकली। सीधे यमुना के किनारे चली आयी। कल रात दिशा नहीं ठीक कर पायी थी। आज अब कोई धोखा नहीं रहा, पूरब क्षितिज के काले परदे को हटाकर धीर धीर प्रकाश का परस पड़ने लगा था। बालू का कोर कोर उस आभा से थोड़ा-थोड़ा करके प्रकाशमान होता आ रहा था। दूर के धुधले पेड़ो की चोटिया हल्की-स्याही से आकी-सी जाने लगी। सफेद कुहरे के भीतर से सादे बालू पर काले-काले साधु लोग चल फिर रहे थे, जसे बड़े गृह म लिए घर की दीवाल पर चीटे किलबिल करते हैं। कोई साधु हाथ-मुह धो रहा था कोई लोटा त्रिशूल माज रहा था, कोई ट्यूबवेल म नहाकर बदन म राख मल रहा था। सभी अपनी धुन मे थे। आने वाले दिन के स्वागत के लिए सब जल्दी जल्दी तैयार हो रहे थे।

पूव दिशा म आसमान की आभा मे अब रग निखरा। वह रग छिटक कर पड़ा यमुना के जल मे बालू पर, साधुओ के बदन म, इस पार के लबे पेड़ो की फुनगियो पर मदिर शिखर के सोने के कलश पर। देखते ही देखते उस रग की छटा स आखो के सामने ही होली की उमग शुरू हो गयी। मैं विह्वल हो उठी। अब तक इतना रग छिपा कहा था ?

बड़ी दी बोली उधर देखो अबीर का वह थाल।' देखा। पूव की ओर क्षितिज पर रग की उस छटा म इसी मौके स गोल टुकटुक सूरज उगता जा रहा है।

सवेर के स्नान का समय हो गया। बड़ी दी लक्ष्मी विलास की शीशी हाथ म लेकर एक काठी की खोज म बाहर निकली। सर्दी के मारे जमे हुए तेल को खुरच कर निकालना होगा—आखिर इतना सवेरे उस गलाने के लिए धूप कहा मिलेगी ?

कमरे मे आकर तब मे चौकी पर हाथ पाव समेटे बैठी थी। बड़ी-दी सो नाछोड़ बदा। यमुना मे नहाना ही पड़ेगा। जोकि कल रात ही लेटे लेटे मैंने सुना कमरे के एक कोने स व्रजरमण कह रहे थे सोने से पहले—जमना म क्या त. विराट बड़े बड़े कछुए भरे है किलबिल करते रहते हैं। उन्हे हाथ से हटा-हटा कर नहाना पड़ता है। कछुए का काटना बाप रे! छुटपन म नानी की जुबानी सुना

था, कछुआ अगर एक बार पकड ले तो फिर छोडने का नही, जब तक कि आसमान मे गाज न कडके। कछुए की गरदन भी काट डालिए तो दात पर दात बैठा रह जाता है अत अत तक हा नही होता। यहा भी जो कछुए न किसी को काटा नही है, सो नही। लेकिन समझ-बूझ कर पापियो को ही काटता है। और कछुआ शायद लाश खाता है। एसा सुनन म आया है कि जमना के किनार कोइ चिता जलती है तो कछुए मुह म बुलबुले छोडकर चिता को बुझा दत हैं। लाश खाने का ऐसा लोभ होता है। इतना कुछ सुनने के बाद भी किसी की हिम्मत पड सकती ह ? मगर तो भी बडी-दी न एक नही सुनी। साडी-तौलिया हाथ मे देते हुए बाली उठो।

सोचा, उस जमाने म यमुना म कछुआ शायद था ही नही। होत तव तो जटिला कुटिला बार-बार राधा को खुशी खुशी यमुना भेजा करती। राधा के बार म यो लिहाडी नही लिया करती।

बडी दी ने कहा, 'ह इतने इतन लोग नहात ह किसी को कुछ कही हाता—बस तुम्ह ही—'

मैंने कहा, उसमे भी तो आफ्त है। कुछ न हो न हो। मगर कुछ हुआ कि कहोगी, पापी थी इसलिए —

ब्रजरमण ने हिम्मत दिलाई 'भयभीत न होइए। पानी म स्थिर खडे रहन से ही कछुए पकडते हैं नही तो कुछ नही करत। ऐसा ही तो सुना है। करती क्या लाचार गमछे की पोटली हाथ मैं लेकर बडी-दी क पीछे हो ली।

आज तक यमुना का जो रूप आखा म था, उससे आज कुछ भी नही मिलता। न तो उसम राधा का मन पिघलाने वाले नील रग की वह बहार है न ही गगा की उद्दाम गति मे वह उन्मत्त भाव ही है जो देत देते चलती है और चलत चलते सामने के सब कुछ को समेट लिए जाती है। यह तो जसे छूछी, वचित भीत प्रेयसी हो। मुरझाये मुह से धीमे गले से कानो-कानो अपने बीते दिनो के रूप और जवानी की गाथा गाकर सुनाती है। कोई कल्पना से सतुष्ट रहता है, कोई सहानुभूति से मरता है। नही तो आज की यमुना की यह क्या शक्ल है ! अगाध पानी म राधा का घडा बह जाता है—वह कहा है आज ? बीच यमुना म घुटने भर पानी म डुबकी लगाकर लोग निकल आत हैं।

बड़ी-दी के आदेश के अनुसार सूखे बालू पर कपड़े-लत्ते रखे, यमुना को स्पर्श करके माथे से लगाया तब पानी में पैर रखे। हाय दैया ! यह क्या है ? गंगा में मैंने मछलियों का पत्थर-स्तूप देखा था यहां देख रही हूं कछुओं का काला पहाड़। मोटी मोटी गरदन बढ़ाकर वे आगे बढ़ रहे हैं पीछे हट रहे हैं। देखते ही मैं उछलकर तीन कदम पीछे हट आयी।

अब करूं तो क्या ? एक डुबकी तो आखिर लगानी ही है मगर उनके बीच जाऊं तो किस साहस से ? व्रजरमण ने कहा है 'मुसीबत है घिरे खड़े रहने में।' सिलचर के आलेक-बाबा की याद आयी। अलख निरंजन थे, लोग इसी नाम से पुकारा करते थे उन्हें। वह सारे बदन की घुंघरू घंटी को झुनझुन टुन टुन बजाते हुए भीख को निकलते थे—रुकते नहीं थे कहीं।

देर करने से कोई लाभ नहीं। 'दुहाई आलेक बाबा' कहकर छपाछप पानी छिड़कते हुए घुटने नचाकर 'लेफ्ट राइट' करते किसी तरह से हाथ भर पानी में एक डुबकी लगाकर किनारे पर आ गयी। आज अब और किसी के नाम से डुबकी नहीं उनकी बात याद नहीं आयी। नहाने के बाद देव दर्शन को निकली। रास्ते में एक पंडे ने पीछा पकड़ा। कहा सामने के मंदिर को छोड़कर दूर नहीं जाना चाहिए। चलिये, हम एक-एक करके सबको दिखाएं।

पहले रंगनाथ के मंदिर गयी। दक्षिण के बड़े प्राचीन और प्रधान मंदिर श्रीरंगम की नकल पर इसे बनाया गया है। विशाल फाटक। मंदिर के सामने ही सोने का एक बहुत ऊंचा स्तंभ। पंडे ने कहा 'इसे बनाने में साढ़े बारह मन सोना लगा है। तांबे पर सोने की पत्तरों से शुरू से अंत तक मुढ़ा हुआ गरुड़-स्तंभ। लेकिन लोग इसे सोने का ताड़ का पेड़ कहते हैं। इसी ताड़ के पेड़ को दखने के लिए यहां यात्रियों की भीड़ होती है। आज ही सबेरे झकमक नई मोटर से दिल्ली के यात्रियों का एक दल आया। एक ही दिन ठहरेंगे वे। मैंने कहा 'वृंदावन में एक दिन रहकर क्या देखेंगे आप लोग ? जो हाल देख रही हूं दौड़ दौड़कर भी देखूं तो कई दिनों में देखना पूरा नहीं कर पाऊंगी। उन लोगों ने कहा, 'सब तो क्या देखना, मानसिंह का मंदिर शाहजी का मंदिर और वही जो जिस मंदिर में सोने का ताड़ का पेड़ है बस वही देखकर लौट जाएंगे।'

सूरज की किरण सोने के उस ताड़ के पेड़ से छिटकी पड़ ... ी थी। ताकने में आंखें चौंधिया जाती। ऊपर तीन परत सोने के पत्तर ... एक, दो

तीन, चार—आठ-दस—और गिना नहीं जाता। मैंने थककर आँखें बंद कर लीं। बड़ी-दी ने कहा, 'शायद सोलह होंगे।' दादा ने कहा 'बारह हैं।'

शोर मचाते हुए हड़बड़ाकर सब दौड़े, फाटक खोला जा रहा है अब देवता दर्शन देंगे। चौरासी घंटे लगे विशाल दरवाजे को खींचकर खोलने और बंद करने में घंटे बज उठते—ठन्-ठन् ठन् ठन्। भोग-आरती के लिए दरवाजा फिर तुरंत बंद हो जायेगा। दर्शन पिपासुओं से नाट मंदिर भर गया, ठसाठस धक्कापेल ऐसे में रंगनाथ को आया देख पाना ही बड़े सौभाग्य की बात है।

रंगनाथ को देखकर मंदिर की परिक्रमा करने के लिए खुले आसमान के नीचे निकल आयी। मंदिर की वास्तुकला को बाहर से देखने में लगता है, आगे पीछे कैसा तो उलटा-पलटा है। जिसे प्रवेशद्वार होना चाहिए था, उससे होकर लोग बाहर निकला करते हैं और अंदर जाते हैं उसके मुकाबले छोटे दरवाजे से। यह कैसी अजीब बात !

दादा ने कहा, 'तो चलते चलते कहानी सुनो। अपने इष्ट देवता रंगनाथजी को भक्त नामदेव रोज आकर भजन सुनाया करते थे। एक दिन मंदिर में बेहिसाब भीड़ थी। इस भीड़ में जूते बाहर रखकर जाइए तो खो जाने की शंका। मगर मंदिर में जूते लेकर जाने की मनाही है। नामदेव करें तो क्या ! फटे जूतों की ममता ही क्या कम थी ! इधर भजन सुनाने का समय बीतता जा रहा था। बहुत-बहुत सोच विचार के बाद जूतों को कमर में बांधकर वह मंदिर में गए और गाने लगे। नामदेव को तो आखिर तुम लोगों की तरह इतने कपड़े-लत्तों की बला नहीं थी—भीख से, गीत गाकर उनका गुजारा चलता था। हुआ ऐसा कि फटे कपड़े की किसी फांक से जाने जूते का थोड़ा बहुत दिखाई दे रहा था। एक आदमी की नजर उस पर पड़ गयी। फिर क्या था ! सब लोग बिगड़कर दौड़े। गरदनिया देकर नामदेव को मंदिर से बाहर निकाल दिया। भाव में विभोर नामदेव यह समझ नहीं सके कि ऐसा क्यों हुआ ? भगवान को भजन सुनाने में ऐसी गत क्यों ? उन्होंने पंडे-पुरोहितों से आरजू मिन्नत की। मेरा भजन तो अभी पूरा नहीं हुआ है पूरा कर लेने दीजिये। लेकिन उनकी विनती सुनता कौन है ? अंदर जाना चाह कि गरदन पर हाथ। सामने की ओर से अंदर जा ही नहीं पा रहे थे। मगर यह कैसे हो सकता है कि प्रभु को भजन न सुनाया जाय ? सो हाथ में इकतारा लिए नामदेव मंदिर के पीछे की ओर चले गए। वहां खड़े होकर वह

तन्मय होकर गीत गाने लगे और रोना आया कि आंसू से उनकी छाती भीग जाने लगी—प्रभु आज इस असन्तुष्ट क्यों हुए ! लेकिन गजब ! लोगों ने देखा, मूर्ति का मुंह उधर को फिर गया। रंगनाथ जी पीछे की ओर घूमकर नामदेव का भजन सुन रहे हैं। तभी से रंगनाथ के मंदिर के सामने का हिस्सा पिछवाड़ा हो गया और पिछवाड़ा अगला हिस्सा हो गया है। रंगनाथ के प्रांगण में बाईं ओर छोटे छोटे मंदिर—भक्त स्वामी लोगों की स्मृति। हर मंदिर के सामने एक एक पंडा। पैसा फेंक फेंक कर दर्शन न करें तो यात्रियों पर मुसीबत। सादे काले पत्थर की छोटी छोटी मूर्तियां, मंदिर के दरवाजे के ऊपर नागरी अक्षर में परिचय लिखा। पंडा जैसा जी में आता, नाम बताकर पैसे उठाकर टेंट में थाम लेता। एक मंदिर में हैं श्री भट्टनाथ स्वामी, विस्वेक्सेन स्वामी और बबर स्वामी। पंडे ने हाथ से दिखाते हुए कहा— 'ये तीन हैं, राम-लक्ष्मण, सीता। तीनों पर एक एक पैसा चढ़ाइए।'

इसी तरह भक्तिसार महायोगी, भूतयोगी मरयोगी स्वामी आदि दशरथ, कौशल्या, भरत शत्रुघ्न बन जाते। और, रामसीता हो जाते कुरश, लोकाचार स्वामी।

बड़ी-दी ने डांट बताई अरे, लिखा ही तो है, फिर नाहक ही पूछ-पूछ कर मरती क्या हो कि यह कौन हैं और वह कौन हैं। लो प्रणाम करो और चरणामृत लेकर माथे से, छाती से लगाओ।'

प्रांगण में पक्के का बंधा एक कुंड। ब्रजरमण ने बताया, 'इसी में गज ग्राह की लड़ाई होती है।' 'कहां कहां करके दौड़ पड़ी। हरा, जमा जमा सा पानी, नीचे तक नजर आना मुश्किल—'यहां गज-ग्राह कहां?' पंडे ने बताया, 'अजी, अभी कहां? हर साल उस विशेष अवसर पर कागज का गज ग्राह बनता है। उसके बाद उन्हें दो नावों पर लेकर दो दल उनको लड़ाई करते हैं। लड़ाई होते-होते जब दोनों में से कोई हारेगा नहीं तो अंत में गरुड़ पर सवार होकर रंगनाथ जी आएंगे और चक्र की पैनी धार से ग्राह का सर काट डालेंगे। उस समय बेहद भीड़ होती है, मेला लग जाता है, जगह के लिए छीना झपटी होती है।'

मंदिर के पीछे वाले तोरण के पास तिमंजिले मकान जितना ऊंचा एक गरज। सामने मिट्टी की दीवाल से बिलकुल बंद।

—है क्या यह ? यों बंद ही क्या पड़ा है ?

पंडे ने कहा, 'उसके अंदर रथ है। साल भर रथ को इसी तरह बंद करके रखते हैं। रथ के समय दीवाल तोड़कर निकालते हैं। नहीं ऐसा करें तो सारे तीर्थ यात्री देख लेंगे, ऐन रथ के समय भीड़ नहीं होगी, कहेंगे, रथ तो देख ही चुके हैं।

मानसिंह का मंदिर। नीचे से देखने से लगता है लाल पत्थर का पुराना महल हो कोई। अलिंद, बरामदा, खंभे प्रकोष्ठ कितना ही है। जमीन पर से चौड़ी सीढ़िया घाट मंदिर तक चली गई हैं। कुल मिला कर पत्थर की चुनाई का कितना फबता हुआ नक्शा!

यही रूप गोस्वामी के गोविंद का वह पुराना मंदिर है। रूप की जैसी साध थी, उसी के अनुसार मानसिंह ने बनवा दिया था। कितना सुंदर और कितना ऊंचा?

पंडे ने कहा 'यह और भी ऊंचा था। पहले इस मंदिर के शिखर पर रोज बत्ती जलती थी। अमावस्या की एक रात दिल्ली में अपने कमरे में बैठ कर औरंगजेब ने वह रोशनी देखी। बोले, वह किसकी रोशनी है? मेरे महल से भी ऊंचे किसी की बत्ती जलेगी, यह हिम्मत? उन्होंने तुरंत फौज को हुक्म दिया, जाओ, उसे तोड़ दो, लूट लो। इधर जयपुर के राजा ने भी उस रात सपना देखा कि गोविंद जी आकर कह रहे हैं, मुझे जल्द लिवा लाओ। वे लोग मंदिर को तोड़ने के लिए आ रहे हैं। राजा ने दूसरे ही दिन आदमी भेजा और गोविंद जी, गोपीनाथ, मदनमोहन—तीनों को लिवा गए। बादशाह के सैनिक पहुंचे, तो देखा कि मंदिर खाली पड़ा है। और, मंदिर के शिखर को तोड़ फोड़कर, तहस नहस करके वे लौट गए।'

टूटी हुई हालत में ही यह मंदिर कितना ऊंचा लगता है पहले न जाने कैसा था!

दादा ने कहा, 'सुना है पहले तो इसके ऊपर चौमंजिला जितना ऊंचा शिखर था।'

नाट मंदिर में जाकर ऊपर की ओर निहारा—पूरी छत में गुंबज की तरह पत्थर का पद्म उसी में झूल रहे थे—। बड़ी-दी से कहा, 'देखो देखो मधुमाछी के छत्ते।' गरदन घुमाकर देख करके वह बोली सच तो, कितने छत्ते हैं। सुरक्षित जगह चुनकर बनाया है।'

मधुमाछी नहीं, असल में चमगादड़ थे। दिन में उस तरह से लटक रहे थे। इतनी ऊंचाई पर वह सब मधुमाछी से ही दिखाई दे रहे थे। बड़ी दी के जरिए यह परख लिया कि अचानक सबका वैसा ही लगता है या नहीं।

मंदिर के भीतर गोविंदजी का विग्रह। ये असली गोविंदजी नहीं। चूंकि मंदिर को खाली नहीं रखना चाहिए इसलिए बाद में प्रतिनिधि की स्थापना हुई। असली गोविंदजी तो जयपुर में हैं। गोविंदजी के दर्शन करके बाहर की ओर मंदिर से सटी एक पतली-सी सीढ़ी से व्रजरमण हम एक छोटे-से दरवाजे के पास ले गए। यहां शायद विशेष कुछ दिखाएंगे माना। वहां जाते ही समझ गई यहां पर यात्री लोग खास आते नहीं हैं। ठीक से जानी हुई न हो तो यह जगह नजर नहीं आती। कोई दो वैष्णव वहां बैठे आटे की लोई बना रहे थे एक आदमी चूल्हे पर कड़ाही चढ़ाकर तरकारी पका रहा था—भोग के लिए शायद। हम लोगों के जाने से वे जरा झुंझलाए ही। व्रजरमण के कातर इशारे से एक ने आटा समेत काठ की बड़ी कठौती को हटाकर जाने की जगह बना दी। देखा वहां पर सकरी सुरंग सी अधूरी सीढ़ी है। हाथ में मिट्टी का दीया लेकर उसकी रोशनी में धीरे धीरे सीढ़ी उतरते हुए अंत में जा कर रुकी। एक छोटे से हौज जैसी थोड़ी-सी चौकोर खाली जगह। कच्ची मिट्टी सीलन सी धुकधुक जल रहा था एक दीया, काली माटी पर दो-चार सादे फूल पड़े, किसी ने शायद पूजा की हो किसी समय।

व्रजरमण ने कहा यही मामाटीला है। यहीं पर गोविंदजी प्रकट हुए थे।'

बड़ी दी ने कहा, 'कैसी अनोखी महिमा है! कोई जानता नहीं था कि यहां क्या है। रोज सवेरे एक कामधेनु आकर ठीक गोविंदजी के माथे पर खड़ी होती थी और उसके थन से अपने-आप दूध टपकता था। सपना पाने के बाद रूप जी ने जब उनसे पूछा गोविन्दजी आप जो यहां हैं, तो खाते क्या हैं? गोविंद ने कहा, 'रोज कामधेनु का दूध पीता हूं। और, उसी कामधेनु के दूध से भीगी हुई जमीन की ही तो निशानी उन्होंने रूप को बताई। कहकर बड़ी-दी भीगी माटी पर हाथ फेरने लगीं।

मामाटीला से बाहर आ रही थी कि गोविंद मंदिर के दक्खिनवाले छोटे-से दरवाजे को खोल कर एक वैष्णव ने हसते हुए हाथ हिला कर कहा

'कृष्णनाम कृष्ण गुण, कृष्ण लीला वृंद।
कृष्ण-स्वरूप सम सब चिदानंद॥'

श्री भगवान की नाईं उनका नाम और लीलास्थली भी नित्य है।

दा लीलाओ का कभी नहीं परिच्छेद।
आविर्भाव तिरोभाव यही कहे वेद॥'

कभी आविर्भाव कभी तिरोभाव, नाश नही है। लोक लोचन के गोचरीभूत होना न होना, बस, यही भेद है।

दरवाजे के चौखट के पास मुह रखकर दो एक दिन का धौला एक बछड़ा बैठा था। बोलते-बोलते उस बछड़े को उठा कर एक ओर हटाते हुए वैष्णव हमारे पास उतर आये। बोले, 'ब्रजनाम ने पत्थर की तीन मूर्तियां बनाई थी। उषा—ब्रजनाम की मा—ने कहा—बेटे, मुझे कृष्ण की मूर्ति बना दो। ब्रजनाम कृष्ण की मूर्ति बना कर ले आये। मा बोली—इस मूर्ति का मुखडा तो ठीक बना है, और कुछ ठीक नही बना। वही मूर्ति है गोविंद की। ब्रजनाम फिर से मूर्ति बना लाये। कहा—देखो तो मा, इस बार ठीक बनी कि नही। मा ने कहा—बेटा, इसके दोनो चरण तो ठीक बने हैं दूसरे अंग ठीक नही बने। वही मूर्ति है—मदनमोहन। ब्रजनाम फिर एक मूर्ति बनाकर ले आये। कहा—अच्छा इस बार देखो तो मा, तुम्हारे मन लायक बनी कि नही। मा बोली—हां बेटे, इस मूर्ति का वक्षस्थल ठीक बना है। ये हुए गोपी नाथ। उन्ही गोविंद जी का यह मंदिर है। रूप, हा राधे, हा कृष्ण करते हुए गेते रहे। सपने मे रूप को कृष्ण ने दर्शन दिये। बोले—रूप, ब्रजनाम के बनाये गोविंद रूप म मे वृंदावन म प्रतिष्ठित हुआ था। तुम्हारे बहुत निकट ही गोमाटीला की माटी के नीचे मैं हू। तुम मुझे निकालो। तुम्हारे हाथ की सेवा की मैं दिनो से प्रतीक्षा कर रहा हू। उसके बाद रूप मूर्ति को निकाल लाए और उसकी यहा स्थापना की। बाद म जयपुर से लाल पत्थर मंगवाकर मानसिंह ने यह विशाल मंदिर बनवा दिया था।'

दादा ने कहा, चलिये वही बैठकर आप से कुछ सुनें।

वैष्णव हम मंदिर के भीतर ले गये। एकदम मूर्ति के सामने। एक कंबल

डाल दिया। हम लोग उसपर बैठ गये।

वैष्णव का नाम था भगवानदास। उन्होंने कहा, 'श्रीकृष्ण के विहार के बाद काल के कराल गाल में सब विलीन हो गया। वृंदावन की महिमा का उल्लेख सिर्फ शास्त्रों में ही रह गया। उसके बाद नदिया में शचीनंदन के रूप में व्रजेंद्रनंदन ही अवतीर्ण हुए। उन्होंने वृंदावन को प्रकाश में लाया। उन्होंने एक-एक करके भक्त गुसाइयों को यहां भेजा—भेजा लीलास्थनों की खोज के लिये। स्वयं भी आये, लेकिन ज्यादा दिनों तक रह नहीं सके। रूप सनातन पर भार देकर नीलाचल चले गये।

'उस समय वृंदावन में जंगल भरा था, हलचल नहीं थी। पेड़ तले बैठ कर रूप सनातन भजन करने लगे। वृंदाजी से उन्होंने प्रार्थना की 'वृंदावन को आपने अपने हाथों सवारा था, उसे फिर से वैसा ही कर दीजिए।

'सत्यवती राजकुमारी—यही वृंदा। कृष्ण की कृपा-कोर के लिए वृंदा ने तपस्या की। कृष्ण संतुष्ट हुए। कहा वर मांगो। वृंदा ने कहा—प्रभो आपकी सेवा के लिए मैं एक वन बनाऊंगी। उस वन में एक ही समय छहों ऋतुएं रहेंगी। तरह-तरह के फल फूल रंग बिरंगी चिड़िया की कल-काकली कल्पवृक्ष, कल्पलता, कामधेनु मणि-माणिक जड़े महलों से वह वन भरा पूरा रहेगा। आप मुझे यही वरदान दीजिए कि आप अपनी परम कांता के साथ नित्य उस वन में विहार करेंगे।

भक्त के अधीन भगवान—उन्होंने कहा—तथास्तु, तथास्तु। तथास्तु लेकिन वृंदा, मैं तुमसे एक बात पूछूं, उस वन में मैं अपनी कांता के साथ नित्य विहार करूंगा, उससे तुम्हें क्या लाभ होगा ?

'वृंदा ने कहा—भगवान मैं नित्य युगल-छवि के दर्शन करूंगी

निज देह-सुख नहीं होता गोपिका के
कृष्णसुख में ही वह सब सुख आके।

आप लोग एक साथ विहार करके जितना आनंद उठाएंगे, उससे सौ गुना ज्यादा आनंद मैं युगल मूर्ति के दर्शन से पाऊंगी। एक वरदान और चाहिए प्रभु, आप कहिये कि यह वन छोड़ कर आप कहीं नहीं जाएंगे।

'कृष्ण ने कहा दिया वरदान वृंदावन परित्याज्य पदमेकं न गच्छामि।

भक्त की इच्छा पर ही कृष्ण का तब अवतार हुआ। वृंदा के लिए कृष्ण अपनी मधुर लीला प्रकट करने के लिए पधारे। चैतन्य भागवत मे आया है

आज भी तो नित्य लीला करते गोरा राय,
कोई - कोई भाग्यशाली उसे देख पाय।

'मैं अभागा हू। ग्यारह साल की उम्र मे वृंदावन आया। पैंसठ साल हो गये। उनकी कृपा के लिये आखें बिछाये हुए हू। जाने कब उनकी दया होगी, कब मैं उनके दर्शन पाऊगा।' कहते-कहते भगवान दास के झर झर आसू बहने लगे। रोते रोते ही बोले

विषय छोड कब स्वच्छ होगा मन,
कब मैं देखूगा, वह वृंदावन?

'ब्रह्मसंहिता' का कहना है, जिस वृंदावन की काता स्वय लक्ष्मी हैं, कात जहा के परमपुरुष श्रीकृष्ण हैं, जहा के पेडो की डालें कल्पतरु हैं, जहा की भूमि चितामणिमय है, पानी जहा का अमृत है, बात ही जहा गीत है, मामूली चलना ही जहा नृत्य है, बासुरी—कृष्ण की मोहन मुरली ही जहा प्रियसखी है—उस वृंदावन को क्या प्रेम की आखो के सिवाय देखा जा सकता है।

प्रेम चक्षुओ देखे उसका स्वरूप प्रकाश।

'हाय, मेरे तो वह प्रेम-चक्षु आज भी नही।'

आखें पोछकर नजर झुकाकर भगवान दास ने अपने को शात किया।

दादा सहज ही किसी को पाव छूकर प्रणाम नही करते। जाने कितनी बार बडी-दी को फटकारा है, 'राह-बाट मे जिसे भी पाती हो, उसके पाव क्यो छूती हो? पाव छुए बिना क्या भक्ति नही दिखायी जा सकती?' उसी दादा ने दोनो हाथो से भगवान दास के चरणो की धूल लेकर माथे से लगायी। बोले, 'आज अब चलते हैं। फिर किसी दिन आपके पास आकर बैठने की इच्छा रही।

रास्ते मे आयी तो मैंने कहा, 'सब कुछ तो ठीक है पर इतनी जोर स रोते क्यो है?' दादा ने कहा, 'श्रीमद्भागवत मे लिखा है भगवान का नाम सुनकर किसी की आखो से आसू टपके तो वह बडे पुण्य का फल है। बिना पुण्यफल के ऐसा नही होता।'

व्रजरागण बोले, 'श्री वृंदावनधाम में भजन परायण भागवत के मुंह से श्रीराधा-गोविंद की महिमा सुनना बड़े ही भाग्य की बात है। प्रभु की अशेष अनुकंपा के बिना यह संभव ही नहीं।'

बड़ी-दी ने कहा, तुलसीदास जी के रामचरितमानस में पढ़ा नहीं है। उन्होंने लिखा है, विभीषण हनुमान से कह रहे हैं—

अब मोहि भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।

हे हनुमान, अब मुझे भरोसा हुआ, अब मेरे उद्धार में कोई संदेह नहीं। क्योंकि आप जैसे भागवत से मेरा मिलन हुआ।

'हरि की कृपा के बिना हरि भक्ति संभव नहीं। साधन के संबंध में इन्हीं तुलसीदास जी ने ही एक जगह लिखा है—

बिन सतसंग न हरिकथा, तेहि बिन मोह न भाग।
मोह गए बिनु रामपद, होई न दृढ़ अनुराग।।

'सत्संग के बिना हरिभजन नहीं, और हरिकथा सुने बिना मोह नहीं दूर होता। और, मोह दूर हुए बिना राम के चरणों में भक्ति नहीं हो सकता।'

रूप और सनातन दो भाई थे। गौड़ के नवाब हुसेन शाह के दरबार में सनातन प्रधानमंत्री थे रूप थे अवर्सचिव।

एक ही समय में दोनों भाइयों के मन में प्रबल उत्कंठा जगी। मौका पाकर रूप तो संसार छोड़कर वृंदावन आ गए सनातन को रुक जाना पड़ा।

सनातन का राज-काज में जी नहीं लगता। न्याय उन्हें छोड़ नहीं रहे थे। बीमारी का बहाना बनाकर सनातन घर ही रहते, पंडितों के साथ बैठकर भगवत-तत्व रस का पान करते। नवाब ने वैद को भेजा। वैद को सनातन के शरीर में कोई बीमारी नहीं मिली।

नवाब को शुबहा हुआ। एक दिन अचानक वह खुद जा पहुंचे। बोले, 'तुम मेरे दाएं हाथ हो। तुम्हारे बगैर राज-काज चलना नामुमकिन है। तुम तबीयत की नासाज़गी का बहाना बनाकर भाग जाना चाहते हो? इरादा क्या है तुम्हारा?'

सनातन ने नवाब से मन की खोलकर कही। नवाब लेकिन राजी नहीं हुए। बोले, तुम्हारे बिना मेरा काम नहीं चलने का।'

सनातन ने कातर होकर आरजू मिन्नत की 'जी, मुझसे अब यह काम काज नहीं हो सकता।'

नवाब को जिद चढ़ गयी। उन्होंने सनातन को पकड़कर कैदखाने में डलवा दिया। बड़ा सख्त पहरा तैनात कर दिया।

इसी बीच राजा प्रतापरुद्र से नवाब की लड़ाई छिड़ गयी। नवाब लड़ाई में उड़ीसा चले गए। इसी मौके का लाभ उठाकर काफी रुपये घूस देकर सनातन कैदखाने से निकल भागे। बिना कुछ सबल साथ में लिए मात्र एक नौकर के साथ बीहड़ पहाड़ी रास्ते से वह काशी की ओर चल दिए। दिनभर चलते रहे रात को एक भौमिक के यहां टिक गए। भौमिक ने उनका इतना ज्यादा आदर सत्कार किया कि सनातन के मन में संदेह हो गया। उन्होंने नौकर को बुलाकर पूछा, 'तुम्हारे पास कुछ रुपये पैसे हैं क्या ?'

नौकर ने कहा, 'जी, रास्ते में कहीं कभी जरूरत पड़ जाय, इसलिये मैं सात मुहरें छिपाकर ले आया हूं।

सनातन नौकर से नाराज हुए। बोले 'मैंने तुम्हें बारहा मना किया कि साथ में हरगिज कुछ मत लेना। फिर तुम इस काल को अपने साथ क्यों ले आये ? खर मुहरें मुझे दे दो।'

सनातन ने वे मुहरें भौमिक को देते हुए कहा मेरे पास कुल पूंजी यही है। इन्हें तुम ले लो और मुझे यह पहाड़ी इलाका पार करवा दो—पुण्य और अर्थ, तुम्हें दोनों ही मिलेगा।'

भौमिक ने हंसते हंसते कहा, 'मेरे पास एक ज्योतिषी है। उनसे मुझे पहले ही यह मालूम हो गया था कि तुम्हारे पास सात मुहरें हैं। सोचा था, रात में तुम दोनों का सफाया करके मुहरें मार लूंगा। मगर तुम बुद्धिमान हो, तुमने मुहरें पहले ही दे दी। मैं अब ये मुहरें नहीं लूंगा। अर्थ को छोड़कर केवल पुण्य के लिए ही मैं तुम्हें पहाड़ पार करा दूंगा।'

सनातन ने कहा, 'भाई मेरे अगर ये मुहरें तुम मुझसे नहीं लोगे, तो और कोई मुझे मारकर ये मुहरें ले लेगा। लिहाजा इन्हें स्वीकार करके मेरी जान बचाओ।'

सनातन पर्वत को पार करके हाजीपुर पहुंचे। वहां से उन्होंने एकमात्र सगे

नौकर को भी रुखसत कर दिया और निश्चिंत होकर गंगा के किनारे जा बैठे। वहां उनके बहनोई अचानक मिल गए। सनातन को देख कर वह बहुत खुश हुए। उन्हें अपने घर लिवा जाना चाहा। सनातन ने कहा, 'नहीं-नहीं, मैं अब वहां नहीं जाऊंगा। मुझे तुम गंगा पार करा दो, काशी जाऊंगा।'

बहनोई ने उन्हें एक भोट कंबल दिया और गंगा पार कर दिया। उसी कंबल को ओढ़ कर पैदल चलते चलते सनातन काशी पहुंचे।

महाप्रभु उस समय काशी में थे। सनातन को देखते ही दौड़कर गले से लगा लिया, कुशल-क्षेम पूछा। सनातन उनके पैरों में पड़ गए। बोले, 'प्रभु के चरणों के दर्शन मिल गये, मेरे कुशल का और बाकी क्या रहा ?'

प्रभु के पास सनातन खुशी-खुशी रह रहे थे। एक दिन सनातन को लगा, प्रभु ने मानो उनके भोट कंबल की ओर ताका। सनातन ने उसी दिन गंगा के घाट पर वह कंबल एक भिखमंगे को दान कर दिया और उसकी फटी हुयी कथरी ओढ़ कर लौटे। देखकर महाप्रभु हंसे। बोले—

जिस कृष्ण ने हर लिया तुम्हारा सारा विषय-रोग,
वह कैसे छोड़ेगा तुम्हारा अंतिम विषय भोग।
तीन टके का कंबल तन पर माधुकरी ग्रास,
कारज सिद्धि नहीं लोग करते हैं उपहास।

सनातन प्रभु के इशारे को भाप गए। उन्होंने तपन मिश्र से एक पुरानी धोती माग ली। सर तो पहले ही घुटवा लिया था। अब उस धोती को फाड़कर कौपीन और बहिर्वास बनाकर गौड़ के प्रधानमंत्री सनातन ने सच्चे आला वैष्णव का रूप धारण किया।

एक ब्राह्मण को दया आयी, अहा, सनातन दर दर मारे फिर कर कहां भीख लेंगे। उन्होंने सनातन को न्योता दिया। कहा, 'सनातन, तुम जब तक काशी रहो, तब तक मेरे ही यहां भीख लो।'

ऐसा भी होता है भला! सनातन राजी नहीं हुए, 'मैं माधुकरी वृत्ति करूंगा। एक ही ब्राह्मण के यहां की भीख क्यों लूंगा ?'

माधुकरी यानी मधुकर वाली वृत्ति। मधुकर जैसे एक ही फूल से सारा मधु नहीं संचय करता, फूल फूल से थोड़ा-थोड़ा करके संग्रह करता है, वैसे ही माधुकरी

पर बसर करने वाले वैष्णव एक ही घर से भरपेट भोजन स्वीकार नही करते। वे घर घर से थोडा-थोडा आहार लेकर अपनी भूख मिटाते हैं। अभी सनातन ने कहा, 'एक ही ब्राह्मण के यहा की भीख क्यो लूगा ?' मरते दम तक सनातन ने ऐसे ही कठोर वैराग्य का पालन किया।

काशी म कुछ दिन रहने के बाद महाप्रभु के निर्देश से सनातन वृदावन चले आये। और तब से वृदावन ही रहे। एक जगह मे लगातार ज्यादा दिनो तक रहने स शायद माया पड जाय, इसलिये एक-एक रात एक-एक पेड के नीचे रहते थे और रात दिन भजन करते रहते थे।

रात दिन के छप्पन दड राधा कृष्ण के गुणगान मे ही बिताते। चार दड सोकर सपना देखते। पल भी बेकार नही जाता।

सनातन की कहानी म विभोर होकर एक टीले पर जा पहुचे। यही सनातन के भजन का स्थान है। इसी एकात म सनातन हर घडी भजन किया करते थे। दिन मे सिर्फ एक बार भीख के लिए निकलते थे—मथुरा जाते थे। साग-सत्तू, जिस दिन जो भी मिल जाता, शाम को वही भोजन करते। इन्ही से थोडा-सा नमक मागने में मदनमोहन की डाट खानी पडी थी।

एक दिन का जिक्र है, सनातन भीख माग कर लौटे। उस दिन सिर्फ थोडा-सा आटा ही मिला। गूध कर उसी की उन्होंने कुछ गोल-गोल गोलिया-सी बनायी—इधर इसे 'अगाकडी' कहते हैं—उपले की आग मे पकाकर वही उन्होने मदन मोहन को खाने के लिए दिया। उस 'अगाकडी' को मुह म डालकर मदनमोहन ने कहा, 'जरा-सा नमक न हो, तो इसे कैसे खाऊ ? जरा-सा नमक दो न।

सनातन ने कहा, 'नमक मैं कहा से लाऊ ? मुझे जो मिला है, वही दिया है। खाना हो तो यही खाओ। आज तुम नमक माग रहे हो, कल शाक मागोगे, परसो दाल। मैं वैरागी ठहरा, माधुकरी पर निर्वाह करता हू। तुम्हारी मुहमागी चीज कहा से लाऊ ? खास कुछ जरूरत हो, तो वह तुम आप ही जुटाओ।

एक दिन बीता दो बीते, तीन बीते—टीले के पास, आज जहा पर बालू है, पहले वही से यमुना बहा करती थी, इसी से होकर व्यापारी लोग नाव से सौदा पाती लाते-लेजाते थे। एक दिन एक सौदागर की नमक भरी नाव ठीक इस टीले के नीचे फस गयी। बहुत जोर लगाया गया, बहुत उपाय किया गया, मगर नाव

बरा नही टसकी। लाख-लाख हर उपाय कर हार थके और सौदागर का टीले पर के साधु को दिखाते हुए बोले 'हमलोग तो हिम्मत हार बैठे, साधु बाबा से विनती कर देखो, वह अगर कोई उपाय कर दें।'

सौदागर गया। जाकर सनातन के पैरों लोट पड़ा। कहा, 'बाबा, आपको जो चाहिए, मैं वही दूंगा। दया करके मेरी नाव निकाल दीजिये।'

सनातन ने कहा 'मुझे तो किसी चीज की जरूरत नहीं है, मगर कुटिया में एक बालक है उससे पूछ देखो, उसे अगर कुछ चाहिये।

सौदागर कुटिया में गया। मगर वहां कोई बालक कहां? वहां तो मुरलीधर की एक मूर्ति थी। सौदागर ने हंसकर कहा, 'ओ, समझ गया ये बालक ही गए मुरलीधारी। तुम्हें इसी की प्रतिष्ठा चाहिये। खैर वही होगा। इस बार जो भी मुनाफा होगा, उसमें तुम्हारा मंदिर बनवा दूंगा। यह कहकर सौदागर नाव पर चला गया। नाव जोर से छूट गयी और वेग से धार में बढ़ चली।

उस बार सौदागर को नमक के व्यापार में सोलह गुने का मुनाफा हुआ। लौटते समय वह सारी रकम लगाकर उसने मदनमोहन का मन्दिर बनवा कर नियमित सेवा का इंतजाम कर दिया। सौदागर का नाम था रामदास कपूर, घर, पंजाब का मुलतान जिला।

यही मूर्ति वज्रनाभ की बनायी मदनमोहन की मूर्ति थी—इस तरह से सनातन के पास पहुंची।

अब उस पुराने मंदिर के शिखर पर टूटी जगहों में घास और बरगद की जड़ें भर रही हैं। बगल में मानसिंह के बनाए मंदिर में मदनमोहन को ले जाया गया। गोविंद गोपीनाथ मदनमोहन—मानसिंह ने तीनों का मंदिर बनवा दिया था। उन सब में रूप के गोविंदजी का मंदिर ही सबसे बड़ा है। मानसिंह रूप के भक्त थे।

बाद में भक्तों ने टूटे से शिखर वाली एक भजन करने की जगह सनातन की बनवा दी है। भीतर माटी की एक वेदी। कोने में लाल मिट्टी के दीए की स्थिर और धीमी जोत में जूही-मालती के कुछ फूल—सनातन के प्रति श्रद्धा।

बार-बार जी में हो रहा था कि दीए से सटा-सटा-सा वह जो मालती का फूल है, हाथ बढ़ाकर उसे उठा लूं और अपने जूड़े में खोंस लूं।

इसी टीले के पास एक और टीला है। इसे द्वादशादित्य टीला कहते हैं। कभी

इसी के नीचे कालीदह था। जगन झाडियों से ढके हुए उस स्थान को सनातन ने ही निकाला था। अभी भी यहा आबादी नही है। चारो ओर झाडिया, पेड जगल-सा है।

ब्रजरमण ने कहा 'ऐसा कहा जाता है कि काली नाग को नाथकर कृष्णजी ने पानी में बडी सर्दी महसूस की। उसी सर्दी को मिटाने के लिये व इस टीले पर आ गए। उनके ऊपर आते ही द्वादश आदित्य ने एक साथ ही उदय होकर उनका शीत-निवारण किया। इसलिए टीले का नाम पड गया द्वादशादित्य टीला।'

इस टीले की एक और भी विशेषता है। जगन्नाथ पडित से महाप्रभु ने सनातन को खबर भेजी थी 'सनातन, तुम मेरे लिये वृदावन में थोडी सी जगह रखना।'

सनातन ने निजन यमुना तट पर इसी टीले के ऊपर महाप्रभु के लिय जगह ठीक करके रक्खी।

महाप्रभु उसके बाद वृदावन गये या नही, उस स्थान पर वह बैठे थे या नही—भक्तलोग इसके ऐतिहासिक प्रमाण की खोज नही करते। व तो विश्वास रखते हैं कि महाप्रभु ने जब आने की कहला भेजी थी सनातन ने जब उनके लिये जगह ठीक कर रक्खी थी तो वह जरूर ही आये होगे और यहा रहे होंगे। इसलिये आज भी वहा महाप्रभु के लिये आसन बिछा हुआ है।

द्वादशादित्य टीले के नीचे सनातन का समाधि स्थान है। गुरु पूर्णिमा के दिन उनका तिरोधान हुआ। इस उपलक्ष्य में आसाढी पूर्णिमा को यहा पर बडा समारोह होता है।

बगल में एक ग्रथ समाधि है। गोस्वामी पादगण जो भी ग्रथ लिख गए सब ताड के पत्ते पर। उस जमाने में उन्हें खुद के ही रहने की जगह नही थी तो ग्रथो को कहा रक्खें। लिहाजा कभी पेडो के कोटर में कभी पत्थर से दबाकर, तो कभी गुफाओ के अदर रखते थे। फलस्वरूप धूप, पानी और कीडो के उपद्रव से बहुत सारे ग्रथ नष्ट हो गए। उनकी लिखावट पढने लायक नही रह गयी वैष्णव भाषा में 'पाठोद्धार करना असभव हो गया। लाचार सारी पोथियो को इस तरह से समाधि में डाल दिया गया। शास्त्र-ग्रथो को अपने हाथ से नष्ट करना जीवहत्या के समान है।

समाधि पर हाथ फेरकर परिक्रमा करती हुई बडी-दी कहने लगीं, 'अहा रे न

जाने कितनी मूल्यवान पोथियां थीं। कोई जान भी नहीं पाया।'

हम यमुना के किनारे किनारे ही चल रहे थे। सारी लीलाएं तो यमुना तट पर ही हुयीं। ये घटनाएं जाने कब की, कितने दिन पहले की हैं, पर जब इनका वर्णन इन लोगों के मुंह सुनती, तो, लगता, ये घटनाएं गोया कल रात की घटी हैं। स्थान और कहानी से ऐसा साफ अनुभव होता।

यह रहा यह केलि कदंब तरु—जिस पर से कृष्ण काली दह में कूद पड़े थे। पेड़ की डालें यमुना में झुक गयी हैं। इस केलि कदंब की डालों पर अपने-आप ही राधाकृष्ण के नाम निखरे हुए हैं जिनकी ज्ञान की आंखें खुल गयी हैं, वही देख पाते हैं। लेकिन टेढ़ी मेढ़ी डालों पर कल्पना से हम लोग भी जो राधा-कृष्ण अक्षर नहीं देख पाते हैं, मुंह खोल कर यह कहने की क्या हिम्मत है। यह देखा था रामकृष्ण देव ने विजयकृष्ण गोस्वामी ने।

बड़ी मी ने कहा हो सकता है, नाम फूट निकलते हैं। पेड़ की डाल की तो बात ही क्या मैंने सुना है, विजयकृष्ण गोस्वामी के बदन पर नाम निखर पड़े थे।'

मैंने केलि कदंब के छोटे-छोटे कुछ फूल तोड़कर अपने थैले में डाल लिये—घर ले जाकर अभिजित को दिखाऊंगी।

ब्रजरमण ऊपर को निगाह किए इस उस डाल को टटोल रहे थे। बोले, यह स्थान साधन भजन के लिये बड़ा ही उपयुक्त है। बड़े बड़े वृक्ष अपनी शाखा प्रशाखाएं चारों ओर फैला कर इस स्थान को मानो संसार के तपन-ताप से बचाकर अपनी सुशीतल छाया से मानो भगवान के भक्तों को बुला रहे हों।'

सूर्यघाट गयी। वही पुराना सूर्यघाट। राजकुमारी राधा सूर्य पूजा के छल से रोज इसी घाट पर आया करती थी और धेनु वन के मैदान में छोड़कर कृष्ण पुरोहित बनकर आया करते थे।

वही सनातन छल चातुरी। मानव लीला में वह आज भी चली आ रही है। अभी मन में बड़ी आसानी से इनकी लीला का अनुभव कर सकती हूं।

वृंदावन लीला से छाया हुआ है। यही वह यमुना-पुलिन है। शहर में बालू का आंगन, उस आंगन में सब दुमंजिले मकान। जिस साल यहां बरसात का पानी चढ़ जाता है, बड़ी हलचल मच जाती है। सारे ब्रजवासी यमुना-पुलिन पर

आकर स्नान करते हैं। कहते हैं ठीक इसी समय म ही कृष्ण ने यमुना-पुलिन मे विहार किया था। बहुत दिन, बहुत समय के बाद यह शुभयोग आता है।

गैयों का एक झुंड चर रहा था। शायद अभी-अभी सब गुहाल से निकली हैं, हरी-कोमल घास के लालच म यमुना किनारे जाएगी।

एक तो यमुना-पुलिन, जिसपर गोपदरज—बडी-दी ने एक मुट्ठी बालू उठा लिया। कहा, कोई मजाक की बात नहीं—

'धूलि नहीं रे धूलि नहीं रे, गोपी के पदरेणु'
इसी धूल को मला बदन मे नद का नदन कानु।[1]

ज्ञान-गुदडी गयी। यह वही ज्ञान-गुदडी है, जहा कृष्ण के विरह से व्याकुल गोपियों को दिलासा देने के लिए उद्धव आये थे। आकर वह सात्वना तो क्या खाक देते, गोपियो का कृष्ण प्रेम देखकर उन्हीं के चरणो की धूल अपने माथे पर लेकर बैरग वापस हो गए।

यह है चीर-घाट। यहीं कृष्ण ने गोपियो का चीर हरण किया था। कपडे उतार-उतार कर गोपिया नहान के लिए उतरी थी, उनके सारे कपडे-लत्ते समेट कर कृष्ण पेड पर जा छिपे। यहां की डाल-डाल पर रग बिरग कपडो के टुकडे, हवा म उडते रहते हैं। यात्री लोग कपडा के ये टुकडे बाध दिया करते हैं। देखकर उन्हें उस दिन की लीला का उद्दीपन होता है।

बडी-दी बोली, अलग-अलग अब कितनी लीलाए देखू। इसकी धूल के कण-कण मे लीला की स्मृति जुडी हुई है। बल्कि पहले मदिरो को देख लें, चलो। इन दिनों ब्रज के गोपाल कितने रत्नालकार से सजे हैं। उनका यह रूप तो सदा देखने को नही मिलेगा।'

वृदावन की अली गली म ठाकुर हैं—साढे पाच हजार मदिर। इनमे से खास खास को भी ढूढ निकालना हो तो साथ मे एक जानकार आदमी का रहना जरूरी है, जो रास्ते मे भूल भुलया को पार कराके हमे ले चले। पडो पर भरोसा नही होता।

ब्रजरमण ने कहा, 'आप लोग कृपा करके यदि थोडा धीरज रखा ता म अपने

---

[1]कानु—कन्हैया

स्वर्गीय गुरुदत्त मदनमोहन दास जी के कुंज में जाकर वर्तमान महंत नित्यगोपाल दास जी का साथ ने करना हूँ।

— बेजा क्या है?

ब्रजरमण ने कहा रास्ता जरा टेढ़ा है। कई सारी गलियां पार करनी होती है।

कहा तो क्या हुआ? बनारस का एक और नजारा देख लिया जाएगा।

शहर के बीच से चला। दोनों ओर पीतल तांबा लोहा लकड़ी किताब हलवाई, कपड़ा हाथी की दुकानों से रास्ता ठसमठस। बिल्कुल सटी-सटी दुकानें—दो दुकानों के बीच में इंच भर की फांक नहीं। बीच में पक्का या पतला रास्ता—रास्ते भर लोगों का उमड़ता हुआ ज्वार। गलियों में रास्ते पर जमे अबीर की मोटी कालीन बिछी हो। उन पर मस्ती से अबीर उड़ाते हुए चल रहे हैं लोग—जैसे मुंह उठाकर गोधूलि लग्न हम रहे हों। आज सर के ऊपर अबीर के बादलों ने आकाश की नीलिमा को ढक लिया है। ऊपर और नीचे अबीर का खेल उसी में से होकर झांझ मृदंग बजाते हुए मन की उमंग में नाचते गाते चल रहे हैं रंग से रंगे ब्रजवासी। जिधर भी नजर जाती रंगीन हंसी लोट-सी रही हो मानो। दोनों ओर के पनालों में रंगीन पानी बह रहा था।

पतली फिर और पतली गलियां पार करके आखिर मदनमोहन दास के कुंज में पहुंची। दरवाजा भिड़का हुआ था ठेलते ही खुल गया। अंदर जाकर हम छोटे से आंगन में खड़े हो गए। छोटी छोटी कई कोठरियां उन्हीं में से एक के बरामदे पर कंबल डाल कर ब्रजरमण ने हमें बिठाया। चारों तरफ कैसा तो अंधेरा-अंधेरा सा। शहरातियों के घरों का वर्णन पढ़ती रही हूं ये इधर के घर शायद वैसे ही हैं। कहीं भी रोशनी नहीं दाखिल होती। शहर के गली कूचों में भी शायद ऐसे कितने डेरे हैं। हमारे गांवों में टट्टियों से घिरे घर इनसे कितने बेहतर हैं। धूप और हवा कितनी है वहां। बचपन में ननिहाल के विशाल आंगन की याद आ गयी लक्ष्मी पूर्णिमा की रात में उस आंगन में तमाम अल्पना कैसी गजब की शोभा! खिली चांदनी में इस टोले की स्त्रियां बहू-बेटियां को लेकर उस टोले में जातीं उस टोले की गृहिणियां अल्पना देखने के लिये इस टोले में आया करतीं। कलमीलता, शंखलता कमललता की बहार देखकर एक दूसरी

की तारीफ करती। अल्पना आका हमारा वह उस दिन का अगना कहा गया ?

सामने अधेरे कुए पर लबे चौड़े कद्दावर एक वष्णव खड़ा रहे थ। नहा कर गमछा स लबे बाल पोछते हुए हम लोगा क सामने आकर खड़े हुए। यही थे कुज के अधिकारी नित्यगोपाल दास—कुज क गोवधन विग्रह क सेवायत। पूजा पाठ के अलावे फुरसत के समय किसी स्कूल म शायद पढ़ाते या काम करते हैं। उन्होंने कपड़ा-कुरता पहना। हम लोगा क साथ जाने को तयार हो गये।

मोटी आढ़नी सम्हालते सम्हालते एक काली-सी स्त्री दौड़ती हुयी अन्दर आयी। उसके गले म जस एक मुड़ चिड़िया का कलरव हो। कसा उच्छ्वास। बोली, 'आज तो बिहारी जी बिहारी जी ही ह। बड़ा अच्छा दशन। सब कुछ सोने का।' दोना हाथ उठा उठाकर उसने मूर्ति के सौन्दय का बखान किया।

नित्यगोपाल दास ने पूछा 'दशन खुला ह ?'

उस स्त्री ने कहा, 'जी हा। देख ही कर तो आ रही हू मैं। दौड़कर खबर देने आयी। तेज कदम बढ़ाकर जाइए तो अभी भो खुला मिलेगा। जल्दी कीजिए।' और उसने मानो ठेलकर हमे दरवाजे स बाहर कर दिया। मारे खुशी के वह थिर ही नहीं रह पा रही है।

उफ कैसी भीड़! सभी व्याकुल आग्रह लिए दौड़ रहे है, जस अभी ही कोई चीज हाथ स निकल जायेगी। भीड़ मे चलने का बेशक एक नशा होता है। भीड़ म अपने को मिलाकर ठेलते हुये मैं चलती हू मुझे ठेलते हुए दूसरे लोग चलते हैं। कोई होड़ नहीं। यही नियम हो मानो।

भीड़ म एक ही दरवाजे से अदर घुसना मुश्किल है, मगर वह भी घुसी औरो की तरह। आखिर बिहारीजी का दशन करना है। मन्दिर के सामने खासा बड़ा-सा प्रागण, नागा के धक्के से जितना बन सका आगे बढ़कर जगह दखल की। नित्य गोपाल ने कहा, अब यहा फिर खड़े रहिए। दशन बद हैं।'

सामने छाती तक ऊचा बरामदा रंगीन और दामी परदे से घिरा उसी के पीछे बिहारीजी। अचानक ही एक समय परदा हटा देगा कुछ क्षणो के लिये और फिर खीच देगा। मच की तरह। इस कहते है—झाकी दशन। पल के दशन के लिए इतनी देर तक खड़े रहने की जो उत्कठा है—भक्ति भाव आप ही आता है। दशन की इस लुकाछिपी का मतलब क्या है भक्त भगवान ही जानते हैं। नाहक ही सोच मरना। आखिर हजारो हजार लोग भला इतने कष्ट स इतनी

देर तक कभी इतजार कर सकते हैं? आज होली का त्योहार है, आज सारे ब्रजवासी बिहारीजी को देखेंगे ही, जानी हुई बात है—फिर भी वे कितने निश्चित हैं।

अब खडे रहते नही बन रहा था। पाव जैसे मुडते जा रहे थे। पास के एक चिमटा वाले साधु से एक माजी ने करुण स्वर मे पूछा, 'दर्शन मे और कितनी देर है ?'

साधु ने बेफिक्री के साथ हसकर कहा, 'अरे बाबा, कुछ तपस्या तो करो। दर्शन की उत्कठा जितनी ही बढेगी, दर्शन का उतना ही आनद लूट सकोगे।'

बडी-दी ने कहा, 'सुन लो। हमलोग ससारी जीव हैं, हरदम तरह-तरह की भवर म गोते खाते हैं। मगर वह नही छोडते, मौका मिलते ही हमलोगो से भी थोडी थोडी सी तपस्या करा लेते है। आज भीड के इस दबाव म देखते-देखते की जो सोच रही हू, उन्ही की बात सोच रही हू—इसे भी तो तपस्या करना ही कहना चाहिये।'

भीड के दबाव से कुछ और आगे बढ गई, पाव सकुन करके खडी रही। मगर मन लगाम नही मानता। मन बहलाने के लिये झाले से बही पेंसिल निकाल ली। सोचा नाहक ही समय बीत जायेगा। मगर आकू तो क्या! मन मे कुछ जच नही रहा था। इधर-उधर ताकने लगी। एकाएक निगाह भीड के बायी ओर बिखरे बालो से घिरे एक सावले मुखडे पर जा टिकी। काली कोर की साडी का आचल माथे पर डालकर गीले बालो ही चली आयी है। करुण मुखडा, किसी बात का कोई ख्याल नही, एकटक सामने की ओर ताक रही थी।

बही खोली। लकीरें खीचने जाऊ—फिर नजर उठाकर देखा, आखें बद की फिर खोली। देखा। बडा ही पहचाना-सा चेहरा जाने कब कहा देखा है। कापी बद कर ली—फिर खोली। जाने भी दो, पहचाने मुखडे की खोज से क्या मतलब! यह स्निग्ध-सावला मुखडा ही याद रहे। काली पेंसिल से काली-काली आखो की रेखा खीचते हुए अचानक याद आ गया—अरे रे, यह तो ब्रह्मकुड, हरिद्वार की उस दिन वाली वही स्त्री है जिसके पल्ले पड गई थी कि हम नई साधिका हैं।

दृष्टि का कौन-सा आकर्षण—नही जानती। जाने किसने उसके चेहरे को मेरी तरफ घुमा दिया। आखें मिलीं कि भर मुह हसती हुई ठसाठस भीड को ठेलकर

वह मेरे पास चली आयी। बोली 'हरिद्वार म ज्यादा दिन रह नही सकी। मेरे पति आकर लिवा गए। अब फिर बिना कहे यहा चली आयी। पूछने से ही तो ना नू करेंगे। मगर मन खिचता है, मैं करू भी क्या ?'

वह मुह उठाकर मेरी छाती से सटकर खडी हो गयी। बडा अपनी सी लगी। पूछा, 'ठहरी कहा हो ?

—'ठहरी हू एक धमशाला म। पहले आकर लेकिन आनदमयी मा के आश्रम मे ही उतरी थी। वह तो अपने पास रहन को कहती ही हैं। मैं मगर नही रह सकी। उनकी साधना—बाप रे ! और अजीब बात बताऊ, कितने ही लोग मुझे दीक्षा देने पर आमादा। जो भी देखे वही कहे मैं तुम्हे मत्र दूगा। मैं खुद ही अपने मन को स्थिर नही कर पाती। आनदमयी मा न ही तो मुझे कहा था, मैं मजे से अपने घर थी। पता नही, किस साइत म उनसे भेंट हुई। उन्होने कहा, तुमम साधना है तुम आकर मेरे पास रहो। तब से जाने मेरा मन कैसा तो करता रहता है, घर मे टिक नही पाती। लेकिन वह नही सकती क्यो, इनकी साधना की पद्धति मेरे मन म मेल नही खाती। गई तो थी वहा, पर एक दिन से ज्यादा ठहर नही सकी।

साधना की एसी क्या पद्धति है ? जानने की उत्सुकता हुई मन मे। मगर हम 'नव्य साधिका' जो ठहरी, हमारे लिए कुछ अजाना जो नही रह सकना। अपने मान के लिये ही अपने को जब्त कर गयी, मान को बचाने के लिये मन की उत्सुकता को पी गयी। मगर उसे खुश करती हुई बडी दी पूछ ही बठी, 'अच्छा, आनदमयी मा की साधना कैसी है ?

—'उन लोगो की साधना? —कोई जस उसे पकडने जा रहा हो—दोनो हाथो से अपने को छिपाती हुई-सी बोली, 'भयकर। नही बरदाश्त कर सकी, जभी तो चली आई।'

बडी दी ने पूछा, 'भक्त लोग मा की पूजा कसे करत है ?

—'नही नही, वह मैं नही बता सकूगी। डर से कलेजा कापता है। बिखरे बालो, दानो हाथ उठाए, घूम घूम कर ताडव नृत्य—नदी भृगी का दल हो जसे। बडी उग्र साधना—विश्वग्रासी भाव हो मानो—। बस, बस, आपने अभी अपनी आखें जैसी की न वैसी ही नजर सबकी, बाप रे बाप !'

भडककर वह पीछे हट गयी।

मुझमें एक बड़ा भारी दोष है। किसी मुनते-गुनते मैं किसी की ही बन जाती हूँ। उन्हीं भावों का भाव मेरे चेहरे पर फूट पड़ता है। इसीलिए उस अपने वतन में नाटक हुए उस माधवी विश्वासी शब्द जो रहे, तो जरा देर के लिये मेरी आँखें लाल लाल हो आयी थीं।

जिसके पास वह बेरागी विश्वास के साथ आ खड़ी हुयी उसकी आँखों में भी वही निगाह ! जिस निगाह से डरकर वह निश्चित डग छोड़कर भूख और जागरण लिए धर्मशाला में आ गयी।

महज लमहे की विह्वलता। दूसरे ही क्षण मैंने निगाह मुलायम कर ली, होठों पर हँसी बिखरी। फिर भी उस स्त्री का भय नहीं भागा। सूखी सूरत लिए, छाती में दोनों हथेली की मुट्ठी बाँधकर मेरी आँखों की तरफ ताक-ताक कर न जाने क्या देखती रही। आखिर जब रहते न बना तो भीड़ में दबाव के बहाने मुझसे कतरा कर वह भीड़ में कहीं खो गई।

टुन् टुन् घंटी बजी। लोगों में हलचल-सी हुयी। 'जय-जयकार' से तमाम काँप सा उठा। सामने का परदा खुल गया।

'सब सोना ही सोना।' मणि माणिक जड़े कपड़े-गहनों से राजोचित साज में राजसिंहासन के फूलों के हिंडोले पर आँखों के सामने बिहारीजी झूल रहे थे।

रत्नों की छटा से आँखों में चकाचौंध होती थी। आज सेवायत लोग भी विशेष रूप से सजे सँवरे थे—पहनावे में रंगीन तसर का कपड़ा गले में रंगीन चादर, बदन पर सिल्क की मिरजई कपाल पर चंदन तिलक—गोरे मुखड़े पर बड़ा ही फब रहा था।

बिहारीजी को देखते-न-देखते परदा गिर गया। जरा देर में फिर उठा, फिर गिरा। पल पल उठना गिरना चलता रहा। ज्यादा देर तक बिहारीजी को खोलकर नहीं रक्खा जाता—कहीं मथुरा भाग जायें जैसा कि एक बार भाग गए थे। इसके अलावा भक्तों की ओर से भी इसकी एक सार्थकता है—जी भर देख न पाने से उनमें दर्शन की उत्कंठा जगी ही रहती है। राज पानेवाली आकांक्षा ही बलवती होती है। आनंद दरअसल तृप्ति में नहीं है, प्रबल आकांक्षा में है। इसीलिए तो वैष्णव लोग आकांक्षा बढ़ाने पर ही ज्यादा जोर देते हैं।

दोनों आँखें फैलाए उस साँवले मु[illegible] ते खो[illegible] आयी।

पीडा से कलेजा टन-टन् करने लगा। अच्छी लग रही थी वह स्त्री, पल म क्या ह गया—इतन निकट की चीज दूर छिटक गयी। जान नही पाई—वह मैं जो म नही हू। उसका अकारण भयभीत मुखडा मन म पीडा दन के लिय जगा रहा—सदा के लिए।

बाके बिहारी, राधारमण, श्यामसुदर, राधामाधव श्याम, राधावल्लभ—सभी अकेले। बगल में राधा नही। वैष्णव लोग पहले एक भगवान की पूजा करते थे। एक भगवान क अलावा और कुछ नही जानते थे—राधा तक को नही सह सकते थे।

शशी महाराज न कहा था, रसोई करते-करते सनातन ध्यान-मग्न हो जाते थ, आग बुझ जाती थी। बालिका के रूप म राधा जी आकर फूकती हुई आग सुलगा दिया करती थी, मारे धुए क उनकी आखो से पानी चूता रहता था। खीज कर सनातन उनको भगा दिया करत थे। कहते, मेरी रसोई जल जाय चाहे, चाहे कच्ची रह जाय—रहे। ठाकुर वही खाएगे। तुम तो कृपा करो। अभी तो कहता हू वे सब ऐसे भक्त थे कि राधा की आखो स उन्होने पानी चुसा कर छोडा था।'

नित्यानद की गृहणी माता जाह्नवी ने ही सबसे पहले राधा को श्रीकृष्ण के बगल म स्थान दिया। पहले तो इस पर बेहिसाब आपत्ति उठाई गयी, लेकिन शास्त्र और युक्तियो स जाह्नवी से परास्त होकर सब आपत्ति करने से बाज आए। वह जितनी ही पडित थी, उतनी ही शक्तिशालिनी थी। उस समय वैष्णवो के जो सबस बडे पडित माने जात थे, उन जीव गोस्वामी ने सभी वष्णवो के साथ जाह्नवी स भागवत सुना था।

उनक पुत्र वीरचद्र प्रभु—चतन्य भक्तिमडल के मूल स्तभ—वह जब दीक्षा के लिए अद्वन प्रभु के निकट जा रहे थे, तो मा ने उनको बुलवाया। बोली, बेटे, तुम दीक्षा के लिए आचाय प्रभु के पास क्या जा रहे हो ? दीक्षा मैं ही तुम्ह दूगी। तुम उसक लिए तैयार होकर आओ।'

कहानी या गाथा मे ऐसा आया है मा के बुलाने पर पुत्र जब मा के पास गए, तो मा जप कर रही थी। युवक बेटे को अपने सामने देखकर उन्होने माथे पर आचल रख लिया। लेकिन बडे आश्चय के साथ वीरचद्र न यह देखा कि मा के दोनों हाथ जाप की माला को जिस तरह से पकडे हुए थे, वैसे ही पकडे हुए रहे।

वीरचंद्र योगबल की धनी अपनी मां के चरणों में तुरत लोट पड़े।

उन्हीं मां जाह्नवी की कृपा से कृष्ण आज राधा के साथ सिंहासन पर हैं—

श्याम नव जलधर, राय इंदुवर
विनोदिनी बिजुरी, विनोद जलधर।'

वृंदावन में आज वह जहां जिस नाम से जिस रूप में हैं राज ऐश्वर्य बिखेरे हुए हैं। कहीं हीरे की आखें, कहीं हीरे के मुकुट, कहीं हीरे की बांसुरी, कंठी, कुंडल, मुरली—जाने क्या-क्या! मणि मुक्ता की भरमार।

देखती चल रही थी।

बड़े गमले में रंग भरी पिचकारी लिए, बूढ़े-जवान छोकरे बैठे थे। पहचान या नहीं पहचान—कोई बात नहीं। रास्ते से जो गुजर रहे थे, औचक ही वहीं से उन पर रंग का झरना झर पड़ता।

घूंघट काढ़े बचकर जाती हुई बहुओं के मुंह पर, छाती पर बनी उमंग में व्रजवासी लोग बड़े कायदे से अबीर डाल रहे थे।

रास्ते में देखा मन ही मन खुश होकर हंसते हुए भगवानदास चले आ रहे हैं। बोले 'बढ़ जाइए। व्रज की मैया का खेल शुरू हो गया है देख आइए।'

आज दोपहर को गोविंदजी के मंदिर में भंडारा था। इतने इतने लोगों का खिलाने पिलाने की इतनी बड़ी जिम्मेदारी भगवानदास पर थी। दोपहर को जब उधर से आ रही थी तो देखा था, उनकी दौड़ धूप का कोई अंत नहीं है। देख भाल में व्यस्त हैं। इसी बीच में मौका निकालकर व्रज की मैया का खेल देख गए।

मणि बहादुर से मैंने पहले इस खेल के बारे में सुना था। उन्होंने कहा था 'अगर वही चीज नहीं देखी तो फिर देखा क्या? होली के दिन बरसाने की स्त्रियां हाथ में लाठी लिए नंदगांव के मर्दों को पीटने के लिए आती हैं। मर्द लोग मगर पीटते नहीं, पिटते हैं। इतना ही नहीं, पिटकर पीटनेवाली को मिठाई खिलाते हैं।'

मैंने बड़ी-दी को इशारे से कहा, 'तुमलोगों की गिरस्ती बड़े दिनों की है यदि मन में कभी का कोई कांटा चुभा हुआ हो तो उसका बदला चुका लेने का यह बड़ा सुनहला अवसर है। आज के इस खेल में एक ही ढेले में दो चिड़िया का शिकार होगा।'

'चढो चढो, चटपट इस बरामदे पर चढ जाओ'—कहते हुए दादा ने हाथ के धक्के से हम बीच रास्ते से ठेल कर किनारे हटा दिया। सांय-सांय करती हुई दो हाथ लंबी एक लाठी वहां आकर गिरी, व्रजवासिन के हाथ की लाठी।

दादा बोले, 'अरी वीरांगनाओ, बीच रास्ते में राय मशविरा होता है। जरा देर होती तो यह लाठा तुम्ही लोगो की पीठ पर पडती।'

रास्ते में दो कतारो मे खडे लोग—बहू-बेटी, लडके मर्द। मानो डाके का जुलूस देखने के लिए इकट्ठे हुए हो। और, दोनो ओर की कतारो मे जो भीड थी, उसके बीच की खाली जगह में इस छोर से उस छोर तक दौडती हुई लाठी मार रही थीं व्रजवासिनें। पैरो के बडे बिछुओ पर झलमलाते हुए घाघरे भारी तालो पर लहरें-सी उठा रहे थे, दौडने में कमर का मोटा चंद्रहार उठ आता, बाजूबंद, पछेली, कडे के सुर के साथ झनझुन बजते थे ताल-ताल पर। रंगीन ओढनी के लंबे घूघट का बाएं हाथ से जरा उठाकर अंगूठी वाले ढके कर-कमल मे लाठी लिए वे खेलती चल रही थी। अरी, काच की चमक से सारे रास्ते पर बिजली-सी कौंध रही थी। कुल मिलाकर गोया हल्की ओढनी में ढकी आनंद की आंधी हो।

आज मर्द सूरतें भी लुभावनी पोशाक से सजी-संवरी थी—बदन पर मिरजई, माथे पर पगडी। मार बचाने के लिए उन्होंने हाथो मे छह-छह हाथ की लाठी ले रखी थी। मगर मन-ही मन इस खुशी में मगन कि आज दो हाथ की लाठियो से वे शिकस्त खाएंगे। हंसते हुए लाठी सम्हाले मार बचाते हुए वे पीछे हटते —कोई तेजी के साथ कोई धीरे धीरे। व्रजवासिनें इससे भी खुश नही होती—जो लोग पहुंच से बाहर थे, उन्हें लाठी फेंक फेंक कर मार रही थीं। इधर-उधर का ख्याल नही। दर्शक खिलखिला कर हंस पडते हंस पडते नंदगांव के मर्द लोग। नंदगांव के गोपाराकृष्ण बरसाने की राजकुमारी राधा को रुलाते हैं, इस बरसाने की गोपियां सह नही सकती। मारे गुस्से के नंदगांव के छोरो को मारने के लिए दौड पडती। इतने दिनो से वही रिवाज इस प्रकार से चला आ रहा है। उल्लास से सब मे खुशी के फुहारे छूटते—वही लीला वे आंखो देखते हैं।

यमुना का किनारा पास ही था। यह खेल देखकर जरा देर के लिए खुली हवा मे आकर खडी हुयी। साधुओं के भस्म रमे कपाल आज अबीर से रंग थे जैसे

सफेद बालू पर ज्यों के सैकड़ों अरुण कीट घूम रहे हों।

यहां चार वट हैं। पचकोसी परिक्रमा में रास्ते में पड़ते हैं।

वंशी वट। इसी के नीचे मुरली बजाकर कृष्ण राधा को बुलाया करते थे। बाद में यहीं पर गोपियों के साथ रासलीला हुई थी। रास देखने के लिए दूसरे किसी को आने की इजाज़त नहीं थी। शिव से नहीं रहा गया था। वह गोपी के रूप में छिपकर आ गए थे। तभी से यह गोपीश्वर शिव के नाम से वहीं पास ही रह गए।

विश्राम वट। धेनुओं को चरने के लिए छोड़कर कृष्ण यहां राधा के साथ विश्राम करते थे।

शृंगार वट। इसके तले कृष्ण राधा को अपने हाथों कुंकुम-चंदन से सजाया करते थे। शृंगार वट के आंगने में हरसिंगार के दो पेड़—एक तो सीधा खड़ा, दूसरा उस पर झुका हुआ। फूल दोनों में लगते हैं पर फल एक ही में आता है। इन पेड़ों से विग्रह का मन्दिर ढकता जा रहा है यह देखकर सेवायतों ने दोनों पेड़ों को काट डालने की सोची। लेकिन संकल्प करने के दिन ही रात में सपना आया—'हमें मत काटो। हम दोनों पति-पत्नी हैं। पेड़ के रूप में यहां तपस्या कर रहे हैं।' और चौथा अद्वैत वट। अद्वैत महाप्रभु के भजन का स्थान। पुजारी ने कहा—

हाम से अबला, हृदय अखला
भालो मंदो नाहि जानि।
विरले बसिया नीरबे आकिया
विशाखा देखालो आनि।'

छलहीन हृदय की मैं अबला। बुरा भला नहीं जानती। निर्जन में बैठकर चुपचाप आंक कर मुझे विशाखा ने लाकर दिखाया।

विशाखा ने वह जो चित्रपट दिया प्रथम मिलन—वह यहीं पर।

स्थान अभी भी बड़ा एकांत और मनोरम है। मिट्टी का ओसारा सफेद माटी का अंगना जीर्ण नीम की हलकी छाया—कुल मिलाकर एक शांत शीतल आबहवा।

माटी के उस छोटे-से ओसारे पर बैठ पड़ी। कहा, 'पानी पिऊंगी।' पलभर पहले भी पानी पीने की बात मन में नहीं आई थी। एकाएक ख़्याल हो आया, प्यास लगी है पानी पीकर शीतल होऊंगी। ऐसी ही जगह में तो प्यास का पानी पीना चाहिए।

पुजारी ने पीतल के लोटे में एक लोटा पानी दिया। गट-गट करके सब पी गई और उठकर खड़ी हो गयी।

बहुत ही बूढ़ा एक गोरा ब्राह्मण दो टूटे हाथ सामने की ओर बढ़ा कर पोपले मुँह से हँसते हुए गाता हुआ चला गया—

'ब्रज के रज से रति न हुई, हाय रे हाय!'

मनमोहन दास के कुंज में जा कानी-सी स्त्री मिली थी, राधादासी—वह हम लोगों के साथ हो ली। कहा, निधुवन निकुंजवन राधाकृष्ण की नित्य लीला के स्थल हैं। मैं वहीं जा रही हूँ—निकुंजवन। चलेंगी? बस, पास ही में है।'

दिन ढल रहा था। दिन की रोशनी मलिन हो आई थी। हम निकुंजवन में दाखिल हुए। वन तो फिर वन ही। बस, झाड़ी और झाड़ी। उन्हीं के नीचे से सफेद माटी की पतली-सी पगडंडी चिक चिक करती हुई आकी-बाकी-सी आगे निकल गयी है। कहीं बदन बचाकर, कहीं गरदन झुकाकर चलते हुए हम झाड़ियों से घिरे एक घर में पहुंचे। सामने छोटा-सा छाया हुआ बरामदा। उसी थोड़ी सी जगह में कितने लोग जो ठसाठस भरे थे—ज्यादातर प्रांत प्रांत की स्त्रियां। यहां जन उन्हीं लोगों का राज हो। मर्द लोग थे, पर पीछे खड़े। यहां भी 'झांकी-दर्शन'। सबको उत्कंठित रखकर पुजारी परदे के सामने बैठा सींकों में घी लगी रुई लपेट कर धीरे धीरे छोटी छोटी मशालें बना रहा था। मुंह सीकर औरतें आखिर कितनी देर बैठ सकती हैं? ताली बजाते हुए उनलोगों ने अजीब सुर में गाना शुरू किया—

जय जय राधा जी की, शरण तिहारी
यही छन आरती, जाउँ बलिहारी।

सामने जो मारवाड़िन बहू बैठी थी, उसकी हथेली में मेहदी का कैसा बहारदार नक्शा था। ये सब पिसी हुई मेहदी से ऐसे नक्शे बनाती हैं या कि कोई रंग लगाती हैं? याद आया, ईद से एक दिन पहले हनीफ की मां मेहदी के पत्ते लेने आई थी। बोली 'इस मौके पर हम क्या लड़के और क्या बूढ़ा सबको मेहदी लगानी पड़ेगी। यह हमारा मजहबी तरीका है।'

पूछा, 'कैसे लगाती हो ?'

क्या जानें ! बचपन मे एकबार मेहदी रचाने का शौक चर्राया था। दोनो बहनो ने मेहदी के पत्ते लाकर पत्थर से बरामदे पर उन्हे पीसा और फिर हाथ म लगाया। मगर खाक रग नही आया। लाभ मे स लाभ यही हुआ कि मा स थप्पड मुक्के नसीब हुए। रोते-रोते पानी लाकर बरामदे को धो धवाकर साफ किया। इसीलिए हनीफ की मा से पूछा, 'जरा मुझे भी तो बताना, मैं भी लगाऊगी।'

वह बोली 'यह तुम्हारे बस का नही। तुमलोगो से यह नही होने का। मैं खुद एक दिन आकर के पीस कर तुमलोगो के हाथ म लगा दे जाऊगी। हम लोगो को बीवी फातिमा का दिया हुआ वरदान है न। तुमलोग लगाओगी तो रग का वह निखार ही नही आएगा। यही तो मेहदी लगाने का समय है। इसके बाद बीवी फातिमा मैके चली जाएगी तो मेहदी मे रग की बहार नही आएगी। वह जबफिर ससुराल आएगी तो महदी मे रग लौटेगा। हमलोगो का मजहब क्या आसान है ? बडे सख्त हैं कायदे-कानून उसके।'

निकुजवन मे गाना हो ही रहा था—

जडा रतन मे मणि मानिक मोती,
झलमल आभरण, अग अग जोती।
नव नव वज वधू मगल गावे
सखिया प्रिय नम चवर डुलावे।

गीत की चुहल स कुज की नीरवता कहा गायब हो गई। शोर शराबे म 'मार्की-दर्शन' समाप्त हुआ।

कुज घिरी पगडडी से घूमती हुई चली आ रही थी। राधादाभी कहती आ रही थी। यह है ललिता कुड। नाचते-नाचत ललिता को प्यास लग गई। उसन कृष्ण से कहा, जल्दी पानी ला दो। कृष्ण को उस समय पानी कहा मिले ? उन्हान हाथ की बासुरी स झट खोद कर कुड बना दिया। ललिता ने उसके पानी स प्यास बुझायी।

— और यह है मुक्तालता। मा यशोदा के कान के मुक्ता को कृष्ण ने माटी म

रोप दिया था। उसी से यह लता उगी। ब्रज में ज्यादातर लता ही देखिएगा, पेड़ ज्यादा नहीं। सब सखी भाव। वृंदावन में लता पत्ता देखने में बड़ा अच्छा लगता है।

—और यह है तमाल-तरु। माखन खाकर कृष्ण ने इसी पेड़ में हाथ पोंछा था। यह देखिए, पेड़ में कैसा गड्ढा-सा हो गया है। और यह जो पेड़ में अंडानुमा-से बने हैं, ये हैं शालग्राम शिला।

'मालूम है सांझ के बाद यहां कोई रह नहीं सकता। सेवाकुंज है न। यहां लीला करने के लिए कृष्ण रोज रात को आया करते हैं। उस समय राधा किसी को यहां रहने नहीं देती, अपने हाथ से कुंज के दरवाजे को अंदर से बंद कर लेती हैं। अभी-अभी इतने बंदर यहां देखे न, ये सब नहीं रहेंगे। कोई सुआ तक नहीं रहेगा। कोई छिप छिपाकर रह भी जाय तो वह जिंदा नहीं बचेगा। एक बार एक साधु को लीला देखने की साध हुई। वह छिपकर वहां रह गया। उसके बाद ज्यों ही जरा रात हुयी कि किसने जो उठाकर उसे दीवाल से बाहर फेंक दिया, पता नहीं। साधु केवल यही बकता रहा मेरे बदन पर काहे की आंच लगी, सब जलता जा रहा है। कहते कहते तड़प तड़प कर वह मर गया।

'और एक बार एक भक्त लीला देखने के लिए इसी तरह से छिपकर रह गया। राधा ने कहा, ठीक है। तुम भक्त हो। देखना चाहते हो तो देखो। मगर किसी से कुछ कहना नहीं। दूसरे दिन लोगों ने आकर उसे पकड़ा हां जी क्या देखा, बताओ न ? भक्त ने कहने की कोशिश जो कि तो देखा वह गूंगा हो गया है। आंखों से समझाना चाहा, देखा, आंखें अंधी हो गई हैं। इस तरह से एक एक करके सब जाते-जाते आखिर वह मर ही गया।'

लीलागोविंद राधादामोदर नीलमाधव बंशीवदन—श्यामसुंदर के पास देख आयी। प्रत्येक मंदिर में सचल और अचल विग्रह ! अचल विग्रह मन्दिर के भीतर अटल रहते हैं। और प्रतिनिधि सचल द्वारा सब उत्सवों में बाहर आकर सबको दर्शन देते हैं। यात्री गण जो जितनी देर चाहते हैं, सचल विग्रह को जीभर देखकर अपनी आस मिटाते हैं। यहां भी वही हैं। मंदिर के सामने रेलिंग से घिरे बरामदे पर सचल श्यामसुंदर हैं। आज सबने उनपर अबीर छींटा है। बरामदा अबीर से लाल हो गया है। प्रणाम करके लौटी आ रही थी। रेलिंग से सटी एक प्रौढ़ा विधवा

खडी थी। उसके बाए हाथ की तलहथी म कागज की एक पुडिया थी। उसम स थोडा-सा अबीर निकालकर उसने श्यामसुदर से कहा 'तुम्हारे दाना चरणा म जरा अबीर दे दू ?'

गोबिदजी के पास ही राधागोबिद का मदिर। मदर रास्ते को छोडकर गली स चल रही थी जल्दी पहुच जाएगे। स्त्रिया दौडती जा रही हैं। लाल कार की साडी वाली बहू धक्का देकर निकलती हुई मगिनी स बोलती गई 'अरे बहना श्रीराधा की जसी जटिला-कुटिला थी मरे भी वही। सहज ही निकल सकती हू भला ?'

मदिर के दोना तरफ सीढी। एक से जाना, दूसरी मे निकल आना। इसके अलावा भीड सम्हालने का उपाय नही। आते आते सुना था, जाते जाते एक वष्णवी दूसरी से कह रही थी 'श्रीराधा की लीला कैसी ! आज वह सुबल बनी मे सजी हैं। आज चरण-दर्शन। देखकर जी जुडाता है।

लेकिन सुबल-वेश कहा ? यह तो साडी वाली राधा हैं। और दिन नीचे तक लटकता घाघरा रहता ह शायद। एक कदम आगे बढकर और जरा सामने जाकर यह हाल की कोशिश की। खुली पीठ वाली वह काली औरत फटकारती हुई पीछे हट आयी, 'मुहझौसी मुझे बेवा कहती है। पूछती हू, तेरे क खसम हैं ?'

मालूम नही आपस का क्या माजरा है इनका ! जिस विधवा के लिए यह फब्ती कसी जा रही थी, वह उस समय हाथ जोड कर राधागोविदजी के सामने खडी थी। उसने सुना और हसकर बोली इधर आ, दिखा दू कितने हैं।

मानसिंह का मदिर देखकर चौडी सीढी से नीचे उतर रही थी, बडे रास्ते पर। निर्मल आकाश मे पूनो का गोल चाद ठीक हमारे आमने-सामने। ठीक जसे नीली साडी के आचल म ढका श्रीराधा का मुखडा हो !

चादनी धुले इस उग रास्ते से होती हुई डेरे लौट रही थी। उस सफेद जोत मे खद्दर की साडी धप् धप् चमक रही थी। उलट-पुलट कर अपनी हथेली को देखा पर रग, आचल से रगडकर मुह को देखा—कहीं भी, जरा भी रग नही लगा था। बाहर बिलकुल साफ-सुथरा।

डेरे मे लौट कर सात रग म रगे तसर के जवाहर जाकट को उतारते हुए दादा ने कहा 'इस तरह भौंहें तानकर चलती रही कि सबन समझा, तुम्ही शायद ब्रह्मा हो।'

21-5-8

लौटा घर में गयी तो देखा, छानी ने अंदर से धर-धर अबीर झरने लगे। कुछ पता नहीं कि यह किसने डाल दिया।

यह तो जानती थी कि कुंभ चार जगह में होता है। लेकिन वृन्दावन में भी कुंभ होता है यह तो नहीं मालूम था इसी बार मालूम हुआ।

इसका चलन शायद रूप गोस्वामी ने किया। उन्होंने कुंभ मेले के प्रधानों से प्रार्थना की कि श्रीधाम वृन्दावन राधागोविन्द के नित्य विहार का स्थान है, पद्मपुराण, भागवत आदि में इसकी महिमा वर्णित है। और धाम करके यह महाप्रभु के बड़े आदर का स्थान है। इसलिए कुंभ मेले का अनुष्ठान यहां भी होना चाहिए।

पहले तो उन लोगों ने बड़ी आपत्ति की। यहां जो बात स्मरणातीत काल से होती चली आई है उसमें परिवर्तन परिवर्धन नहीं हो सकता।

इस पर रूप ने शास्त्रों की युक्तियां से उसकी जरूरत को साबित कर दिखाया। आचार्यों में फिर विचार में कुछ रहत नहीं बना। यह तय पाया कि हर तीन साल पर कुंभ जैसे चार जगहों में हुआ करता है वैसा ही होता रहे। उसमें रद्दोबदल की कोई गुंजाइश नहीं है। लेकिन जिस साल हरिद्वार में पूर्णकुंभ होगा उस साल वृन्दावन में भी कुंभयोग हुआ करेगा। वृन्दावन में एक महीना पहले साधुओं का सम्मेलन होगा, सभी साधु संत एक साथ मिलकर व्रज की पचकोसी परिक्रमा करेंगे और श्रीपंचमी एकादशी तथा होली के दिन विशेष योग में यमुना-स्नान करेंगे। और तबसे ऐसा ही होता चला आ रहा है। सभी सम्प्रदाय के संत महात्मा प्रति बारह वर्ष पर यहां इकट्ठे होते हैं और होली के दिन अंतिम स्नान करके हरिद्वार चले जाते हैं।

यह असंभव केवल रूप की बदौलत ही संभव हुआ। सो कि वह विनय के अवतार थे। महापंडित रूप अपने नाम के साथ कभी गुसाईं शब्द तक का व्यवहार नहीं करते थे। मैंने सुना है 'भक्तिरसामृत सिंधु' नाम के ग्रंथ में उन्होंने अपना नाम 'वराक रूप' यानी 'क्षुद्र रूप' लिखा है।

चन महाराज की यही कुटिया है न ?

बड़ी-दी ने कहा, 'चलो अंदर चलकर उनके दर्शन कर आए। जानती हो,

यहां के संतों में ये एक बहुत ही बड़े भजननिष्ठ महात्मा हैं। इस बार इन्हीं के लिए यहां इतने साधुओं का समागम हुआ। ये नहीं चाहते तो यहां हो सकता। स्वाधीन भारत की सरकार ने एलान किया था मेले में हाथी नहीं लाए जाएंगे। कोई गांजा नहीं पिएगा। हैजा चेचक का टीका लिए बिना किसी को आने नहीं दिया जाएगा। यह सब सुनकर साधु लोग तो बौखला उठे। हाथी, टीका, सुई—यह सब तो खैर गनीमत है मगर बगैर गांजा के ये लोग कैसे रहेंगे? ऐसा कड़ाके का जाड़ा इतने इतने प्राकृतिक दुर्योग—इन सबसे लड़ने के लिए इनके पास गांजा ही तो एकमात्र सहारा है। आखिर वन महाराज ने ही साधुओं और सरकार के बीच बीच-बचाव किया। साधु लोग हाथी भी ला सके गांजा की भी छूट हो गई—और सुई टीका तो देख ही रहे हो हर नुक्कड़ पर सर्टिफिकेट नहीं दिखा पाए तो एक ही आदमी को कई कई बार लगा देता है!

वन महाराज कुटिया में नहीं थे यमुना-तट पर साधु मंडली में गए थे। अभी-अभी तो हम वहां से होकर आए फिर जाएं उतनी दूर?

धर्मी दी बोली 'छोड़ो भी। नसीब में दर्शन लिखा नहीं है। इसी को मान लेना ठीक है।'

विराट फाटक। लाल बाबू के पत्थर के काम किए हुए मंदिर का शिखर कितनी दूर से दिखाई पड़ता है! किस्सा है एक दिन शाम को लाल बाबू अपनी जमींदारी में घूमने के लिए निकले थे। उन्होंने सुना, मार्ग में एक घर में धोबी की बेटी अपने बाप से कह रही थी बाबू जी, वासना में आग दो न बेर जो डूब चला। उधर भट्ठी को वासना कहते हैं। कानों में यह बात आई और लाल बाबू चौंक उठे। ठीक ही तो! यह धोबी की बिटिया तो ठीक ही कह रही है। मेरे जीवन का सूरज भी तो डूब चला कहां आज तक तो वासना में आग नहीं दी गई! तो क्या करें? सोचते-सोचते वह बेचैन हो गए। वृंदावन आ गए—सद्गुरु की खोज में।

बड़ी बड़ी कसौटियों पर चढ़ा कर उनके सारे गर्व को चूर चूर कर धूल में मिलाकर तब गुरु ने लाल बाबू पर कृपा की। यह भी एक अजीब कहानी है।

इस मंदिर में नित्य बड़ा ही उत्कृष्ट भोग लगता है। हर रोज शाम को पच्चीस कंगलों को भोजन कराया जाता है। सदा से यह व्यवस्था है।

लाल बाबू का कुंज रास्ते में ही मिला। धीमा जी कई दिन वृंदावन में रही थीं यहीं रही थीं।

जगदानंद स्वामी ने बता दिया था वह घर बंद ही पडा रहता है। लोग बाग अंदर नही जाते। किसी को विशेष कुछ मालूम भी नही है। पुजारी से कहकर ताला खुलवाकर देख लीजिएगा।'

अंगना का आकाश लताओं से छाया हुआ सा। दोमंजिला मकान। खोज ढूंढ कर हमने उस खास कमरे को निकाला। अंदर गए। दुतल्ले पर एक और लंबा सा एक कमरा। एक दीवाल में बस एक ही दरवाजा। सड़क की ओर वाली दीवाल पर लोहे के सीखचों वाली दो तीन खिड़कियां। बाकी दो दीवाल में न दरवाजा, न खिड़की। शायद हो कि उधर कोई खास घर हो इसलिए खिड़की दरवाजा नही लगाया गया है। दीवाल पर कांटी से झूलती हुई फ्रेम में बंधी श्रीमां की एक तसवीर। होली के दिन किसी ने अंदर आकर श्रीमां की मांग और पैरों में कांच के ऊपर से ही जरा सा अबीर लगा दिया है। इस तरह से स्मरण करने का मन का स्पर्श बड़ा ही अच्छा लगा। भूल और धूल भरे बंद कमरे की एक अजीब सी बू में उसने मानो खुशबू बिखेर दी। धूल भरे फर्श पर पैरों के निशान उगाती हुई चौकठे से बाहर निकली। धीरे धीरे किवाड़ के पल्ले भिड़का दिए। लिकलिक-सी लता की एक फुनगी टूट दरवाजे की फांक से अंदर को घुस गयी थी। मैंने देखा फुनगी पर माधवी के दो फूल फूले हुए थे।

एक एक जगह पर मन ठिठककर रुक जाता आगे नहीं बढ़ा चाहता—क्या पता, भीड़ में क्षण के इस संचय को खो दें कहीं! मगर आगे बढ़ना ही पड़ा। संचय का लोभ ही मन को अंदर से ही ठेलता रहा।

ब्रज के एक एक रजकण में भक्त प्राणों की महिमा मिली हुई है अंत नहीं उसका। महाप्रभु ने सर्वांग में इस धूल को लगाया था और हम उसी धूल से बचने के लिये दोनो हाथों कपड़ा सम्हालकर बच बच कर राह चलते हैं! मन को ठेस सी लगती मगर कोई उपाय नही था।

मन में उथल पुथल-सी मची रही। हम श्रीनिवासाचार्य के कुंज में जा पहुंचे। माटी के टीले पर अगल बगल खड़े नीम और इमली के दो बहुत ही पुराने पेड़—उनकी जड़ों ने टीले पर अपनी बुनियाद बेतरह मजबूत कर ली थी। उसी के नीचे श्रीनिवास के विग्रह का मंदिर। एक बार इस पेड़ को काटने की कोशिश की गयी थी। पेड़ के तन पर जैसे ही कुल्हाडी की चोट पड़ी कि खून का फव्वारा छूट पड़ा। फिर तो पेड़ काटा नही गया।

पुजारी ने बताया, वनविष्णुपुर के राजा ने बीच रास्ते में जो सारे ही गोस्वामी ग्रंथ लूट लिए, उसका ठाकुर ने तीन दिनों तक रक्त का पिंड गिराकर प्रायश्चित्त किया। ये सारी बातें जानते तो होंगे। यही वह श्रीनिवास प्रभु हैं। दो संदूकों में ठसाठस धर्मग्रंथ भरकर जीव गोस्वामी ने इन्हें धर्मप्रचार के लिए गौड़ भेजा था। आगे चलकर धर्मग्रंथों को लूटने वाले राजा ही श्रीनिवास प्रभु के भक्त हो गए। बोले—प्रभु, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? प्रभु ने कहा—इस राज्य में आते हुए रास्ते में धर्मग्रंथों से भरे मेरे दो संदूक लुट गए। राजन्, अगर आप चाहें, तो आप अपने लोगों से उनका उद्धार करा दे सकते हैं। मैं आपसे इसी की आशा रखता हूँ। राजा ने कहा—दो संदूक? प्रभु, एक दिन मेरे राज ज्योतिषी ने गणना करके बताया कि बेशकीमती रत्नों से भरे दो संदूक इस राज के भीतर से गाड़ियों पर जा रहे हैं। मैंने सुना और अपने लोगों को भेजकर उन्हें लुटवाकर अपने कोषागार में डलवा दिया। अभी तक उन दोनों संदूकों को खोलकर देखने का अवकाश नहीं मिला है। आप चलकर देखें ये वही संदूक तो नहीं हैं?

संदूकों को देखकर प्रभु तो खुशी से नाच उठे। बोले—महाराज, आपके ज्योतिषीजी ने गलत नहीं बताया। इनमें सचमुच ही अनमोल रत्न भरे पड़े हैं। जिनके द्वारा मानव जीवन की परम सार्थकता लाभ की जा सकती है, जिनसे सारी कमियाँ पूरी हो सकती हैं। असल में रत्न तो यही है। अर्थ का अर्थ ही अभावों को पूरा करना है। लेकिन राजन्, अर्थ क्या वास्तव में अभावों को पूरा कर सकता है? वह तो अभावों को बढ़ाता है। जिस अनुपात में अर्थ आता है आदमी को उसका कई गुना अभाव दबोच बैठता है। राजन्, ये ग्रंथ आपके राजभवन में आ गये, आप धन्य हैं।

राजा बेचैन होकर कटे पेड़ की नाईं उनके पैरों पर गिर पड़े। बोले, मैं नाम का राजा हूँ, काम का डाकू। आप मुझे अपने इन चरणों के आश्रय से वंचित मत कीजिएगा।

पुजारी जी यहीं रुक गए। बड़ी देर तक चुप्पी बनी रही।

दादा ने कहा, तो आज आज्ञा दीजिए। आपको सुनने-सुनाने में हमलोगों ने बड़ी तकलीफ दी।'

पुजारी ने कहा, 'अजी तकलीफ की क्या बात! आप लोगों को सुनाने में मुझे भी फिर से ठाकुर की कहानी सुनने का सौभाग्य मिल गया। यह आपलोगों की

कृपा से ही तो सम्भव हुआ। आपलोगों ने तो बंधु का काम किया। मैं प्रणाम निवेदन करता हूं स्वीकार कीजिए। कहकर दोनों हाथ जोड़ते हुए पुजारी ने जितना मुझे रुलाया 'अरे रे यह क्या कर रहे हैं आप'—कहते हुए दादा ने उससे ज्यादा ही मुझे रुलाया।

मानसिंह के तीन मन्दिरों में से एक अभी देखना बाकी ही रह गया था—गोपीनाथ का मंदिर। मानसिंह से पहले गोपीनाथ जिस मन्दिर में थे, वह बड़ा पुराना और जर्जर हो गया था। अब उसमें श्रीगौरांग हैं। पान खाने से बूढ़े पुजारी पोपले मुंह में प प करके बोलते थे। बोले 'पहले इन्हें देख जाइए। राधा का रूप सोचते-सोचते गोविन्द गौरांग हो गये।

गोपीनाथ बगल के मंदिर में हैं। गोपीनाथ—जिनका वक्षस्थल ही प्रधान है गोपियों का आश्रय है—लेकिन उनका वक्षस्थल कपड़ों में इस कदर ढका?

बड़ी दी बोलीं अजी असली मूर्ति तो यह नहीं है न। वह गोपीनाथ तो जयपुर में हैं। वहां जाकर व्रजनाभ के उन गोपीनाथ की असली मूर्ति देखना। गोपीनाथ को स्वप्नादेश से वंशीवट के नीचे मधु पंडित ने पाया था।

राधारमण का मन्दिर बन्द था। भोग आरती हो रही थी। पन्द्रह मिनट के लगभग प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। पक्के के प्रांगण के पास ठंडे में पर लटकाकर बैठ गयी। एक बहुत ही सुन्दर वैष्णव स्नान के बाद दोनों हाथ सपाट सामने की ओर बढ़ा कर मंदिर के सामने साष्टांग लोट पड़े। कपाल पर चन्दन तिलक। मैंने इतने प्रणाम देखे हैं, इतना प्रणाम किया है—मगर प्रणाम के सौन्दर्य को ऐसा निखरते कभी नहीं देखा। भीतर ही गौरांग का रूप मेरी आंखों के सामने थिरक गया। इसी उम्र में रूप का आतुर भंडार लिए वह भी तो इसी तरह से व्रज के प्रांगण में आ पहुंचे थे।

महाप्रभु के प्रिय पार्षद—

श्री रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ।
श्री जीव, गोपाल भट्ट, दास रघुनाथ॥
इन छे गुसाँई ने जब किया व्रजवास।
राधाकृष्ण नित्यलीला का किया प्रकाश॥

इन्हीं छह गोस्वामियों में एक थे गोपाल भट्ट दक्षिणी ब्राह्मण, ये श्रीराधारमण उन्हीं के देवता हैं।

सुनने में आया है ये राधारमण पहले एक शालिग्राम शिला थे। एक बार एक कोई धनी वृंदावन आये। उन्होंने सारी मूर्तियों को वस्त्र और अलंकार से सुशोभित किया। वह गोपाल भट्ट के पास भी आए। उनकी मूर्तियों को भी वस्त्राभूषण से सजाने की इच्छा प्रकट की। इस पर उन्होंने कहा, 'मेरे देवता तो शालिग्राम हैं। इनके शरीर पर वस्त्राभूषण धारण की गुंजाइश कहां है?'

गोपाल भट्ट रात में पूजा पाठ के बाद शालिग्राम शिला को एक डिब्बे में रख दिया करते थे। उस दिन रात में ठाकुर को डिब्बे में रखते रखते सोचने लगे, 'अहा कहीं मेरे देवता के नाक मुंह आंख कान, हाथ पांव होते, तो इन्हें भी कपड़े-गहनों से अन्य मूर्तियों की तरह कैसा सजाया जा सकता था।'

देवता भक्त की कामना को शायद अधूरा नहीं रहने देते। गोपाल भट्ट ने सवेरे जब शालिग्राम शिला के डिब्बे को खोला, तो देखा डिब्बे में काले पत्थर की एक मूर्ति है। गोपाल भट्ट तो आनंद से अधीर हो उठे। उन्होंने तुरंत दाता को बुलवा भेजा। कहा, 'आपके वस्त्र और आभूषणों से सजने के लिये ही क्या मेरे प्राणों के देवता ने रूप धारण किया है?'

ब्रजरमण ने कहा 'इसका प्रमाण देखना हो तो विग्रह की पीठ की ओर देखिए शालिग्राम शिला का कुछ अंश दिखायी देता है। जन्माष्टमी के उपलक्ष में जो अभिषेक होता है उसमें जनसाधारण उसे देख पाते हैं।'

द्वार अब खुलेगा। घंटा बजा। उठकर सामने आकर खड़ी हुयी। घंटे की आवाज सुनते ही जो जहां थे आस पास से दौड़ दौड़ कर आने लगे। जादू का करिश्मा हो जैसे, प्रांगण स्त्री पुरुषों से देखते ही देखते भर गया। ऊंचे बरामदे पर ठाकुर की वेदी। छोटी सी मूर्ति। साज सज्जा से झकमका रही थी। दूर से फूल-बेलपत्ते फेंककर अंजली चढ़ा रहे थे लोग। मुंह से स्तव पाठ कर रहे थे, सामने की ओर एक टक ताक कर जिससे जितना बन रहा था ठाकुर को देख ले रहे थे—बस, अब आंखों की ओट होने ही वाले हैं।

पट पीठ एक—ऐसे दो बूढ़े दौड़ते हुए वहां आये। केवल एक नजर दर्शन कर लेना चाहते थे। उनके मुख पर कैसा आग्रह! किस प्रकार वे आगे बढ़ें? भीड़ में फांक खोजकर गरदन ऊंची करने लगे। अब समय अधिक नहीं था। एक ने

दूसरे को आगे बढ़ा दिया, 'अहा तू ही देख ले। मैं बगल की ओर खिसक आयी। उनके लिए जगह बना दी। उनके पिचके गालों और पोपले मुँह में परितृप्ति की कैसी प्रसन्नता खेल गयी! दर्शन के आनंद से दोनों आँख टलमल करने लगीं। उनके आकंठ प्यासे प्राण जुड़ा गए। सफेद बालों वाले घुटे सर को हिलाने और देवता को देखने लगे। देखकर मानो खूब पसंद आया उन्हें—ठीक जैसे ऐसा ही देखना चाहा था।

बड़ी दी बोलीं 'हाय राम यह क्या किया? मंदिर का द्वार बंद हो गया और तुमने अंजलि नहीं दी?'

मंदिर खुलते ही बड़ी-दी ने मेरे हाथ में फूल और बेलपत्ते दे रक्खे थे। पर—। मुट्ठी के फूल-बेलपत्ते सबकी नजर बचा कर सीढ़ी के पास रखकर बाहर चली आयी।

एक बड़ी उम्रवाली विधवा अपने आप हमारे पास आयी और बोली, 'इतनी दूर से आयी हो और गिरधारी को न देखा ऐसा भी क्या! गिरधारी को देखती जाओ पास ही तो हैं।

बड़ी-दी ने पूछा 'आप चलेंगी?'

—मैं वहीं से आ रही हूँ। अब नहीं जाऊँगी। मगर यही तो रास्ता रहा, सीधे जाकर बाएँ मुड़ जाना। बस, उसके बाद दो ही डग जाना है।'

मंदिर में गयी। मगर वहाँ तो गोकुलानंद राधाविनोद थे। गिरधारी कहाँ?

उड़िया पुजारी ने कहा है। है। सवा रुपया दक्षिणा चाहिए।

सवा रुपया लेकर पुजारी मूर्ति के सामने के परदे को खींचकर अंधेरे कोने में चला गया। जरा देर में हाथ में पीतल का एक बक्सा लिए दरवाजे के पास आया।

कौतूहल से हम उत्सुक हो उठे पता नहीं, इसमें से क्या निकलेगा। देखने में कैसा होगा जाने।

पुजारी ने आगे पीछे देख लिया, उसके बाद धीरे से बक्स को खोल कर उसमें से सील-मुहर जैसा चौकोर एक छोटा-सा काला पत्थर निकाल कर कहा 'देखो।

यह गिरि गोवर्धन का वही शिलाखंड है जिसे हाथ में लेकर, छाती पर रखकर महाप्रभु जप किया करते थे, नाक पर रखकर उसकी गंध लेते थे। पुरीधाम के

गभीराघाट मे गले मे गुजा की माला डाले उन्होंने तीन साल तक इसी तरह से जप किया था।

अगूठे और तजनी से सदा पकड़ते रहने से शिला के एक ओर अगूठे की साफ छाप उग आयी है—जैसे किसी ने कच्ची मिट्टी पर अगुली लगाई हो।

पुजारी ने अपना अगूठा उस निशान पर रखकर कहा देखो, इस तरह से इन पर निशान पड़ गया है।

बाद म महाप्रभु ने अपने हाथों जप की गुजामाला और यह शिला रघुनाथदास को दे दी थी।

रघुनाथ की खुशी का ठिकाना नहीं। सोचा प्रभु ने—

इस शिला से दिया मुझे गिरि गोवधन।
गुजामाला देकर दिया राधिका चरण।

महाप्रभु ने कहा था इस शिला को साक्षात ब्रजेंद्रनदन मान कर इसकी सात्विक पूजा करना—जल तुलसी आदि अष्टमजरी देकर श्रद्धा से पूजा करना।

अन्तिम दम तक रघुनाथ ने इस शिला और माला को धारण किया। उसके बाद से गोकुलानद मंदिर म इस शिला की सेवा होती आ रही है।

बड़ी दी ने कहा, 'जप की माला जैसे बैंक का जमा रुपया हो। देखो तो सब जलाते हैं, पर माला को नहीं जलाते। इसे उपयुक्त अधिकारी को दे जाते हैं—यह बैंक का क्रेडिट बैलेंस लेकर जप शुरू करता है। यही जप की माला रामकृष्णदेव ने श्रीमा के चरणों मे अर्पित की। इसी से समझ लो, वह कितनी बड़ी शक्तिशालिनी थी।

निकुजवन देख चुकी। निधुवन बाकी रह गया था। एक वन को देखा रात के अधेरे म, दूसरे को देखा दिन के प्रकाश म।

निधुवन भी निकुजवन की तरह ऊची दीवारों से घिरा है—रास्ते से उस पार। गपशप करते एक गुजराती सज्जन थैली से अमरूद निकालकर लड़कों को खिला रहे थे। शशी महाराज की मतकता याद आ गई। मैंने अपने कधे का झोला उतार कर ब्रजरमण को थमा दिया। क्या पता उसमें कुछ खाने की चीज

है, यह समझ कर मुझ पर टूट पड़ें ! ब्रजरमण वैष्णव हैं, वानरो को इतना समझ है।

सारा वन ही मुक्तालता से छाया हुआ है। जैसी लताए हम आमतौर से देखा करते हैं, यह वैसी लता नही। जड पेड की तरह मोटी, डालें भी खासी मोटी मोटी—परतु सब कसे तो बिथुर कर एक-दूसरे से जकड कर झूल पडी हैं—जैसे स्त्रिया का झुड कधे पर हाथ रखकर न चते-नाचते सामने की ओर गोल होकर झुक पडता है। एक एक पौधे से ही पूरी एक झाडी बन गई है। पूरा का पूरा वन ही झाडियो से ठसाठस। पगडडी बडी साफ-सुथरी, गोया किसी ने बुहार कर रखी है। कही कोई सूखा पत्ता, कोई तिनका नही। हरी झाडियो के नीचे-नीचे साफ पगडडिया मानो लुकाछिपी खेल रही हो। कुल मिला कर बहुत ही सुदर, चतुराई जडा भाव।

ब्रजरमण ने कहा, 'यह बडी अनोखी महिमा है। सारे पेड लता होकर व्रज की धूल मे लोट रहे हैं !'

बदन मे मिरजई, माथे पर लाल पगडी—एक पडा विभिन्न उम्र की ग्रामीण स्त्रिया के बीच खडे हाथ रहाथ हिला हिला कर कह रहा था—'यही है मुक्तालता। सावन के महीने म मुक्ता के लाल-लाल दाने इन पर झलमल करते है। उन्हे देखकर यात्रियो का जीवन सार्थक होता है।'

सुनकर ताज्जुब से आखें बडी-बडी करके वह स्त्रिया झाडियो की तरफ ताकने लगी।

हरे हरे छोटे छोटे फल शायद सावन म पकते होगे।

हम लगातार झाडियो के नीचे-नीचे चल रहे थे। भाव विभोर होकर ब्रजरमण ने कहा, 'सुनते हैं, वृदावन क पेड उर्ध्वमुखी नही होते। इस बात की सच्चाई यही मालूम होती ह।'

साधु महात्माओ का कहना है वृदावन की धूल के परस के लिए लता-पेड लालायित रहते हैं। उद्धव ने भी कहा था, 'जन्म लू तो व्रज मे लता गुल्म होकर लू। क्योकि इस धूल म कृष्ण के प्रेम म पागल गोपियो के चरणो की धूल मिली हुई है।'

अपने झुड के साथ वह पडा भी हमारे आगे-आगे चल रहा था। पुराने पेड की जो मोटी डालें झुककर जमीन से लग गयी हैं, उनमे से एक डाल को दोनो हाथों

स पकडकर पंडे ने यात्री स्त्रियों से कहा, 'यह जो पेड़ की डाल देख रही हो, यह डाल नहीं।'

कदम रोक कर मैंने कान उधर लगाया।

पंडे ने कहा कृष्ण जी यहां लीला करने के लिए आए। देवताओं ने कहा, हम लोग भी देखने के लिए जाएंगे। कृष्ण जी ने कहा, लेकिन आपलोग इस रूप में तो जा नहीं सकते। लोग पहचान लेंगे। इसलिए देवगण यही डाल होकर यहां आए। देखो न, पत्ते तो खैर माटी पर गिरते ही हैं, मगर डाल कभी जमीन पर गिरती है ? मगर देखो, यहां डालें भी माटी पर लोट रही हैं। ब्रज में इस तरह से देवगण कृष्ण के चरणों की धूल पाते हैं। यहां प्रणाम करो एक साथ जाने कितने देवताओं को प्रणाम करना हो जाएगा।'

स्वामी हरिदास ने इसी निधुवन में ही बांके बिहारी को पाया था। स्वामी हरिदास यहां भजन किया करते थे। एक दिन उन्होंने सपना देखा, कृष्ण जी कह रहे थे, 'मैं यहीं पर माटी के नीचे हूं तुम मुझे बाहर निकालो।' दूसरे दिन उस जगह की माटी हटाते ही बांके बिहारी निकले। बांके बिहारी को देखकर वैष्णव गा उठे थे—

'जय-जय राधा बंकबिहारी, राधा बंकबिहारी राधे
हरिदास स्वामी के प्राणधन हे।'

यही हरिदास स्वामी अकबर के दरबार के मशहूर गायक तानसेन के गुरु थे।

एक बार अकबर ने तानसेन से पूछा, 'आपके गुरु कौन हैं ? जिनके शिष्य ऐसे गायक हैं उनके गुरु जाने कैसे होंगे !'

कद्रदां बादशाह उनको देखने के लिए उतावले हुए। तानसेन अकबर को वृंदावन ले आए। स्वामी हरिदास ने दोनों को आदर से बिठाया।

तानसेन ने तानपूरा लेकर एक गाना गाया। उनका गाना खत्म हुआ कि गुरु ने उसी गीत को तानपूरे पर बिहारी जी के सामने गाया। सुनकर अकबर मुग्ध हो गए।

उपयुक्त शिष्य के उपयुक्त गुरु। बादशाह आनंद से विह्वल होकर लौट गए। दरबार में आकर उन्होंने तानसेन से फिर उसी गीत को सुना। बोले, यही गीत

मैंने तुम्हारे गुरु के गले से सुना। उसमे एक दूसरा ही रस था। तुम्हारे गले मे वह रस कहा है ?'

तानसेन ने कहा, 'जहापनाह, मैं गाया करता हू दिल्लीश्वर की दिलवस्तगी के लिए और मेरे गुरु गाते हैं जगदीश्वर को आनद देने के लिए।'

निधुवन मे ही स्वामी हरिदास की समाधि है। माटी की छोटी-सी एक कुटिया। उनके अपने हाथ का तानपूरा दीवाल से टगा है और टेढी मेढी एक छोटी-सी लाठी—चलते थे तो यह लाठी उनके हाथ मे रहा करती थी।

भीनी भीनी सी महक आयी।

एक भक्त वैष्णव समाधि की माटी को जतन से लेप रहा था, फर्श को दीवाल का—मिट्टी म चोआ-चदन मिला हुआ।

गुरु हरिदास स्वामी मधुर भाव के ही एक निष्ठ सेवक थे। अपने को राधा की सखी रूप म सोचा करते थे। मैं मन-ही मन उनके भाव की गभीरता की थाह रही थी।

किस्सा सुना था, एक दिन स्वामी हरिदास यमुना म स्नान करके तट पर बैठे भजन कर रहे थे इतने मे उन्हे ढूढता हुआ उनका पजाबी शिष्य वहा पहुच गया। गुरु ध्यान म मग्न थे। शिष्य को धीरज धरते नही बन रहा था। वह बड़े कष्ट स एक शीशी कीमती इत्र कही से ले आया था। उसने गोदी पर रक्खे गुरु के खुले हाथ पर उसे रख दिया। वह तमाम रास्ते सोचता हुआ आया, इसे पाकर गुरु किस कदर खुश होंगे। इसी से वह बिहारीजी की सेवा करेंगे। लेकिन इत्र की शीशी जसे ही गुरु के हाथ मे पहुची, उन्हाने उसकी ठेपी खोली और सारे इत्र को बालू पर उडेल दिया।

शिष्य बेचारा हाय हाय कर उठा। यह क्या हो गया ! चूकि मैं विलास की सामग्री ले आया, गुरु ने क्या इसीलिए इसे फेंक दिया ? उन्हे तो इस बात की भी खबर नही हुई कि मैं कितनी कीमत देकर यह इत्र ले आया था। उन्होंने इस महज नाचीज समझ कर ही इसकी नाकदरी की ?

हरिदास ध्यान तोडकर उठ खडे हुए। सामने शिष्य को देखकर हसते हुए कुशल-क्षेम पूछा।

शिष्य का चेहरा मुरझा गया था।

हरिदास जी ने पूछा, 'तुम इतने उदास क्यों दीख रहे हो ?'

शिष्य ने कातर होकर इत्र की दुर्दशा की बात खोल कर कही।

सुनकर हरिदास हो-हो करके हंस उठे—'आ, यह बात ! मैंने तो और ही सोचा था। देखा यमुना के तट पर बिहारीजी का होली खेलना शुरू हो गया है—एक ओर सखाओं सहित बिहारीलाल, दूसरी ओर सखियों समेत मरी राधा जी। मैं राधा जी की तरफ था। बिहारीलाल जी ने जब पिचकारी लेकर राधा जी पर हमला किया, तो मैंने अपने हाथ के पास कुछ नहीं पाया। सोचने लगा अब क्या करूं ! इतने में एक सखी ने मेरे हाथ में इत्र की एक शीशी दी। मैंने झट शीशी की ठेपी खोली और सारा इत्र बिहारीलाल जी के माथे पर उड़ेल दिया। बिहारीजी एड़ी चोटी इत्र से नहा गए। हाथ में पिचकारी लिए वह पीछे हट गए। खेल में राधा जी की जीत हुई। हमलोग खुशी से अधीर होकर ताली बजाने लगे।

'अब मैंने समझा कि इत्र तुमने दिया था। खैर दिया लेकिन बड़े ऐन मौके पर था। इसमें दुखी होने की कोई वजह नहीं है। पूरी शीशी का इत्र बिहारीजी पर ही डाला गया है, तुम्हारा परिश्रम और खर्च, सोना सार्थक हुआ।'

फिर भी शिष्य का मुखड़ा खिला नहीं। सोचा, हो सकता है, गुरु मुझे सांत्वना दे रहे हैं।

हरिदास ने कहा, तुम फौरन मंदिर में जाओ। बिहारीजी के दर्शन करो—आप ही समझ जाओगे।'

शिष्य दौड़ा-दौड़ा मंदिर गया। देखा, बिहारीजी का सर्वांग उसी के इत्र से शराबोर है।

मन में द्वंद्व-सा होने लगा। यह इतनी जो कहानियां सुनती हूं—सब सच हैं ? जगदानंद स्वामी—जिनके बारे में शशी महाराज ने कहा था, 'भक्ति और ज्ञान का कहीं एक जगह समन्वय है तो वह उन्हीं में है। मन में कोई शंका हो, तो उनसे खोलकर पूछ लीजिएगा। स्वामीजी बूढ़े हैं। बदन का रंग टक-टक। चेहरे पर वैष्णव सुलभ भाव, आंखों में ज्ञान की दमक। बोले भक्ति से जो संभव है ज्ञान के द्वारा उसके पास भी नहीं पहुंच सकता है कोई। हम तो खैर किस खेत की मूली हैं—कितने बड़े-बड़े ज्ञानी गुणी लोग विचार करते-करते हैरान हो

गये हैं, थाह नहीं मिली। यह चीज चिंता से परे है। अंतर मे इसकी अनुभूति होती है। रत्ती भर भी शंका नहीं रह सकती।

'उन्हें जो जिस रूप मे चाहते हैं, वह उसी रूप मे उन्हें पकडाई देते हैं। एक वाक्या बताऊं। एक आदमी ने उन्हें अपने नन्हें बच्चे के रूप मे चाहा था। और वह शिशु होकर आये। शिशु गोपाल खाट पर लेटे थे, इतने मे खाट के नीचे एक बिल्ली बोल उठी। बिल्ली के बोलते ही बच्चा रो पडा। भक्त हंसा। बोला, तुम त्रिभुवन के स्वामी हो और बिल्ली के म्याऊ से रो पड़े, यह कैसी बात ! बस, देखा कि शिशु वहां नहीं है। शिशु रूप मे कामना करके उन्हें त्रिभुवनेश्वर दिखे, यही संशय था उसे।'

दोपहर को सभी आराम कर रहे थे। इसी मौके से कंधे पर झोला लिये मैं यमुना के चौर पर चली गयी। बालू तप गया था। कूद-कूद कर चल रही थी। तलवे मे फफोले पडने लगे।

ऐसे ही मे सर पर दोपहर का सूरज, चारो ओर गोयठे की आग सुलगाये तपी रेती पर कितने ही साधु 'पंचातप' मे बैठे थे। कठोर तपस्या। एक तो यों ही गरम हवा के झोंके, तिस पर चारो ओर आग जलाये घटो बैठना !

हाथ से जल्दी-जल्दी बालू मे हाथ भर गढा खोदकर वहीं बैठ गयी। नीचे का बालू फिर भी सहने लायक था।

कापी पेंसिल निकाली और उन लोगो का स्केच बनाने लगी। सहज साधना के भी तो बहुतेरे पथ हैं, फिर भी शौक से ये ऐसे पथ क्यो चुन लेते हैं, ये ही जानें।

कपडे के छोटे-से टुकडे से छाती और मुह को ढककर जप करते चले जा रहे हैं। शायद जप का हाथ किसी को दिखाना नही चाहिये। ढकी हुई जगह से पसीना चू-चू कर बहता चला आ रहा है, वही पसीना सूखकर बदन मे दाग पड-पड जाता है।

इनकी तपस्या का नियम मैंने प्रयागदास से सुना था। उन्होने कहा था, 'सब कुछ छोड-छाडकर वन-जंगलो मे जाकर रहता हू। देह धारण करने वाले जो भी हैं, रोग-दुख तो उनको होता ही है। लेकिन हमे अगर बात-बात मे सर्दी लगने से न्यूमोनिया हो जाया करे, तो कैसे चलेगा ? इसीलिए सबसे पहले सब कुछ

सह कर शरीर को इस योग्य बना लेना पड़ता है। बरसात के चार महीने शत धारा से स्नान करता हू। दिन के दो बजे से शाम के छह बजे तक एक सौ आठ घडा पानी सर पर डालता हू। बहुत बार घडा या कलसी नही मिलती, बस गगा या झरने के पानी मे गला तक डुबाकर खडे रहने से भी काम चल जाता है।

गरमी के दिना पाच सौ उपले की दो कतार आगे और तीन कतार पीछे सजाकर आग जलाता हू। उस आग की लपट सर से ऊपर तक उठती है। चार महीने इस तरह से जाप करता हू। जगला की खाक छानकर खुद ही गोबर बीन कर उपले पाथा करता हू।

'सर्दियो म चार महीने कक्ड बिछौने पर सोता हू, नगे बदन, कपडे के नाम पर महज एक लगोटी—और पत्थर पर सोया रहता हू। कई वर्षों तक लगातार यही क्रम जारी रखना पडता है। शरीर दुरुस्त हो जाता है। देखोगी, एक एक साधु का शरीर लोहे जैसा सख्त होता है, उस पर उगली नही गडा सकती—पत्थर की मूरत हो जैसे। बदन मे राख मलना भी आत्मरक्षा का ही एक उपाय है।'

पीठ पर कूबड वाले एक नागा। इन्ह राह-बाट मे, यमुना के किनारे बहुत बार देखा है। मुझसे कोई बीस हाथ के फासले पर 'पचाग्नि' ताप रहे हैं। मैं उन्ह छोडकर बगल वाले का स्केच बना रही थी। देखा एक बार जोर स सास खीचकर वह अचानक सीधे होकर बैठ गय! गजब! उनकी पीठ का कूबड बिलकुल गायब हो गया जस। तो क्या, यह मेरी ही आखो का भ्रम है?

बडी-दी ने बताया था, 'पचाग्नि की राख बडी पवित्र होती है। छोटे बच्चा को कोई रोग बीमारी होने पर जरा-सी कपाल पर छुला दो ठीक हो जाती है। थोडी-सी कही से मिल जाती—'

बगल मे ही एक आसन खाली पडा था। कल ही यहा पर एक को पचाग्नि तापत देखा था। चले गए क्या?

मैं गयी। जो गेंहू-बालू सहित वहा की एक मुट्ठी राख उठाकर मैंने झोले म डाल ली। फिर एक दो डग बढती हुई नागा सप्रदाय की ओर गयी।

कौन कहता है कि नागा लोग गुस्सल होते हैं खौफनाक होते हैं? मैं डर से अलग अलग चलती हुई कापी मे स्केच करती जा रही थी। यह देख कर बहुतेरे नागा लोग आए और मुझे घेर कर खडे हो गए। उन्ह बडा मजा आया। यह

कहने लगे, मेरा स्केच करो, वह कहने लगे मेरा। सब बेहद खुश। मैं उनके अखाड़े मे जाकर जमकर बैठ गयी। छोटे बच्चे की तरह बड़ी उत्सुकता से झुक झुककर वे लोग स्केच बनाना देखने लगे। उन सब का यह बचपन देखकर म हसने लगी, मेरा हसना देखकर वे लोग हसे। लमहे म मैं स्थान, काल, उम्र भुला बैठी। सुना बगल के दो साधुओ म बातचीत चल रही थी, एक दूसरे स कह रहे थे, 'यह शायद हमारे नेपाल की ही स्त्री है। देखने म कैसी सुदर, गाल मटोल है।'

कुछ लोग, यात्री—मिलकर शोर मचा उठे—'पगला हाथी, पगला हाथी।' महावत हाथी को यमुना म नहला रहा था। पानी से हाथी को बड़ा आनद आ गया। वह इधर जाने लगा, उधर जाने लगा, सूड से पानी का फुहारा छोड़न लगा। यह देखकर लोगो मे भगदड़ मच गयी। शोर मचा—'भागो, भागो। पिछली बार एक पगले हाथी ने दो आदमियो को मार डाला था।' लोगो की इस भगदड़ से हलचल सी मच गयी।

मुझे देर हो रही थी, इसीलिए बड़ी-दी को चिंता होने लगी थी। बाली, 'चलो झटपट तयार हो लो। आनदमयी मा यहा है। उनके दशन कर आए।'

मैंने कहा 'उससे पहले मौनी साधु को देख लें न। पास ही तो है।' इनके बारे मे मैंने आज ही सवेरे सुना। यहो के एक स्वामीजी कह रहे थे पिछले दस सालो स देखता आ रहा हू जमना के किनारे एक बेर के पेड तले एक ही स बैठे है। क्या खाते हैं नही खाते है, कुछ भी नही मालूम। अब तक तो कतई नही बोलत थे। अब दो चार बात करते हैं, वह भी हम कुछ ही लोगो स। इस बार बाढ आयी। सेवाश्रम को तो देख रही हैं न। कितनी ऊचाई पर है? यह भी उस बाढ म बह गया। कुछ दिना के लिए हम लोग शहर म चले गए। मगर उस साधु ने उस दुर्योग मे भी वह जगह नही छोडी बेर के पेड पर चढकर बैठ गया। रिलीफ वाले लोग नाव पर चढकर भोजन बाटने आए थे—वह भी आए थ आठ दस दिन के बाद। उन लोगो ने साधु का पेड पर उस हालत मे देखा। उनके पास कुछ बिस्कुट थ। दे गए। साधु ने ले तो लिय मगर खाये कि नही पता नही।

यमुना के ऊचे किनारे से चल रही थी। यहा भी बहुतेरे साधुओ का भीड। इस भीड म उन्हे कैसे ढूढा जाय? आगे बढी तो सोचा, शायद पीछे ही छूट

आई। लौटी, तो लगा, शायद आगे मिलें। कहा था, सेवाश्रम के आस ही पास। मगर आसपास मतलब कितनी दूर, इसका नाम तो नहीं लिया था।

बड़ी दी बोलीं, 'अरे, रास्ते का अंत तो है आखिर ? चलो न, देख तो लें।' जाते-जाते साधु-संन्यासियों की भीड़ खत्म हो गई। हम खुली जगह में जा निकले। रास्ते के किनारे दो एक घर भी नजर आ रहे थे—यहां के किसान-खेतिहरों के हों शायद। हम उसे भी पार कर गए। देखा, सुनसान में रेती पर वहीं तो बेर का पेड़ है। करीब गई। देखा टाट से एड़ी-चोटी ढके उसके अंदर से रंज हाजिर कौन तो सामने के एक बूढ़े गुजराती दंपत्ति को डांट रहा है, 'क्या है ? यहां कौन-सा तमाशा देख रहे हो ? मैं कोई दुकान लगाकर तो बैठा नहीं हूं। जिन लोगों ने दुकान लगाई है उनके पास जाओ। मुझे तंग करोगे, तो भला न होगा। मेरे बिगड़ने से किसी का अच्छा नहीं होता। यहां खड़े रहकर अगर मेरा नुकसान करोगे, तो मैं भी नुकसान करना जानता हूं।'

उनकी डांट सुनकर वे दोनों हाथ दबाकर मुस्करा रहे थे। शायद साधु को पहचानते हैं। तो यही वह मौनी साधु हैं, बहरहाल अपनी चुप्पी तोड़ी है ?

उनके सामने बालू पर बैठ गई। बेर के पेड़ पर गिलहरी सुग्गे मैने की चुहल। टुपटाप करके पक्के बेर नीचे गिरा रही थी। कोई समूचा, कोई अध खाया।

अपने को चारों तरफ से लपेटे पोटली-से बने मौनी बाबा बैठे थे। उनके आस पास दूध दही के कुल्हड़ से बहुत-से कुल्हड़ पड़े थे। टूटे फूटे। हो सकता है लोग इसी में खाने का सामान दे जाते हों। एक टूटी सुराही—पानी की। इधर से जाने वाले यात्री चावल-दाल मिले अनाज की एक मुट्ठी टाट पर फेंककर पुण्य लूटते हैं। कई गिलहरियां चावल दाल कट-कट करके दांतों से काटकर साधु के बदन पर से चली गई।

फटी टाट से मौनी साधु की सिर्फ दाढ़ आंख दिखाई पड़ रही थी। उसी एक आंख से हमें देखकर साधु ने अपने चेहरे पर की टाट हटा दी। जटा और बालों की उलझनों से उलझा चेहरा। उसी में से जितना समझ में आया—नाक नुकीली-सी, बड़ी-बड़ी आंखें, रंग कभी शायद गोरा ही रहा होगा। देखने में सुंदर तो बेशक। उमर भी कितनी होगी, अधेड़—उससे भी कम शायद। बोली बंगला हिंदी मिली जुली। लगा तो कि बंगाली ही होंगे। तो क्या अपने इलाके के लोगों को देखकर मन मुलायम हो आया ?

अपना जैसी बातें करने लगे—हम कहा ठहरे हैं, क्या कर रहे हैं, कब तक रहेंगे—ऐसी ही हलकी-फुलकी बातें। यह रास्ता वृंदावन की परिक्रमा करने का है। सांझ विहान इस रास्ते से बहुतरे यात्री गुजरते हैं। हम लोगों को देखकर बहुत से लोग वहा आ बैठे। भीड लगते देख साधु को फिर असुविधा हुई। उन्होंने बोलना बद कर दिया।

दादा उठ खडे हुए। बोले, 'तो, हम लोग चलते हैं।'

साधु ने सर हिलाकर कहा, 'जरा देर बठो। प्रसाद दूगा।'

एक पजाबी महिला बडी देर से धरना दिए हुई थी। उसकी इकलौती बेटी बीमार है। दवा चाहिए। मागत मांगते थक गई कोई जवाब नही मिला, तो उठ बैठी। साधु न अब जबान खोली—'दवा से कही नियति बदलती है ? मैंने कहा— गुरु पर विश्वास रक्खो, मत्र का जप करो—सो नही, बस एक ही बात पकडे हुई है दवा दीजिए।'

ब्रजरमण ने भगवत-तत्व के सबध मे एक पेचीदा-सा सवाल पूछा।

साधु देर तक चुप बठे रहे। फिर बोले जाने आज कितने वर्षों से इसी तरह पडा हुआ हू। आधी पानी धूप-सर्दी सब इस शरीर पर से गुजरी। एक पत्थर ही इस तरह से बर्दाश्त कर सकता है। अपने शरीर को वसी ही शिला-सा बना लिया है। कोई बोध अपन म नही रहन दिया है। तुमने जो सवाल किया, वैसी वजनी बातें बताने मे मेरे दिमाग पर जोर पडेगा, तकलीफ होगी। अभी भी शरीर मे पिछली ताकत लौट कर नही आ पायी है।'

ऐसी सीधी-सहज बात बडी भली लगी। टाट के अदर से बाया हाथ बाहर निकालकर साधु ने कहा, प्रसाद लो।'

लड्डू का थोडा-सा चूरा। हाथ फला कर लिया तो, मगर मुह मे नही डाल सकी। पता नही, उस टाट के अदर कैसी गदगी मे रहा होगा।

प्रसाद बटते देख दूसरे यात्रियो ने भी हाथ फैलाया।

साधु नाराज हो गए—'बार-बार हाथ निकालने मे मुझे तकलीफ होती है, उसी प्रसाद को बाट कर पा लो।' और उन्होंने फिर से मुह को ढक लिया।

मैंने झट अपने हाथ का प्रसाद यात्रियो को दे दिया।

छाती के पास की टाट को कापते देखकर समझ गई, साधु के दाए हाथ की

उगलिया के साथ जप की माला घूम रही है। इसीलिए प्रसाद देते वक्त भी दाया हाथ बाहर नही निकला।

ब्रजरमण ने कहा, मुझे बाबा वशीदास के बारे म मालूम है वह भी कुछ खात नही थे। गगा के किनारे बैठ कर केवल तबाकू पीते रहते थे, लोग-बाग जो भी दते थे ज्या का त्यो पडा रहता था, सड जाता था।

कुछ डग आगे बढी तो बडी-दी ने दो बेर निकाले। एक मुझ को दिया, दूसरे को अपने मुह म डाल लिया। बोली, 'इन बेरो को गिलहरी ने मेरी गोद के पास ही गिरा दिया था। मैंने बीन कर रखा था।'

मैं सोचती हुई चलने लगी, यह जो सब कुछ छोड छाड कर इनकी साधना है, वह मनुष्यो के काम भी आती है ?

बडी दी ने कहा आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास हो तो बेशक लाभ होता है। कोई रुपये से सेवा करते हैं कोई करते हैं शक्ति से और कोई साधना से। सिपाही विद्रोह के बाद बहुतरे भूतपूर्व सैनिक योगी बन कर साधना करने के लिए हिमालय चल गये। गये देश की स्वतत्रता के लिए पर बाद म उनमे से बहुत-से बडे नामी नामी साधु हुए। सच्चिदानद जी महानदजी विशुद्धानदगिरि, ऋषीकेश काजीलाल, बालानद के गुरु ब्रह्मानद स्वामी और भी कितने। इनमे से कोई विप्लवी थे कोई थे गदर म। आखिर ये जो मो लोग तो नही। इन लोगो ने योग की शक्ति से काम लिया था। हम बाहर का सारा कुछ देख सकते हैं। आज देश के जो बडे-बडे राजनैतिक नेता है इनसे उनका दान भी किसी तरह से कुछ कम नही।

वृदावन के एक दूसरे छोर पर है उडिया बाबा का मठ। आनदमयी मा वही हैं। चलते चलते ठिठक गई। जो कुछ तागे थे, वे सिर्फ मथुरा वृदावन आते जाते है। शहर म कही आने जाने की बडी असुविधा है। और तागा यहा चले भी कैसे गलिया ही गलिया तो हैं। उनमे गाडी घोडा नही चल सकता। फिर भी तागवाले की खुशामद की अगर थोडी दूर आगे तक पहुचा दे। बडी बडी मुश्किल से एक मिला। आराम से उस पर हम बैठ ही थे कि ब्रह्मचारी के मदिर के पास उतार दिया—आगे नही जायेगा।

यह मदिर ग्वालियर के महाराज ने बनवाकर ब्रह्मचारी बाबा को दान कर

दिया। निंबार्क सम्प्रदाय का विशाल मंदिर। इस सम्प्रदाय के आचार्य देव थे महर्षि नारद के शिष्य।

ऐसा कहा जाता है, एक बार दिन ढले, कुछ जैन साधु आश्रम में आये। जैनी लोग सूरज डूबने के बाद भोजन नहीं करते। और नीमकी आड़ में उस समय सूरज प्रायः डूब चला था। अतिथियों को भूखा रहना पड़ जायेगा यह देखकर आचार्य देव ने सुदर्शनचक्र का आह्वान किया और डूबते हुए सूरज को नीम पर रोक रखा। अतिथियों के भोजन के बाद ही सूर्यदेव को छुटकारा मिला। सबने हैरान होकर देखा, उस समय दो पहर रात थी। चूंकि सूरज को नीम के पेड़ पर रोक लिया था, इसलिए तभी से उनका नाम पड़ा निंबार्क या निंबादित्य।

नाटमंदिर में रासलीला हो रही थी। होली के उत्सव में मिलन हो चुका, विरह नहीं रहा। एक सिंहासन पर राधाकृष्ण विराजमान। कृष्ण के होठों पर मुरली। भक्तों की आंखों में युगल रूप दर्शन का आवेश रागा। उन आंखों में जरा देर के लिए भगवान अटक गये।

पुजारी ने बताया, पहले रासलीला का अभिनय रोज यहीं हुआ करता था। अब वंशीवट में होता है। एक दिन भोर भोर की तरफ जब अभिनय समाप्त हुआ तो सबने देखा कि जाने कौन दौड़कर वहां से मंदिर में चला गया। लमहे की बात सभी उतावले हो उठे।—'यही-यही तो, इसी होकर तो गया —उसी का अनुकरण करते हुए आगे बढ़े, मंदिर के पास पहुंच कर जहां पर नाटमंदिर की कालीन खत्म हो गयी थी, लोगों ने देखा वहीं पर सादे पत्थर पर दौड़ कर भागने वाले दो परों की साफ छाप पड़ी हुई है।'

वह छाप आज भी वैसी ही है। फूल और बेल के पत्तों से ढकी पड़ी है। शायद हो कि सच हो, शायद हो कि पत्थर पर वह एक स्वाभाविक दाग हो—सफेदी पर हल्के काले रंग का, समय की आयु लिपी सी। फूल और बेलपत्तों को हाथ से हटा-हटा कर देखा।

व्रजरमण घुटने गाड़ कर बैठ गये। नम हाथों से चरण चिह्नों को सहला कर सारे शरीर से लगाया। चरणों की करुणा पाने के लाभ की खुशी से वह विभोर हो गये।

भक्त के हाथों का यह जो हलका परस है उसी की मीठी याद का मैंने

मन म गूथ कर रख लिया।

ढूढते ढूढते हम आनदमयी मा के आश्रम म पहुचे। दरवाजे स हम अदर जा ही रही थी कि हडबडाती हुई कुछ महिलाए उसी दरवाजे से बाहर निकल गइ। वह सब चली गयी, तब मैंने बडी-दी स कहा 'चलो अब हम अदर चलें।'

बडी-दी ने कहा, 'अदर जाकर अब क्या करना ! आनदमयी मा तो बाहर चली गयी।'

—'आनदमयी मा ! उन महिलाओ के साथ ? कौन-सी थी ? वह जो सादी कोर की साडी पहने लावण्यमयी वयस्का-सी थी वही थी क्या ?'

बडी-दी ने सर हिलाया। बोली 'तसवीरें इनकी बहुत देखी हैं, इसीसे पहचान लिया।'

अजीब है ! साज सिंगार की कोई खास बात नही। सकडा की भीड मे सिफ उनका मुखडा ही ध्यान को खीच लेता है। कहा, 'चलो बडी-दी, चलकर देखें कि दलबल के साथ वह गयी कहा ?'

जी मे आया कि पीछे पीछे दौड पडो। बगल मे ही है हरिबाबा का आश्रम। पतली सीढिया चढकर दुमजिले के एक कमरे के सामने छोटी-सी छत पर जाकर हम सब इकट्ठे हुए। उतनी-सी जगह, उसी म सब आखिर कहा समाते ? कुछ तो सीढिया पर ही टगे रहे कुछ लोग ऊपर की ओर नजर किए नीचे ही खडे रहे। भीड के आगे जगह बना लेने का कायदा मालूम हो तो कितनी सुविधा होती है !

सामने के कमरे से ऋपितुल्य हरिबाबा बाहर निकले। गेरुआ अलखल्ला डाले। रूप का क्या कहना, गोया एक झलक रोशनी झलक उठी। थाली मे सहेज कर आनदमयी मा उपहार ले आई थी—गेरुआ कपडा फूल फूल। आज हरिबाबा का जन्मदिन था। हरिबाबा ने उपहार की वह थाली ली और मुस्करा कर भीड की ओर देखा। बोले 'यहा तो सब लोगो के लिए जगह होगी नही। आप सब लोग नीचे इतजार करें मैं अभी आया। वहा कीतन होगा।'

हरिबाबा के कीतन की बात मैंने बहुतो से सुनी थी। लोगो ने कहा था 'जा तो रही हो वहा, बने तो हरिबाबा का कीतन सुनना। सुनने योग्य है। नसीब अच्छा था एकाएक सब कुछ का सुयोग मिल गया।

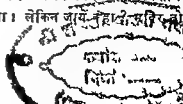
हरिबाबा नीचे उतर आय। दूसर लोग मृदग मजीरा लिये पहले से ही तयार

थे। हरिबाबा ने बीच मे खडे होकर आखें बद करके दम लेकर आरभ कि
रा । इस 'रा' से और एक सास म 'धा' पूरा करने मे ही पूरे दस मिनट
गए। एक-एक बार वैसे ही दीघस्वर से राधा नाम को पूरा करते और सु
एक एक परदा चढा देते। चढाते चढाते जब सुर को चरम पर पहुचा दिया
धीरे धीरे उतारते हुए उसे बिलकुल मृदुतर कर दिया। अब सुर की दीघता
दी, ताल को द्रुत कर दिया। दोहारी लाग झाल मृदग बजाने लगे। हरि
ने कासे का घटा उठा लिया, सुर फिर धीरे धीरे चढने लगा। ताल और ता
गयी। घूमते हुए हरिबाबा उसी ताल पर घटा बजाने लगे। देखने ही यो
उनका वह नाच, उनकी वह भगिमा। सारी शक्ति लगाकर नाम-गान
फिर उसी शक्ति का लगाम थाम सारे शरीर को घुमा घुमाकर हिला
कर घटा बजाना। यह तो पागल की उन्मत्तता-सी है! नाच गान
तुमुल ताडव। मगर सब कुछ स्थिर, जैसे धागे म बडे हिसाब से कसी-गुथी
माला हो।

रास्ते म चलते चलते बडी दी ने कहा, तुमने एक बात पर गौर किया
'पहली बार राधा का नाम लेते ही हरिबाबा के सर के बाल कैसे खडे हो गये
नाम की कैसी अजीब सिहरन!'

निवास आश्रम के पास से जा रही थी। पत्ते रहित नगे पेड की काठिया-सी
की फाक मे गोल चाद उग रहा था। बीच रास्ते मे एक पछाही आदमी एक
से चग को हाथ से ऊपर उठाये उगलियो से बजा रहा था और दो स्त्रिय
रही थी—'यमुना के तीर पर बासुरी बजाकर कृष्ण राधा को बुला रहे है
ननद की चौकस निगरानी है—राधा बेचारी रो रो कर बेहाल मैं
जाऊ?

और जगह होती, तो लोग पागल कहते। यहा कौन किसे कहे? दोपहर की
धूप मे मुह-पीठ जलने लगी, हवा के चक्करदार झोके नाक आख को धूल से
देने लगे—मगर फिर भी बाहर निकल पडी। डेरे पर मन ही नहीं टिकता।
के लिए टोली के सभी को निकलना पडता। लेकिन जायें कहा? आखिर



बद है। ठाकुर को तो शायद विश्राम की जरूरत नही, मगर पुजारी ? ठाकुर का दरवाजा खुला हो तो वह कस आराम करेगा ?

यहा वहा घूर फिर करती रही। एक खुले फाटक के भीतर विशाल एक प्रासाद दिखायी दे रहा था होगा कुछ। अदर दाखिल हो गयी। विशाल एक बाग महल। बाग महल भी नही, वह तो बडे लोगो के होता है। देवताओ के मदिर होते है। गरमी के दिनो रगनाथजी रोज यहा हवाखोरी के लिए आते हैं। दोनो ओर तरह-तरह के फल फूलो का बगीचा, बहुत बडा नाटमदिर, तालाब—कितना क्या। पक्के का रास्ता ऊपर उठते-उठते नाट मदिर तक चला गया है। धड धड करती हुई रगनाथजी की गाडी सीधे अदर चली गयी।

महज कुछ दिनो के लिये कैसी राजकीय व्यवस्था। रगनाथजी के महलबाग मे जरा देर बैठकर फिर दूसरी जगह की तलाश मे निकली। बडी-दी ने कहा, 'कात्यायनी का मदिर शायद यही कही होगा। मैंने सुना है। किसी बगाली का बनवाया हुआ है। बहुतेरे लोग कहते हैं, पीठ स्थान है। यहा पर सती का बाल गिरा था। फिलहाल पीठोद्धार हुआ है। ढूढ कर निकालो तो सही।' यह कहकर भवें सिकोड कर वह खुद ही आसमान की ओर ताकने लगी।

दादा ने कहा, 'वही तो। वही होगा शायद। वह वह—नीम के पेड से जो उपर उठ आया है। —उन्होने कलश वाले मदिर शिखर की ओर दिखाया।

पके पत्तो से भरा नीम का पेड। नीचे के झडे पत्तो को बटोर कर व्रजवालो ने इकट्ठा किया था। उनकी दुतकार के बाद भी दो गाय उन पत्तो को खा रही थी।

बडी दी बोली, आखिर बालू की जगह है न! नही तो मैंने तो कभी नही सुना कि गायें भी नीम की पत्ती खाती हैं।'

कागजी नीबू के नीचे झाडी की आड म एक पहलवान जैसा नौकर हाडी-कडाही माज रहा था। हो न हो, आज दोपहर को विशेष भाग की व्यवस्था हुयी होगी। इसीलिए सब दिन म सो रहे हैं किसी का पता नही है।

देखें देवी के दर्शन कब नसीब होते हैं। बरामदे के ठडे फर्श पर पर फैलाकर बैठ पडी। साथ म राधादासी थी। उससे गप्प लडानी शुरू कर दी।

रामदासी ने कहा 'मेरा नाम वास्तव में हरिदासी था। मगर नित्यगोपाल महंत की मां का नाम भी था हरिदासी। महंत ने कहा, अब यह बता, तुझे इस नाम से पुकारूं कैसे? सो, आज से तेरा नाम पड़ा राधादासी। तब से मेरा यही नाम है। कितने वर्ष हो गये यहां आयी हूं। मेरा घर मुर्शिदाबाद जिले में है। विधवा हो गयी तो गांव वालों के साथ तीरथ के लिए वृंदावन आयी। पंडे ने हमें महंत के यहां ठहराया। हम सब दो महीने के लिए आये थे। महंत की मां ने कहा, अजी अब लौटकर तुम कहां जाओगी यहीं रहो मेरे लड़के की सेवा करो। गांव के सारे लोग लौट गये मैं रह गयी। महंत की मां गुजर गयी, उसके भी पांच-छह साल गुजर गये।'

मैंने कहा 'बंगालिन हो तो। फिर यह पछांही साज पोशाक में क्यों?' उसने कहा, 'महंत के टोले में तो इधर के ही लोग भरे पड़े हैं। उन लोगों के बीच अलग ढंग से रहने में कैसा तो लगता है, पड़ोसी लोग निंदा करते हैं। तभी तो कलाई में सोने की दो बालियां जो देख रही हैं, और समय तो यह भी नहीं पहनती। भर भर कलाई कांच की चूड़ियां ही पहनकर रहती हूं। उन लोगों का ऐसा ही रहन-सहन है। लेकिन कुछ दिन हुए, मुलक से मेरी ननद तीरथ करने के लिए यहां आयी है ठहरी अवश्य दूसरी जगह में है। इसीलिए मैंने झटपट चूड़ियां उतार दीं और ये सोने की बालियां पहनली हैं।

— क्यों?'

— कभी रास्ता घाट में ननद से मुलाकात हो जाती है। शर्म लगती है।' यह कहकर दासी ने होंठों में हंसकर सर झुका लिया।

इतनी देर के बाद अब आकर पुजारी ने मंदिर का दरवाजा खोला। सिंह-वाहिनी असुरमर्दिनी अष्टभुजा मूर्ति।

बड़ी-दी ने कहा, 'कात्यायनी महाशक्ति हैं। आखिर गोपियों ने कृष्ण की आराधना की शक्ति कहां से पायी? इन्हीं कात्यायनी से। राधा और गोपियों ने पहले कात्यायनी की आराधना करके शक्ति संजोई उसके बाद कृष्ण को आराधना करके उनको पाया। भागवत में गोपियों का मत है—

कात्यायनी महामाये महायोगिन्यधीश्वरी
नंदगोप सुतं देवी पतिं मे कुरु ते नमः।

पहले-पीछे म ही समय की बरबादी होती है, दशन म क्या समय लगता है ? फिर मे चलना शुरू किया।

रास्ते म चौंसठ महनो का समाज पडा। गुरुवग, आठ प्रधान महत, बारह गोपाल, छह चक्रवर्ती, आठ गोस्वामी, आठ कविराज, आचाय, प्रभु इन सब चौंसठ महतो की जहा-जहा समाधि है, सब जगह की धूल लाकर यह समाधि-समाज तैयार हुआ है। पक्के रास्तो से घिरे प्रागण म छोटे छोटे स्मृति फलको म नाम धाम लिखे हैं—जयदेव पद्मावती बिल्वमगल चितामणि, जगाई-मधाई, नरोत्तम ठाकुर, मणपुर श्रीनिवास, रूप सनातन, केशव भारती। बडी-दी नाम पढती गयी और' अहा, जरा परस करलू करकर सब पर हाथ फेरती फिरने लगी।

वहा पर कई वैष्णव बठे थे। सेवायत रहे हुगे शायद। वे बोले, नही-नही, बधे हुए रास्ते के सिवाय कच्ची माटी पर कदम मत बढाइए। वहा पाव रखने का मतलब हुआ, उनपर पैरो की धूल डालना।'

यह कहने से पहले ही गेरुआ धारी वैष्णव-वैष्णवी की एक जोडी नीचे उतर चुकी थी। सेवायतो ने उन्ह आवाज दी— सुनिये-सुनिये, आप तो वष्णव दीखते हैं। अपने आप ही गेरुआ धारण कर लिया है या तौर तरीका नही जानते ?

वह आदमी सकपका गया।

— बेशक आपापथी हैं।

दादा ने पूछा, 'मतलब ?'

कहा, 'राममय महाराज का कहा याद नही है ? उन्होने बताया था, साधु होने के लिए किसी न किसी सम्प्रदाय मे शामिल होना पडेगा। वह उसके नाम के साथ उपाधि की तरह जुडा रहता है। कोई अगर पूछे आपका नाम ? तो केवल गोस्वामी विशुद्धानद कहने से नही चलेगा, कहना पडेगा स्वामी विशुद्धानद पुरी। या गिरि वन, भारती —ऐसा ही कुछ न कुछ। नहीं तो फिर वे मजाक उडाएगे कत्रखन आपापथी है गर्जे कि खुद ही साधु बन बठा है। हम साधुओ मे नियमो की बडी कडी पाबदी है। हमारे यह जो बाल दाढी देख रहे हैं अगर हम बाल रखें और दाढी मुडायें तो साधु समाज मे निंदा होगी। बस पूर्णिमा के दिन, यानी महीने म एक बार सिफ बाल दाढी घुटायेंगे। अवश्य दूसरी जगह इतनी

कडाई का पालन नही करता, मगर यहां माने बिना कोई उपाय नही।'

अभी-अभी, कुछ ही देर पहले देख गयी थी न, चौराहे पर एक साधु सारे बदन पर अबीर लगाए दोपहर की चिलचिलाती धूप मे दोनो पैरो को आकाश की ओर उठाय स्थिर पडा है ? दादा ने बताया था, 'यह है शीर्षासन मगर अब क्या देख रही हू कि उसने सर के सहारे टिक कर दोनो पैरो को सामने से बगल के नीचे घुमा कर पीछे की ओर ले जाकर तालु पर चढा दिया है।

—'यह फिर क्या है ?'

—'यह है पादस्कध आसन।'

उधर से जाने-आनेवाले यात्री सामने फले गमछे पर दो एक पैसा फेंक देते थे। एक बुढिया ने एक दुअन्नी रख दी और उसके आठ पैसे भुना लिये।

जप की थली म हाथ डाले 'राधे गोपाल निताई गौर' गाता हुआ एक वैष्णव चला जा रहा था। यहा हरेक की जबान पर 'राधाश्याम'। तागेवाला घोडे को हाकता है—राधे राधे। किराये के पैसे हाथ पर दीजिए तो सलाम बजाता है—जय राधे। राहगीर हाल चाल पूछता है—राधेकृष्ण। दूकानदार सामान देकर कहता है—राधारानी। भीख नही मिलने से भिखमगा गाली-गलौज करता है—राधेश्याम श्रीहरि।

बडी-दी देव-देवियो की रगीन तसवीरो की दूकान पर जाकर खडी हो गयी। उन्होने गगा मैया की एक तसवीर हरिद्वार मे खरीदी है—सिनेमा के शिव जी आखें बन्द किए बैठे हैं और उपर वाला की नाई हसती हुई गगा उनके माथे पर आ गिरी हैं। राधाकृष्ण की वैसी ही कोई मनपसद तसवीर उन्हे मिले, तो उसे बधवा कर घर म रखें। सबेरे आख खुलते ही सारे देवी-देवताओ के दर्शन करके दिन का श्रीगणेश किया जा सकता है। कहती हैं, 'अरे, फिर क्या दिन भर म समय मिलता है ?'

देवी-देवताओ की तसवीरो के बीच बीच मे नेहरू, पटेल, गाधी सुभाष की तसवीर। मैंने कहा यहा इन सबो की तसवीर क्या है ?' दूकानदार प्राय डपट उठा 'वह सब बडे बडे नेता हैं।

रास्ते म मणिबहादुर से भेंट हो गयी। आज ही सवेरे उनको कितना खोजा। सुना व लोग भी यहा आकर ठहरे हुए हैं लेकिन कहा यह नही मालूम था। पडो से

पूछते-आछते डेरे का पता भी चला, तो उस समय वे लोग बाहर निकल गये थे।

बड़ी-दी ने कहा, 'अजी साहब, विजिट इंडिया करने से क्या होता है? आज तो आपका परिचय दिया कि दखने म साहब जैसे हैं—जभी तो पंडे ने समझा और आपका डेरा बता दिया।

मणिबहादुर के हाथ म पत्ते से ढका मलाई का कुरबा था। बोले, 'खोर नहीं है, संदेश नहीं है यह यमुना-तट की घास चरनेवाली गयो के दूध की मलाई है। दुनिया म इसके मुकाबले की चीज नहीं। कभी खाई है क्या? खाकर देखिए। वृदावन आकर सबसे पहले मलाई खानी चाहिए। महज भक्ति रस स ही नही चलता पार्थिव-रस भी चाहिए। अकेले कृष्ण से क्या करते बनता यदि अर्जुन नहीं होते? गीता ही नहीं कही जाती। खैर। जा कहा रहे हैं?

कहा, 'फौजदारकुंज। सुना वहा रामाकृष्ण देव आये थे।'

—'चलिए मैं भी चलता हू। वहा क महत से मेरा परिचय है। लेकिन यह तो मुझसे किसी ने नहीं कहा कि वहा रामाकृष्ण देव रहे थ। मणिबहादुर हमारे साथ हो लिये। बोले, 'इस बार पंडो को बडा अफसोस है, यात्रियों की भीड ही नहीं हुई। उनका कहना है, ज्यादातर यात्री पूर्व-बंगाल से आते थ। धरम को उन्ही लोगों ने जगा कर रखा है। हम लोग तो महज ऊपर की कलई हैं।'

मणिबहादुर क साथ चलने मे बडा मजा आता है। किस्सो म मशगूल रखते हैं। बोले, भर्तहरि की कहानी जानत हैं न? साधु न उन्हे फल दिया था। कहा था, जो तुम्हारा सबसे प्रिय हो उसी को देना। बस वह फल हाथो हाथ घूमने लगा। एक अपने प्रिय पात्र को देता, फिर वह अपने प्रिय पात्र को। यही क्रम चला। कोई उसे दाता को नहीं लौटाता। प्यार दान ही किया जा सकता है वापस नहीं पाया जा सकता। वैष्णव लोग राधा रूप मे साधना करते हैं, प्यार मे जो आत्मत्याग है, यह उन्होंने स्त्रियो से ही सीखा है।

मैंने कहा, 'हम लोग तो फिर हरिद्वार जा रहे हैं। आप नहीं जायेंगे?

उन्होंने कहा अरे बाप ज्ञान से मल धोकर हरिद्वार स जाकर वृदावन म भक्ति जल म गोता लगाया है। फिर वहा जाकर उसे नष्ट कर सकता हू भला?'

—हसने लगे। बोले मेरे मित्र बांकेबिहारी पंजाबी हैं। वैष्णव होने के बाद यह नाम रक्खा है अपना। मीराबाई की जीवनी और भर्तहरि के गीतो पर दो मशहूर किताबें लिखी हैं। छह साल तक मौनी थ। हाल ही मे मौन भंग किया है

और कीतन मे मस्त हो गए हैं। वह कहते हैं आनदमयी मां के पास मत जाना, दूर से ही नमस्कार करो। शक्ति बडी जोरदार है, भक्ति नम। ज्यादा निकट जान से तुमम शक्ति प्रवेश कर जायेंगी।'

फौजदारकुज पहुच गये। दुतल्ले के जिम कमरे में रामकृष्ण रहते थे, उस कमरे म ताला पडा था। किवाड की फाक से देखा, फश बिस्तर और बक्स से भरा है। किमी यात्री को किराये पर दिया गया है। शायद।

दादा न महत से कहा, यहा रामकृष्ण देव थे। यह बात बहुतो को नही मालूम है। आप यदि उनकी एक तसवीर यहा रखकर बाहर साइन बोड लगा द, तो दर्शनार्थी यात्रियो के किराये से ज्यादा दक्षिणा मिलेगी।'

महत ने कहा, 'ठीक ही कह रह हैं। यही करूगा कुछ ही दिन पहले खोजत खोजत दो मेमे आई थी और चौकठ पर सर रखकर प्रणाम कर गई थी।

बडी-दी ने कहा, 'इसी को कहते हैं वकील की अक्ल।'

वहा स सखामन शालिग्राम के मंदिर म गई। इतनी बडी शालिग्राम की शिला साधारणतया दिखाई नही पडती। यह शिला एकमात्र नेपाल की गडकी नदी म ही पाई जाती है। साधु सन्यासी लोग वही से ले आत हैं। एक खास तरह का पत्थर, चक्रा देवी के शाप स शिला म वज्रकीट रहता है।

अब इमली तले गई। बहुत ही बडा और बडा पुराना इमली का पेड। इस पेड के नीचे बैठकर महाप्रभु जप करते थे। मथुरा म रहते थे, वहा भीड मे स्वच्छदता म नाम-सकीतन नही कर पाते थे, सो यहां चले आते थे। दोपहर तक नाम-गान किया करते, उसके बाद अक्रूर घाट म भीख मांगा करते। जितने दिन यहा थ, यही सिलसिला था।

एक दिन की बात है, महाप्रभु बैठकर नाम-कीतन कर रहे थे। युवक राजकुमार यमुना के किनारे किनारे टहलते हुए जा रह थे। महाप्रभु पर नजर पडी, तो ठिठककर खडे हो गए। इन्ही को तो पिछली रात सपने म देखकर निकल पडे थ।

पेड पर हाथ फेरत हुए मन म यही दृश्य देखती रही—उनकी करुणा स कितन धनी और कितने गरीबो का उद्धार हो गया !

इसके बाद राधा दामादर आई। यहा रूप के गिरिगोवधन हैं।

रूप प्रतिदिन सवेरे गोवर्धन गिरिराज की चौदह मील की परिक्रमा करके तब मुंह में पानी डालते थे। बूढ़े हो गए फिर भी रूप इस नियम से बाज नहीं आए। एक दिन रात में गोविंद ने उनसे कहा 'रूप, अब तुम इतना कष्ट मत करो। मेरा पदचिह्न लो। इसकी चार बार परिक्रमा करने से ही तुम्हारी गिरि-गोवर्धन की परिक्रमा हो जाएगी।' यह कहकर गोविंद ने उन्हें एक पत्थर बताया। रूप दूसरे दिन जाकर वह पदचिह्न ले आये।

कार्तिक के महीने में यह पद चिह्न सबको दिखाया जाता है—और समय भेंट लगती है।

भेंट देने पर पुजारी ने यमुना के जल से दरवाजे के पास पोछकर दोनों हाथों में पकड़ कर पदचिह्न समेत एक छोटी सी चौकी लाकर वहां पर रखी।

काले पत्थर पर जितना बड़ा होता है, उससे भी बड़ा पैर का चिह्न बगल में गाय के खुर की छाप।

पुजारी ने कहा 'यह धोती का पांव है। धोती के बदन के सहारे खड़े होकर इस तरह से कृष्ण ने बांसुरी बजाई थी।'—कहकर दाए पांव पर खड़े होकर पुजारी ने वह अदा दिखाई।

खासा गढ़ा-सा बन गया है—एड़ी की तरफ दबाव ज्यादा है—वह छाप साफ है। सुना है, कृष्ण के बांसुरी वादन से पत्थर गल गया था। अगर ऐसा हुआ हो तो उस पिघले पत्थर पर पांव की छाप पड़ना कौन सी ताज्जुब की बात है? या फिर कादो माटी पर पड़ी हुई पैर की छाप बहुत दिनों में फासिल बन गई है। खैर सो जो भी हो, जिन परम भक्त रूप ने इससे 'कृष्ण' पद पाया जिस पद चिह्न को उनके जैसे भक्त की पूजा मिली, वह अगर खोद कर भी बनाया गया हो तो उसके दरस परस में पुण्य है।

पुजारी बड़ी दी के चेहरे की ओर ताक रहे थे। बोले 'आप लोग ही धन्य हैं। इतने निकट रहते हुए भी मैं अभागा आज तक रस का स्वाद नहीं पा सका।'

बड़ी-दी ने पूछा 'क्या ख्याल है परिक्रमा करोगे?'

पुजारी ने कहा, 'उधर के नीम के नीचे से बरामदे से सटकर मंदिर को दाएं रखते हुए परिक्रमा कीजिए।'

सांझ हो चुकी थी। टार्च की रोशनी में रास्ता देखकर चलने लगे। मंदिर के एक ओर जीव गोस्वामी और दूसरे कई भक्तों की समाधि है, दूसरी ओर रूप

वे भजन की कुटिया और समाधि मंदिर। वष्णव लोग आकर रूप की भजन कुटिया के सामने-सामने साष्टांग दडवत करते हैं।

चौथी बार परिक्रमा करके आंगन के बीच में खडी हो गई। गाछ की झिरझिर फांक में शुक्रतारा मिलमिला रहा था।

अब नंद-यशोदा का मंदिर। व्रज की स्त्रियां लोटा भर भर कर दूध उडेल जाती हैं। कहती हैं, 'गैया चराकर लौटने पर गोपाल पियेगा जो!'

कोने में बेंत की हजारों हजार छडियां जमा हुई हैं।

पूछा, 'यह सब क्या है?'

पुजारी लाल कपडे से बंधी बही में हिसाब लिख रहे थे—शायद मां यशोदा की घर गिरस्ती का। बोले 'जगन्नाथ से लौटकर यात्री लोग एक-एक छडी नंद यशोदा को दे जाते हैं। यह साक्षी है। नहीं तो तीर्थयात्रा पूरी नहीं होती। और जो लोग केदार-बदरी से लौटते हैं वे लोहे की बाली देते हैं।'

देखा लाखों की तादाद में लोहे की बाली यशोदा के सामने पडी हुई हैं। हर साल बशाख में इन्हें यमुना में डाल दिया जाता है।

बडी दी ने कहा 'तो सोच देखो, हर साल कितने लोग आते-जाते हैं!'

अब क्या देखना बाकी रह गया? शाहजी का मंदिर। उसी मंदिर को देखने के लिये तो लोग दौडे-दौडे आते हैं। आंखों से एक बार देख न लिया जाय, तो सदा को अफसोस रह जायेगा। जबसे आई हूं—शाहजी का मंदिर, शाहजी का मंदिर—शोर सुनती रही हूं।

बडी दी ने कहा, 'तो फिर कदम बढा कर चलो। खत्म ही कर लें। जरा-सा के लिए खोट क्या रहे?'

आदि से अंत तक श्वेत पत्थर का मंदिर। दिल्ली के ढंग का बाग फुहारा। छत पर यहां-वहां संगमरमर की मूर्तियां। शौकीन अमीर का महल बाग और बेशुमार रुपया के खर्च पर बने मन्दिर का अजीब समावेश।

एक ओर कुछ छोकरे हारमोनियम बजाकर भजन गा रहे थे। सीढी के ऊपर श्वेत पत्थर का चौडा चौतरा। परिचय लिखा एम्बोसड मूर्ति। यात्री लोग मूर्ति देखने के लिये आते जाते उन्हें रौंद जाते हैं। सबों की चरण धूल लेकर कुंदलाल साहा स्त्री पुत्र सहित पडे हुए हैं।

विशाल एक हाल। चारों ओर की दीवालों पर रंगीन पत्थरों पर स्त्री-पुरुषों की एम्बोस्ड मूर्तियां। तरह-तरह के रंगों की बहार—भंगिमा। घूम घूमकर उन्हें देखा, देखा फर्श पर का नक्शा झाड़-फानूस की झकमक, बिजली बत्ती की जगर-मगर। सबसे अंत में देखा, एक ओर रेलिंग में घेरकर रक्खी हुई है राधा-कृष्ण की छोटी-सी मूर्ति।

हैरान-सी हुई। इतने विचित्र ऐश्वर्यों के बीच वहां वह मैला-फटा कपड़ा पहने कौन खड़ा है ?

धीरे धीरे उसके करीब गई।

सोलह-सत्रह साल का एक लड़का। टिन के छोटे से आईने का हाथ में लेकर उसकी पीठ पर 'राधाकृष्ण' की जो कागज की तसवीर सटी थी, उसमें मूर्ति को मिलाकर देख रहा था।

मैंने पूछा 'दोनों मिलती हैं ?'

तृप्ति की हंसी हंसते हुए गरदन उठाकर उसने कहा, 'जी।'

लौटते हुए एक साधु मिल गए। देखते ही पहचान गई। उन्होंने हमारे निकट आकर पूछा, 'यहां और कितने दिन रहेंगे ?'

कहा, 'अब जाने का समय हो आया।'

बड़ी-दी ने पूछा 'कौन थे ये ? कई बार तो देखा, आकर के बात की। पहचानती हो ?'

चलते चलते कहा 'ये लोग यमुना पार के मेरे नागा-बंधु हैं। वहीं एक दिन की जान पहचान है।'

माटी की दीवालों पर कटीली झाड़ियों के खिले फूलों ने आज सेवाश्रम की गली को उजाला कर रक्खा है। बसंती रंग के फूल, पतली पखुड़ियां जैसे पीली तितलियों का झुंड हो। कोए से पहली बार निकली हैं इसे थर थर कांप रहे हैं।

मथुरा आई।

टिप टिप बारिश। विराम नहीं।

यमुना के किनारे बंगाली घाट। पक्के की ऊंची सीढ़ियों पर दोनों किनारे खंभा

पर छतवाले खुले घर चारो ओर से—कुछ दूर तक पानी मे बढे हुए। उन्ही मे से एक के किनारे बठी थी। आज और कही जाना नही था। बहुत दिनो के बाद जसे सास लेने का मौका मिला है जसे जरा स्थिर हो पायी हू। इधर कई दिना तक चलती ही चलती रही, देखती रही। ज्यादा देखने की भी एक थकावट थी।

पानी की ओर ताकती हुई कितनी ही बातें सोच रही थी।

धुधले आकाश की वष्टिधारा ने मानो परदा डालकर मुझे सब कुछ से आड करके रक्खा है। अब निश्चित होकर अपने आपको खोलकर सामने रख सकती हू। बेहद व्यस्तता के दवाव स जसे क्षण की इसी फाक के इतजार मे रहा हो मन।

यमुना के पानी म तमाम किस कदर कछुए भरे! किसी-किसी के बदन पर काई पड गयी है। दा किस्म के कछुए हो जैसे। एक का रग पीलापन लिए हुए हरा।

घाट पर पडे का अड्डा। दरवाजे पर साइनबोड टगा—कान म लडडू साढे आठ भाई। 'Ladoo in ear 8½ Brothers। गठवटटे कुछ मुस्तडे पडे महाजनी शान स मोटे तकिए के सहारे बठे थे। बगालिन तीथ यात्रिया के एक झुड को लाकर घाट पर छोड कर नकद पसा फेंककर पडा बठे हुए नाई के सामने गाल बढाकर बैठ गया। जस गाय-गोरू के झुड को चरोखर मे छोडकर आराम करने के लिय निश्चित बैठ गया।

बरगद के नीचे कुछ टूटे पत्थरा का चूल्हा बनाकर गठरी पोटली खालकर पीतल के बतन म थोडा-सा दाल चावल और आलू उबाल लेने की व्यवस्था करने लगी स्त्री यात्रिया—चार पैसे की लकडी-काठी जलाकर, कोई किसी से मिलकर, कोई बिलकुल अलग। कुमिल्ला से एक कम उम्र की बहू अपनी फूफी-सास के साथ आयी है। अपनी गठरी से टिकी वह भर मुह पान चबा रही थी—भर पेट तल की कचौडी फुलौडी खा ली है अब आज भात का कोई झझट-झमेला नही। बगल म अधपका सखी विधवा वह स्त्री बार-बार अपन फटे कपडे की पाटली को खोलती और बाधती थी—मन मे किसी बात की असतुष्टि हो जस।

डेढ महीने हो गय, ये अपने गाव से निकली हैं। काफी घूम चुकी हैं अभी और भी घूमेंगी—गिरिगोवर्धन जायेंगी। आज यह तीसरे पहर ही जो थोडा-सा आराम है, कल फिर अपना-अपना बोरिया-बसना समेट कर चलना शुरू कर

ंगो। दल म कई घुल घुल बुढ़िया हैं। इह इतनी ताक्त और हौसला यहा आ जाता है ? नींद नहीं, खाना मयस्सर नहीं, तीन चार दिन म याद कभी एक दिन रसोई करने का मौका मिलता है। नहीं तो यो पोटली म रूखा सूखा, नजान कर पानी म भिगोकर खा करक दिन काट लेती हैं। पास म जो थोड़ी-सी पूजी लाती हैं छल प्रपच से उसे पडे ही अपनी टेंट के हवाले कर लेत हैं।

घुटे हुए सर वाली एक बुढ़िया घाट पर बतन मल रही थी। उसन लोह क चमचुल से कछुए की गरदन पर दे मारी एक चोट। बतन धो रही है और वह कबख्त बार-बार गरदन बढ़ाता आ रहा है। मारे बिना उपाय क्या ?

उस पार चिता जल रही है—एक, दो तीन, चार। उधर और भी दो।

बड़ी-दी आकर चुपचाप मरे पास बठ गयी।

और दिन हम लोगो की बातचीत का कोई अत नहीं रहता। आज कोई बात ही नहीं। दोनो अगल-बगल बैठी—दोनो की चिता मिलकर मानो वहा वह दूर म एक हो गयी है जहा उस धुधली चिता को पारकरके सीमा रखा एक धूमिल आवरण से मिल गयी है।

हर रग का मझोले कद वाला कछुआ अभी तक तीन परा म तर रहा था दूसरे एक कछुए ने नीचे से एक धक्का देकर उस उलट दिया। सच ही तो उसके दायी ओर के पीछे का एक पाव नहीं है। छोटा रहा होगा तो किसी न काट खाया होगा।

पड को साथ लेकर दादा आये। बोल लगता है, बारिश रुक गई है। चना मथुरानाथ के दशन कर लें।

यमुना के किनारे किनारे पक्का रास्ता दूकान-भरी बाजार-बस्ती है। देखकर जी म होन लगा यह भी खरीद लू वह भी खरीद लू। हाथ की बनायी देवी देवताओ की तसवीरें कितनी थी ! और सफेद कागज की बनी ग्वालिन माथे पर दूध का मटका लिय चली जा रही है हिरन पीठ खुजा रहा है मोर पूछ पसार बहार दिखा रहा है—दाम दो आना चार आना आठ आना—बस।

खोआ भरी मोटी सी मलाई की मिठाई—सेर के भाव से लो पाव के भाव से लो। कितनी सस्ती !

दरची, कलछुल छोलनी, झाझरा कटोरा चूल्हे की पीतल की बाल्टी—ऐसी

एक बोल्टी माथ हो तो बाहर वही रमाइ के मरजाम की फिक्र नहीं रह जाती। कितनी सुविधा !

बर्फ की चट्टान पर मज धरे पान क ताज बाड लगाकर बेच रहा है—इस ठढे पान का जायका ही और है।

पडे न ताकीद की फिर बारिश आ रही है। जरा तजी स चलिय।'

पडे का काम है मदिर दिखाकर छोड देना। दो डग बढ बढ कर ही वह पलट कर खडा हो जाना। अच्छा नही लग रहा था उसे।

मथुरानाथ का द्वार बद था। जल्दी ही खुलेगा। हम सब भीड ठेलकर सर ऊचा करके नाट मन्दिर म जाकर खडे हो गय।

जरा ही देर म द्वार खुला।

मदिर खुलते ही अपने चारो ओर स कसा ता एक दबाव महसूस किया। मुझे बडी दी की फिक्र थी, दुबली हैं बेचारी। मैंने दायें हाथ स उनकी कमर जो पकडी, तो वह कभी तो माटी स अलग सी हो शून्य म उठी रह गयी। नीचे पाव रखने की जगह नही थी उस जगह को दूसर पाव ने आकर दखल कर लिया था। उसके बाद पता नही क्या जा हुआ, पल म ही लगा कि हम सब मिलकर झूल रहे है। एक बार हुडमुड करती हुई मामने चली जाती हैं और दूसर ही दम एक धक्क स नीचे सीढी क पास। तभी ही लुढकती हुई हालत म सबको उठाकर जान किसन बायी ओर ढकेल दिया बायें से ईशाणकोण की ओर—ईशाण म एक धक्का खाकर नऋत, वहा स वायु और फिर अग्निकोण म। जैसे कि भूकप स उथल पुथल हो रही हो। बदन का ढीला करके अपन को छोड दिया खासा मजा आया। मैं बडी-दी और मरकधे की कमकर पकडे हुए एक दक्षिणी बहू हसते हसत लाट पोट। जन्म तीरथ का निकली हू बहुत तरह की भीड का अनुभव हुआ है मगर यह अनुभव बिलकुल नया था। हसत हसत एक समय छिटक कर बाहर निकल आयी। दोनो हाथो स झटपट एक मोटे खभे का थाम लिया बडी दी ने थाम लिया मुझ। हमना बद हुआ ता आखो का पानी पोछकर आप म आयी।

बडी दी बोली, राज दशन ही है ! कबखन चरवाहा राजा बना—उसका रवया ही और !'

— लेकिन बडी दी मैं तो मथुरानाथ को देख नही सकी।

— बस हो गया। यहा आयी आकर सामन खडी हुई और क्या चाहिए ?

इसी म दफन हो गया।' कहकर बडी नी बाहर निकलने का उपक्रम करने लगी।

मथुरा शहर से बाहर थोडी दूर पर केशवदेव का प्राचीन मंदिर है। औरंगजेब ने उसे मस्जिद बना दिया। आगे चलकर केशवदेव उसी के पास एक छोटे-से मंदिर में विराजे।

पास ही कंस का कारागार—श्रीकृष्ण का जन्म स्थान। सीखचो से घिरी एक काली कोठरी-सी बनी पिता-माता का जलता हुआ प्रमाण दरवाजे पर दीवालो पर गोबर के बेशुमार छीटे। पूजा-व्रत म सिंदूर का टीका दिया जाता है यह तो मालूम है लेकिन गोबर का टीका देते कभी नही देखा। पडे ने कहा 'जिनके बाल-बच्चा नही होता वही स्त्रिया यहा मन्नत मानकर पुत्रवती होती हैं। वह सब बच्चे को गोद म लेकर आती हैं पूजा चढाती हैं गोबर का टीका लगा जाती हैं। गिन देखिये न यहा मन्नत मान कर कितनो को पुत्र प्राप्त हुआ है। गिनकर खत्म नहीं कर पायेंगी।

कारागार के निकट ही पुत्रकुंड। बडी दी ने आवाज दी सुनो-सुनो जल्दी आओ। यह देखो, हाथ कंगन को आरसी क्या ! जलता हुआ सबूत। अनिल तो किसी बात पर विश्वास नही करता वह मानना ही नही चाहता कि कृष्ण नाम के भी कोई कभी थे। उस दिन मेरी कितनी खिल्ली उडायी। यहा से लौटने पर अब उसे यह सबूत दिखाऊँगी कि कृष्ण की मा जच्चाखाने के कपडा को जहा के पानी म धोती थी उस पुत्रकुंड को देख आयी।

'क्यो पडा जी यही बताया न आपने ?'

उत्साह से पडे ने सर हिलाया हा हा। कृष्ण की गदी कथरिया यही धोयी जाती थी। नन्हा बच्चा पल-पल गदा कर दिया करता था।

ध्रुवघाट पर गई। रामकृष्ण देव ने इसी घाट पर बैठकर कृष्ण को गोदी म लिये वसुदेव को यमुना पार होते देखा था।

यमुना के और और घाटो से यह घाट बहुत निर्जन और शांतिपूर्ण है। यहा आने पर तुरत लौट जाने को जी नही चाहता।

विश्रामघाट। असुर निधन के बाद कृष्ण-बलराम ने यहा विश्राम किया था।

यमुना के घाट पर रोज साझ को आरती होती है। गंगाजी की आरती देखी है।

जब आ गयी हूं तो यमुना को भी देख लूं।

भागी भागी गयी—कहीं देर न हो जाय। घाट में इतने-इतने लोगों की भीड़, उस भीड़ में खड़ी होकर कितना देख पाऊंगी? बीच यमुना में लोगों से भरी नावें चल रही थीं। पंडे ने कहा 'वे लोग वहां से आरती देखेंगे।'

तो फिर हम लोग भी वहीं क्यों न चलें?

देखादेखी हम सब भी नाव पर सवार हो गये। नाव किनारे से खुली।

अब यमुना के घाट का मथुरापुरी का रूप निखरा। ऊंचे-नीचे महल, घर, मंदिर के शिखर, नहान के घाट। किसी पर डूबते हुए सूरज की आभा पड़ी है किसी पर पड़ी है निनात की घनी छाया। कुल मिलाकर किसी स्वप्नपुरी की माया-सी।

घाट पर ऊंची-सी एक वेदी। नीली बनारसी साड़ी पहने गोरे रंग का एक सुंदर-सा जवान पुजारी उस वेदी पर चढ़ गया। चौड़ी छाती पतली कमर—सुगम गठन।

नीचे से दो जन ने भारी-सा भारी आरती प्रदीप उसके हाथ में दिया। घी में भीगी बाती की लौ में प्रदीप में हवा लगने लगी। पुजारी शून्य में वृत्ताकार हाथ को घुमाने लगा प्रसन्न धीर होकर। शाम के अंधेरे में सब कुछ को छापती हुई आरती की उद्दाम शिखा नाचने लगी।

अपरूप यह रूप!

बड़ी-दी ने कहा जल्दी से किनारे चलो। आरती की अग्नि का स्पर्श करना होगा। मांचा—स्पर्श करना ही हो तो उस पुजारी के ही हाथ से।

बड़ी-दी को ढकेलती हुई ले जाकर वहां पहुंची। पुजारी हाथ में आरती प्रदीप लेकर वेदी से अभी उतरा ही था—हाथ बढ़ाकर उस अग्नि का स्पर्श किया। उसने उस विशाल प्रदीप को दोनों हाथों जतन से उतारकर वेदी पर रक्खा। भीड़ टूट पड़ी। पुजारी मंदिर की ओर चला। सारे बदन से तर-तर पसीना चू रहा था।—सौन्दर्य क्या केवल मन के आनंद के लिए ही है? नहीं। कितना गांभीर्य भी लाता है वह।

लौटकर आगरा होटल में आयी। बंगालीघाट में वे महिला-यात्री सब अपनी-अपनी गठरी पर सर गाड़े ऊंघ रही थीं। 'कान में लड्डू साढ़े आठ आने' पढ़ के

टैंटर के सामने सिल-लोढ़े से भंग की पिसाई चल रही थी। गुंडे की शक्ल का एक पंडा हाथ में बांस का लोटा लिए राम-हनुमान के गीत के अंत में टोले का नपाता हुआ एक हो कर रहा था और जोरों से भंग घोट रहा था। कुमिल्ला की वह छोटी सी बहू सामने खड़ी झूमती हुई सी लाड़ से बतिया रही थी।

बरगद के नीचे एक कोने में धुंधली रोशनी में बैठी वह दुखी विधवा पोटली खोलकर ध्यान से क्या देख रही थी। साग्न का एक निकर बोकर। शायद हो कि अपने दो साल के भतीजे के लिए, जो घर पर है उसने आज ही दोपहर का बाजार से खरीदा है।

तांगे में गिरिगोवर्धन जा रही थी। रास्ता जरा लंबा है। रास्ते के दोनों ओर गेहूं के सुनहले खेत। सुग्गों के झुंड के झुंड खेतों पर टूट पड़ रहे थे उड़ रहे थे। पाकड़ के पेड़ में सुग्गे का घोंसला, एक सुग्गी कोटर से लाल चोंच निकाल बैठी थी। मां होगी शायद। गीली माटी के बीच से कोलतार की सड़क—दोनों तरफ के बड़े-बड़े पेड़ों की छाया से ढकी।

बड़ी दी ने कहा 'भगवान की दया देख लो। बारिश नहीं है, बदली नहीं है, किस आराम से जा रहे हैं हम लोग।'

बड़ी दी के भगवान की दया का कूल किनारा नहीं पाती मैं। उठते-बैठते उनकी दया की महिमा सुना करती हूं। अभी वर्षा नहीं हो रही है तो कह रही हैं दया देख लो और बारिश होती भी रहती तो कहतीं, धूप से तकलीफ न हो, इसलिए उन्होंने वर्षा कर दी—यह क्या उनकी कम दया है।'

गाड़ी के पहियों के साथ साथ पंडों का एक दल साथ दौड़ता चल रहा था। एक ने कहा मैं अमुक हूं गिरिगोवर्धन के लिये मुझको पंडा कीजिये, दूसरे ने कहा 'मेरा नाम सबको मालूम है। मेरे जैसा दूसरा कोई पंडा नहीं मिलेगा। एक ने कहा, मैं हूं साढ़े चार भाई। नाम लीजिये कि सब कहेंगे, हां पंडा है।'

मैंने पूछा, यह साढ़े चार भाई क्या है? कपालाघाट में भी देखा, साढ़े आठ भाई लिखा हुआ है।

एक बार जब उससे बात कर ली तो अब उसे लिये बिना जा कहां सकने ?

उत्साह से उस पंडे ने कुहनी के धक्के से सबको हटाकर गाडी के अदर मुह बढाया। बोला, 'साढे चार भाई का मतलब हुआ कि हम पांच भाई हैं। पाच मे से चार ने शादी की है, एक अभी बाकी है। शादी किये बिना कोई पूरा नही होता, अधूरा रह जाता है।'

खानाबदोश की तरह जोर शोर घर गहस्थी साथ लिये दल के दल लोग चले जा रहे थे। बैलगाडी के ऊपर सरपत की छावनी, अदर छोटी-सी खाट। चलते-चलते रास्ते मे रुककर रसोई पानी करती हैं, पेड तले खटिया डाल कर बच्चे को सुला देती हैं। रात को बैलगाडी के नीचे उसी खाट पर खुद भी सो रहती हैं। ये यात्री चौरासी कोस की परिक्रमा मे निकले है। गाडी पर असबाब लादकर खुद सब पैदल चलत हैं। आधी पानी झेलते हुए महीने भर से ज्यादा इसी तरह चलते रहते हैं।

तागे वाला बूढा था। भक्तिमान। बोला, 'कहां कौन सी लीलास्थली थी, कौन जानता है ! असल मे तीन ही चीज असली हैं—यमुना, गिरिगोवर्धन और व्रजरज। बाकी सब इस चौरासी कोस के दायरे म।'

रास्ते मे पडा 'आंडिगाम'। दही का मटका माथे पर लिये राधा को नदी पार कराने के लिये यहा कृष्ण 'दानी' होकर बैठे थे। यही पर उन्होंने अरिष्टासुर का भी वध किया था, इसलिय गाव का यह नाम है।

गिरिगोवर्धन पहुचकर तागे से उतरकर हम नगर म दाखिल हुए। पडे ने हम लेजाकर एक बधे हुए तालाब के किनारे खडा किया। बोला, 'आप सब एक गगा तो देख आयी हैं अब इसे देखिये। यह है मानसगगा। कृष्ण ने एक बछडा रूपधारी असुर का वध किया था। राधा न कहा, असुर हुआ तो क्या, था तो बछडा रूपी ! उसे मारने से तुम्ह गोहत्या का पाप लगा है। पहले गंगा म नहाकर प्रायश्चित्त कर लो, फिर मुझे छूना।

कृष्ण ने कहा, 'गगा का जन्म मेर पादोदक से हुआ है। उस गगा म मैं कसे नहाऊ ? खैर फिर भी तुम्हारी बात मैं रक्खूगा'—यह कहकर कृष्ण ने मन से इस गगा की सृष्टि की। बोले, यही श्रेष्ठ गगा है।'

राधा ने कहा 'इसका सबूत ? इस दूसरे देवता भी मान, तब तो ?

कृष्ण ने तुरत देवताओ का आवाहन किया। देवगण दौडे-दौडे मानसगगा

पहुंचे। एक एक करके देवता आने लगे और राधा पूछने लगी—
—आप ?'
—मैं ब्रह्मा हूं।'
—और आप ?'
—मैं शिव।'
—'आप ?
—मैं मनसा, मैं लक्ष्मी, मैं वाराह, हिरण्य कश्यप सरस्वती यमुना, इन्द्र—इस तरह से अपना परिचय दे-दे कर सब जो जहां थे वहीं से आ गए। इतना करने के बाद राधा को विश्वास हुआ। बोली, हां, अब तुम नहा सकते हो।

इस मानसगंगा में नहाने से चौंसठ तीरथ का फल मिलता है। कार्तिक की अमावस्या को ग्यारह मन घी का दीया जलता है। मानसगंगा के ऊपर से इन्द्रधनु की तरह यह मोटी दूध की धारा छटती है, कभी इधर से उधर और कभी उधर से इधर। भगवान की जब जैसी मरजी। इतना दूध कहां से निकल आता है, कोई नहीं जानता। दूध से पानी बिलकुल सफेद हो जाता है।

मैंने कहा बड़ी दी चौंसठ तीरथ का फल मिलेगा। एक डुबकी लगाओ।

पानी देखकर बड़ी-दी जैसी भक्तिमती में भी आग्रह का भाव नहीं जगा। नन्हे नन्हे सेवारों से भरा पानी। नानी की भाषा में—पानी में भंग घुला है।

पंडे लोग सुविधा असुविधा के अनुसार ब्राह्मण पंडितों की तरह हर प्रकार का विधान देना जानते हैं। बोला, नहाए बिना भी चल सकता है पर पानी को परस कर माथे से छुलाना पड़ेगा।

बड़ी दी को लेकर पंडा सीढ़ी से नीचे उतर गया। मैं भी गयी। एक अंजुरी पानी लेकर पंडे ने बड़ी-दी के हाथ में दिया—'लीजिए अब मंतर पढ़िए।' कहकर जोर जोर से आधा मंत्र पढ़कर बाकी का खतम किए बिना ही उसने खप्प से बड़ी-दी के जुड़े हाथ को पकड़ लिया। कहा, कितनी दक्षिणा दीजिएगा, पहले यह बताइए।

इधर उंगलियों की फांक से टप टप करके गंगा चू रही थी। गंगाजल से ही लोग गंगा-तर्पण करते हैं। बड़ी दी झट मोटी दक्षिणा का ही वादा कर बैठीं। खुश होकर पंडे ने तब हाथ छोड़ दिया। कहा, 'अच्छा तो अब कहिए—नमो

मानसगगाय नम —हाथ का जल अब गगा म डाल दीजिये।'

बड़ी दी न सूखी अजुरी फाक कर दी। मानसगगा को मानसगगा मे ही तपण करके झटापट किनारे पर उठ आयी। बोली, 'उफ, ये किस तरह फदे म फसाना जानते हैं! भक्ति से मन ऊबते हैं लोग?'

पडे के पाले पडकर गिरिगोवधन क मदिर म घुमकर भी पूजा करनी पडी। हो सकता है आपस म इन लोगा की साठ गाठ रहती है। एक ले जाता है और दूसरे क हाथ सौंप देता है। उन्ह टालकर निकल आना मुश्किल है।

दादा झमट-झमेला मे वास्ता नही रखते। बोले झमले से क्या फायदा? जब इतना कष्ट करके आया गया है तो थोडा-सा कष्ट और सही। ये जो कहते हैं, वही मान जाओ।

यात्री को भापकर पूजा की व्यवस्था होती है। पडे ने कहा, 'गिरिगोवधन को फूल-चदन, भोग, वस्त्र और पचरत्न देना होगा।'

सुनते ही चौंक उठी, पचरत्न! क्या पता, कितने रुपये मीटेंगे ये।'

पूछा, 'पचरत्न क्या-क्या?

—यही 'सोना चादी तावा हीरा चुनी। हम लोगो के ही पास है। वही से खरीद कर लान क लिय जाना नही पडेगा।

—दाम?

—आदमी पीछे सवा रुपया लगेगा।

दाम सुना तो मन को मान ली। पडा पूजा की सामग्री ले आया। पूजा के लिए मैं और बडी दी बठ गयीं। गिरिगोवधन एक शिला हैं—देखने म बहुत हद तक शिव जैसी। लेकिन यह जम माटी फोडकर निकली हो, लिपी पुछी, चिपटी। उसी से ठक स लगाकर सूखा नारियल उत्सग किया अडहुल के बासी फूल चढा कर कहा इसी गध-पुष्प से तुम्हारी पूजा की। खीरा-केला देकर राजभोग दिया। चौकट लाल इकरग स वस्त्रदान भी हो गया। और पचरत्न? रूखड कागज की एक पुडिया हाथ म दकर पडा हा हा कर उठा—खोलिये मत, खोलिये मत गिर जायेगा खो जायेगा। और मत्र पढा कर उसने हाथ से पुडिया झट छीन ली। सभी उपचार से हमारी पूजा खतम हुई।

अब दादा और ब्रजरमण पास पास बठे। पडा गिरिगोवधन पर से फिर वही

फूल उठा लाया। दक्षिणा देने से ही सब शुद्ध हो जाता है। वही चीकट कपड़ा हाथ में लेकर हजारों आदमी कहते हैं, 'नारायण, इस नये वस्त्र से तुम्हें सजाया।'

सब पंडों को दक्षिणा देकर हल्का होकर चलना चाह रही थी। दक्षिणा पाकर गये तो अपनी अपनी राह लगे, मगर वह साढ़े चार भाई' हरगिज साथ नहीं छोड़ रहा था। पीछे पलटकर दादा ने फटकारा, 'तुम्हें साथ आने को कौन कह रहा है ?'

पान-जर्दा खाए कत्थई दांतों को निकालकर वह हंसा और हाथ मलते हुए बोला, 'पंडे को बुलाता कौन है बाबू पंडा आप ही आता है।

भक्तों द्वारा स्थापित यहां भी बहुत सारे देवी देवताओं के मंदिर हैं। चूंकि एकांत है। इसलिए रूप सनातन, अद्वैत महाप्रभु यहां आकर भी साधन भजन करते थे।

दाएं अद्वैत प्रभु, बाएं निताई।
मध्य के आसन बैठे चैतन्य गुसाई॥

मानसगंगा की परिक्रमा सवा कोस की। किनारे से चलने की पतली पगडंडी—दो-दो डग पर मंदिर। घूम-घूमकर सब कुछ देखा। यहां मणिपुरी यात्री और पुजारी ही ज्यादा हैं। उन्हें देखकर बड़ी-दी खुश हो गईं—जा-जाकर उनसे देशी भाषा में बात करने लगीं। वे भी हंसने लगे, बड़ी-दी भी हंसने लगीं। जैसे, मके के सगे-संबंधी हों सब, बहुत दिनों के बाद दूर देश में मुलाकात हुई हो। किसी ने छिपाकर संदेश भोग ला दिया, किसी ने आदर से आसन डाल दिया। कोई बुलाकर ले गया, जरा दूर जाकर बोला, 'असली चीज देख जाओ, बहुतों को इसका पता भी नहीं है। यह है गिरिगोवर्धन की जीभ।'

पीले पत्थर पर बहुत बड़ी जीभ की एक छाप। इसे रघुनाथजी स्थापित कर गए हैं। राज पूजा होती है।

चलते-चलते दादा ने बड़ी-दी से कहा, 'वह मंदिर यहीं कहीं है न ? जमींदार वाला, तराश के जमींदार का ?' बोलते न बोलते वहां पहुंच गये।

आंगन के कुएं में एक झक्की बुढ़िया पानी भर रही थी और लगातार बकती ही जा रही थी—'बापरे, अब नहीं बनता। राजा का दामाद, उसकी मरजी ही

और। उससे ताल मिलाकर कौन चल सकता है ? हाथ गया, रथ गया तो भी रिहाई नही—'

बाल्टी के पानी को कलसी म डालकर बुढिया ने कमर टढी करके कलसी को बगल म उठा लिया।

इतनी दर के बाद उसकी नजर मुझपर पडी।

पूछा, 'राजा का दामाद कौन ?'

झुकते झुकते बुढिया करीब आयी। इधर उधर ताककर गने को उतार कर बोली, 'राजा का दामाद ही तो हुआ। राजकुमारी पान देने के लिए गयी थी—उसे ले नही लिया ?' इतना कहकर बुढिया न कपाल पर शिकन डाल कर हाथ मुह की अनेक अदाओ म बाकी घटना को समझाया।

रास्ते पर आयी तो मैंने खीज से कहा, राजकुमारी पान देने गयी उसे ले लिया—मंदिर के ये सब क्या किस्से हैं ?'

बडी दी हस पडी। बोली यह तुम्ह नही मालूम है ? इसलिए तो राधाविनोद का नाम है जमाई देवता। तराश का जमीदार बहुत बडा जमीदार था। सब लोग राजा कहते थे। उनकी कुमारी लडकी राधाविनोद की पूजा किया करती थी—उन्ह नहलाती सजाती खिलाती पिलाती। बस, इसी मे लगी रहती। एक दिन भोग के बाद लडकी पान लेकर उन्ह खिलाने गयी कि राधाविनोद ने पान सहित लडकी को ही खीच लिया। तब से उस लडकी को फिर किसी ने नही देखा। तब से राधाविनोद यहा जमाई के आदर से हैं। जिन्होने कुमारी लडकी को अपना लिया, वह आखिर जमाई ही तो हुए। जमाई षष्ठी के दिन यहा बडी धूम धाम होती है। असली मंदिर वृदावन म है। यहा ये प्रतिनिधि हैं।

श्यामकुड, राधाकुड म जा पहुचो। दोनो कुड पास ही पास हैं। बीच म पक्के पक्के के रास्ते से बटे हुए हैं।

जगल झाडियो से यह जगह ढकी पडी थी। चैतन्य महाप्रभु लीलास्थली के उद्धार के लिए आये। खोजते हुए यहा आये, तो देखा अगल-बगल में धान के खेत हैं। महाप्रभु ने अजुरी से खेत का पानी लेकर माथे से लगाया। वहा की माटी का तिलक लगाया।

सीय सुप्त हुआ जान सखा भगवान।
धन खेता के अल्प वारि मे किया उन्होंने स्नान।

महाप्रभु ने कहा, ये दोनो धान के खेत श्यामकुंड और राधाकुंड हुए।'
बाद मे भक्तो ने खोदकर बधवाकर कुंड को कुंड जैसा बनाया। इन कुंडो की अपार महिमा है।

कुंड की माधुरी मानो राधा मधुरिमा।
कोई ऐसा नहीं बता जो पाए इसकी सीमा।

कुंड के किनारे किनारे कुंज—तुगविद्याकुंज, सुखदीकुंज चपकलताकुंज रसमजरी, कस्तूरी मजरी,—ऐसे ही कितने कुंज कितनी मजरी। सखियो के साथ राधा-कृष्ण कुंडो म जलकेलि करके कुंजो म कही-कही झूला करते थे, कही शृगार करते थे, कही आराम करते थे। वैष्णव लोग भोग आरती म इनके गीत गाते है—

दोपहर को राधा जी सूर्य पूजन छल से,
राधाकुंड आ पहुची महा कौतूहल से
सखियो के साथ आके कृष्ण जी से मिली
राधाकुंड मे रग रग की की उनने जलकेलि।
केलि समाप्त हुई तो तट के ऊपर आकर
बठ किया सिंगार जतन से दोनों ने जी भरकर
बठ गये करने को कान्हा उसके बाद भोजन।
रही परोसती राधा जी उमगे मनसे क्षण क्षण।

बडी दी ने कहा, लीला केवल रसास्वाद के लिए ही है।
जो यात्री आते है पहले श्यामकुंड का पानी सर से लगाते है तब राधाकुंड म उतरते हैं। खूब गोता लगा लगा कर नहाते हैं। राधाकुंड की ही प्रधानता है मानो।
श्यामकुंड को देखकर राधा को मान हुआ। बोली मैं तुम्हारे कुंड म नही अपने कुंड म नाऊगी।' और उन्होने हाथ के कगन से माटी खोदना शुरू कर

दिया। शुरू करना था कि सरसराता हुआ श्यामकुंड का पानी आया और राधाकुंड को भर दिया। कृष्ण ने हंस कर कहा, मेरे कुंड से मुझे तुम्हारा कुंड ज्यादा प्यारा है। मेरे कुंड में नहाने से लोग सभी पापों से मुक्त होंगे, पर तुम्हारे कुंड में नहाने से वे मुक्ति पायेंगे।'

पक्के से रास्ते के एक किनारे टोकरी टोकरी तिलकमाटी बेच रहे थे लोग। राधाकुंड की तिलक माटी पीली है श्यामकुंड की काली। पत्ते में दो। किसे किसे देना है उंगलियों पर गिनकर बड़ी-दी तिलकमाटी खरीदने लगी।

मणिबहादुर से भेंट हो गयी। रेवा दी को साथ लेकर आज वह भी श्यामकुंड-राधाकुंड में स्नान करने के लिए आये हैं। भेंट होते ही दोनों दल खिल पड़े। मणिबहादुर ने कहा, 'अब कोई परवाह नहीं, दो कुंडों के बीच जब फिर से भेंट हो गयी। तो गोलोक में हमारी फिर भेंट होगी। जरूर।'

अब आई याद—बड़ी देर से चल रही हूं। भूख भी लगी है। सामने ही पूरियों की दूकान। यात्रियों ने वहां भीड़ लगा रखी थी। भर भर कड़ाही पूरियां निकाल कर भी दुकानदार पार नहीं पा रहे है। और भी घी डालकर आंच को उसकाता तीन-चार जने मिलकर दर्जनों पूरियां बेलकर एक ही साथ कड़ाही में डाल देते।

कुछ गरम पूरियां और पेड़े खरीदकर खाये। पेड़ तले तांगा था, उसपर जा बैठी। ठंडी हवा में आंखें मुंद आने लगी।

बच्चे-बच्चियों का एक झुंड चिल्लाने लगा—

ऐ भैया, आठ काड़े के पांड काड़े के
आना, आना, आना।

समझ गयी, सब एक एक आना मांग रहे हैं। मगर ये तो बहुतेरे हैं। उनकी ओर जो ताका तो हाथ पसार कर उन्होंने गाना शुरू किया—

शाम कुंडा राधा कुंडा गिरि गोबरधना।
मधुर मधुर बंसी बजे यही वह वृंदाबन।

बड़ी दी तांगे पर आयी। मैंने कहा, ये घें घें करके क्या कह रहे हैं ? पद क्या है ? बड़ी दी बोली, अरे, यह तो वही गीत है। सदियों से यही गीत गाकर

मणिपुरी स्त्रिया हमारे यहा भीख मागने के लिए आया करती थीं—

'श्यामकुड राधा कुड गिरि गोवधन
मधुर मधुर मुरली बजे, वही वृदावन।'

वेला खत्म हो आयी तो एक दूसरे ही रास्ते से चली। रास्ते के बायी ओर मीलो तक पत्थर का ढेर। इस पत्थर के रग म एक खासियत थी। ऐसा पत्थर मैंने और कही नही देखा। बहुत कुछ स्लेट के रग का। जी म आया, एक पत्थर उठा लू, मा के ठाकुर के आसन के पास सजाकर रख दूगी।

तागेवाले ने कहा, 'भूल कर भी ऐसा काम न कीजिये माजी। यहा का यह गिरिगोवधन का पत्थर लेकर कोई इसे सह नही सकता। उस बार एक गुजराती एक टुकडा पत्थर ले गया था। बेचारे की क्या गत हुई! लडका मर गया, लडकी मर गयी मा मरी, स्त्री मरी—वनिज व्यापार मे नुकसान हुआ, पूजी-पट्टा सब गया—आखिर वह भागा भागा आया, पत्थर लौटाया तब राहत मिली।'

व्रजरमण ने कहा, 'विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने भी किसी से कहा था— रे, रे, मूख! तूने यह क्या किया? फौरन यह पत्थर वापस रख आ।'

बडी दी ने कहा, रहने दो मत लो। पति पुत्र लेकर घर करती हो क्या पता, क्या होते क्या हो?'

जितना ही आगे बढने लगी रास्ते भर मे देखती गयी, बचपन मे झीकना से जैसा घरौदा बनाया करती थी, सूखी घास पर पत्थरो के वैसे अनगिनती घरौंदे बने पडे हैं। भक्तगण अपने अपने नाम से बना कर रख जाते हैं। मन म मन्नत माने रहते हैं 'यह मैं घर बना गया। मरने के बाद जिसमे तुम्हारे पास घर मिले।

— अरे! देखती है न? तागा रोककर बडी-दी रास्ते पर उतर पडी। मणिपुरी यात्रियो की जमात मे बीस-बाईस साल की एक लडकी—पहनावे मे मेखला, बदन पर ओढनी, बडी दी जाकर उससे लिपट गयी। बोली 'तुम यहा?'

—'हा परिक्रमा को आयी हू।' ओढनी के आचल का उस लडकी ने दातो से दबाया। काच जैसी उसकी आखें डबडबा आयी। बडी-दी की ओर अपलक आखो ताकती रही। किसी के मुह मे कोई बात नही।

आमने सामने दो बुत खडे हो जैसे।

समय बीतता गया।

रेवती मे' कधे से हाथ उतार कर बडी-दी लौट आयी। आचल से आखे पोछती हुई ताँगे पर चढ गयी। पहिया से उडती हुई धूल म रेवती दूर मे ओझल हो गयी। दीर्घ निश्वास छोडती हुई बडी दी ने कहा, 'नन्ही-सी बच्ची को गोद म लेकर सिलचर म विधवा हो गयी। स्कूल म मास्टरी करती थी। पाच महीने पहले अभागिन के वह सहारा भी जाता रहा।'

आगरा को छोडकर किस रास्ते से जयपुर जाया जा सकता है? गो कि सीधा और सुभीत का एक ही रास्ता है, आगरा होकर जाना। बडी-बडी खोज-बीन के बाद त पाया, मथुरा से लगभग दो घटे ट्रेन् से चलकर एक छोटे-से स्टेशन मे गाडी बदल करके जाया जा सकता है, लेकिन चढने-उतरने का हगामा है, लेट होनेवाली गाडी का इतजार करना है। यह सब है। हाँ, तो भी ठीक है।

थोडा-सा रास्ता। दोपहर को रवाना हुए। ठकर-ठकर चलते चलते साढे आठ बजे अछ्नेरा' स्टेशन पहुचे।

प्लेटफाम पर आप अपना मुह देखती हुई बत्ती ?

ढाई घटे के करीब यहा बैठना था। समय कसे काटें? एक लाइट पोस्ट के नीचे असबाब रखकर चार पैसे का सेव खरीदकर अधेरे कोने मे छिपकर बठ गयी। दादा देखेंगे, तो नाराज होंगे, जहा-तहा यह सब खरीद कर खाना वह बिलकुल पसद नही करत।

गला बढाकर इस कोना उस कोना की खाक छानते हुए एक आदमी सामने आकर खडा हुआ। बोला, बहन जी, मथुरा स्टेशन पर आप ही तसवीर बना रही थी न?'

मैंने कहा, हा।'

वह बोला, 'मैं इससे कह रहा था कि यह बगाली जादूगर हैं।' यह कह कर उसने अपने साथी को सामने हाजिर कर दिया।

मथुरा स्टेशन पर बडी देर तक बैठना पडा। गाडी लेट थी। घाघरा-ओढनी वाली

जोधपुरी स्त्रियां वहां बैठी थीं। उन्हीं का स्केच बना रही थी। एक औरत उसमें से उठकर आयी। बोली, 'मेरे बेटे मनोहर की एक तसवीर बना दोगी ?' मैंने कहा, 'बना दूंगी। मगर अपनी कापी का पन्ना फाड़कर तुम्हें नहीं दूंगी।'

उसने क्या सोचा, क्या जाने। बोली, 'खैर न सही। तसवीर तो बन जायगी।' और, अपनी गोद के बच्चे को पांव पर बिठा कर बातों से उसे बहलाने लगी। मैं उसकी तसवीर बनाने लगी। *बन गयी तो देखकर मां की खुशी का क्या कहना !* बार-बार वह बच्चे का मुंह और कापी की तसवीर को देखने लगी। उसके चेहरे पर मातृत्व का कैसा गौरव फूट उठा ! उसके आठ-दस साल की एक लड़की भी थी। उसे भी लाकर सामने बिठला दिया। कहा, 'इसकी भी बना दो।'

सुंदर-सी लड़की। लाज से छुई मुई सी उसकी भी तसवीर बनायी। हमारे चारों ओर भीड़ लग गयी। मां हंसने लगी बेटी हंसने लगी बेटी का बाप हंसने लगा, जो भी देखने लगा, वही हंसने लगा। धक्कापेल करके और भी मां-बहुयें *सामने आ खड़ी हुई। 'मुझे बनाओ,' 'पहले मुझे'। आरजू मिन्नत।*

हुस् हुस् करती हुई गाड़ी आ गई। कापी बंद करके गाड़ी पर चढ़ गयी।

उस आदमी ने कहा, 'बहिन जी जरा इसे वे तसवीरें दिखायेंगी ? बिना दिखाये यह मेरी बात पर यकीन नहीं कर रहा है।'

बड़ा मामूली-सा आदमी। फटी खाकी कमीज बदन पर। मगर कितनी सरल *अंतरंगता ! उस एक 'बहिन जी' पुकार पर ही मन गल गया।*

सेव मुंह में डालते हुए झोले से कापी निकालकर उसकी ओर बढ़ा दी। रोशनी में जाकर दोनों दोस्त कापी के पन्ने पलटने और एक-दूसरे का मुंह देखने लगे।

होल्डआल का सहारा लेकर सो ही पड़ी थी शायद। दादा के पुकारने से जग *गयी। गाड़ी आने की घंटी हो गयी।*

प्लेटफार्म पर मालगाड़ी थी। हम लोगों की गाड़ी दूसरी ओर रुकी। फर्स्ट और सेकंड क्लास के मुसाफिरों ने अपने हक से दरवाजा बंद कर रखा था। खिड़की से मुंह निकाल निकालकर देख रहा था कि हम कुछ लोग कुलियों को लेकर गाड़ी के इस छोर से उस छोर तक दौड़ रहे हैं। जिस डिब्बे के पास जाकर खड़ी होती, उसके लोग दूसरी ओर दिखा देते— उधर काफी खाली जगह है।

उधर जाते ही उस डब्बे म लोग बोझ गिरा देते— छह आदमी हो गये हैं। जगह भर गयी है। और वही देखिए।' लोग थड मे, इटर म झूलते हुए चल रह थ। सुई की भी जगह नही थी। गाडी खुलने का समय हो आया। दौडकर स्टेशन मास्टर, गार्ड, टिकट-कलक्टर—जिसे पाती, उस ही पकडती। इतनी बडी गाडी हैं जहा भी हो, जैसे भी हो हम लोगो को चढा दीजिए। मगर वह सब निर्विकार थे। सवारी गाडी और मालगाडी के बीच की खाली जगह म एक दफा और इधर से उधर हम दौडे। गाडी चली गई, मालगाडी चली गई—हा किए हम चार जो लाइन पर खडे रह गये।

गुस्से से, दु ख स गर-गर करती रही। काला कोट पहने जो जहा थे, उन पर उबलती रही। दादा से कहा अब जयपुर, उदयपुर, चित्तौड नही जाती। कही नही। अभी ही दिल्ली लौट जाऊगी, दिल्ली से हरिद्वार, वहा से सीधे घर। क्या बडा-दी ?'

बडी-दी न कहा, 'अच्छा लगा, मन म खटका हुआ। रास्ते के इन झंझटो म तुम्हार दादा को तकलीफ देना—लडके सुनेंगे तो क्या कहग ? जाना स्थगित ही कर दो। मुझे भी अब उत्साह नही हो रहा है।'

दादा ठडे आदमी हैं इसी बीच उनका गुस्सा, उनकी खीज जाती रही। बोले, 'छोडो भी। क्या हर्ज है, अभी ही कुछ तै नही। क्या तो रात भर का समय तो हाथ म रहा, कल सवेरे सोच विचार कर ठीक किया जायेगा।

—'नहीं-नहीं, कल सवेरे क्या सोचना ! हरगिज नही जाऊगी। यह तै है। जयपुर का टिकट लौटाकर दिल्ली का टिकट ले लीजिय।

उन्ह स्थिर नही होने दिया।

दादा बोल, 'टिकट तो लिया है मथुरा मे। ये लोग क्या लौटाने लगे ? फिर वही लिखा-पढी हजार हगाम। इन्ही कुछ रुपयो के लिए फिर शायद आन को कह।

मैंने कहा, 'न होगा तो धरमदड ही लगेगा। फिर भी आप दिल्ली का टिकट कटा लीजिए बाद की फिर सोचेंगे।'

दादा ने अतिम बार फिर बडी दी को समझाने की कोशिश की।— आज न सही, कल चलेंगे। जयपुर ने कौन-सा कसूर किया ?'

बडी-दी सर हिलाकर वही, उ, हू हू कहती गयी। लाचार दादा को जाकर दिल्ली का टिकट कटा लाना पडा।

गुस्सा थोड़ा पड़ा। जाकर वेटिंग रूम में घुसी। जयपुर नहीं गयी, खूब सबक सिखाया! किसे यह पता नहीं। अब राहत की सांस लेकर होल्डआल खोलकर कंबल ओढ़कर लेट गयी।

नींद नहीं आयी।

तमाम रात मन में यही बात गड़ती रही, अहा, काफी का प्याला पाकर मनोहर की मां को तसवीर दे दी होती!

दिना के तजुर्बे से दादा शायद स्त्रिया के मन को अच्छी तरह से ही जानते हैं। दूसरे दिन सवेरे वेटिंग रूम के नहान घर में नहाया, उठी होकर धोती के यहा की धुली साड़ी-ब्लाउज पहनकर, कांच के ग्लास से दो ग्लास चाय पीकर, फेरीवाले से खरीदी हुई गरम पूरी में दांत लगाया कि दादा ने कहा, 'मैं कुछ कहता नहीं, तुम लोगो की अपनी मर्जी, मगर एक बात सोच देखो इतनी दूर आकर लौट जाना ठीक होगा कि नहीं। असली गोविंद और गोपीनाथ को देखने के लिए इतना आग्रह किया! खैर सोच देखो। मैं यह नहीं कह रहा हू कि जाना ही पड़ेगा। दिल्ली के टिकट तो ले ही लिए गए हैं।'

तरकारी के आलू को पूरी पर दबाते-दबाते बड़ी दी की ओर ताका। देखा, यह भी मेरी ही ओर ताक रही हैं।

मैंने दोनों आखें नचाइ, यानी क्या ख्याल है बड़ी-दी ?

बड़ी-दी ने नजर झुका ली। हर के हाथ में एक एक पड़ा दिया।

मैंने कहा, 'तो फिर जयपुर देखते ही चलें। रास्ते के झमेल झेलने ही पड़ेंगे— यह सोचकर ही तो घर से निकली हैं और इतने में ही ऊब जाए ? लौट कर लोगो से कहूगी कौन मुह से ?'

बड़ी-दी ने कहा, यह भी ठीक है और यह भी ठीक है, आखिर गोपीनाथ ने क्या बीच रास्ते से लौटा देने के लिए इतनी दूर खींचा ? मुझे लगता है उनकी ऐसी इच्छा नहीं है।'

—'तो फिर खरीद लीजिए टिकट। जो गाड़ी आ रही है उसी से चलेंगे।

दादा ने कहा, दिल्ली के टिकटो का क्या होगा ?

— एक बार और गच्चा लगेगा, और क्या ? कहकर जल्दी जल्दी हाथ मुह पोछकर टोकरी-बक्सा बंद करके तैयार हो गयी।

गाड़ी पर सवार होकर हम हंसी छूटी। हि-हि ह हि हि हि हा हा हा। मैं और

बड़ी दी तो लोट-पोट। बेचारे दादा ! जितना ही उनकी ओर देखती, उतनी ही ज्यादा हंसी आती। सोच नहीं पाती, आखिर कल हम इतना गुस्सा क्या आ गया, किस पर ? गाड़ी पर चढ़ नहीं सकी, इसमें कसूर किसका है ? छोटे स्टेशनवाला यह रास्ता चुना किसने था शौक से ? दादा पर नाहक ही यह फजीहत ! मुस्कराकर उन्होंने सब सहा। इस उम्र में वह बार-बार टिकटघर दौड़ते रहे ! उतनी रात को टिकट खरीद, टिकट बदले।

दादा ने कहा, 'करता तो क्या ! उस समय जो हालत थी तुम लोगों की कि मैं नहीं कहता तो फाड़ खाती। मुझे पता था कि दूसरे दिन सब ठीक हो जाएगा। इतने दिनों से इतना कुछ देखता आ रहा हूं इतना नहीं समझता कि किस बात का क्या अंजाम होगा !'

डिब्बे में और भी कई पंजाबी महिलाएं थीं। इनमें से दो तो जयपुर उतरेंगी। एक बड़ी उमर की है, और एक चारेक साल के एक लड़के की मां है। पति के पास जा रही है। चेहरे पर बड़ा शर्मीला-सा भाव। मां-बेटे में आमने-सामने बैठे बात-चीत हो रही थी—उन्हें लिवाने के लिए बाप आएगा कि चाचा को भेजेगा उन्हें शायद हो कि दफ्तर का काम पड़ जाय।

सबसे मेल हो गया। गप शप में समय निकल गया। गाड़ी जयपुर में रुकी। बड़ी उमर वाली जो महिला थी, वह तो दो स्टेशन पहले से ही शृंगार में जुट गयी। करीने से बाल बांधा, लोटे में पानी लेकर खिड़की से बाहर निकाल कर मुंह में साबुन लगाया, दोनों पैरों को उठाकर उन पर पानी डाला, बाथरूम में जाकर सादे सिल्क का कुरता-सलवार पहनकर आयी। और अब आइना निकाल कर मुंह में पावडर पोतने लगी। यहां गाड़ी काफी देर तक रुकती है, शायद इसीलिए निश्चित है।

हम लोग उतरे। सामान-वामान इकट्ठा करके एक ओर खड़े हो गए। एक पंडा आ पहुंचा। नयी जगह। किसी परिचित को जानकर ही खबर नहीं दी गयी। किधर से कैसे जाएंगे, कहां ठहरेंगे ! दादा ने कहा, 'एक पंडे का लेना ठीक है, क्या ख्याल है ?'

लेकिन साथ लें किसे ? हम लोगों में पंडे का चुनाव चलने लगा। हमारे सामने से वही बड़ी उमर वाली महिला बन-ठनकर नमस्कार करती हुई बगल से गुजर

गयी। वाह खूब! माला पहले से भी और खूबसूरत लग रही थी।

एक लंबे दुबले पंडे को ठीक करके हम लोग तांगे पर सवार हुए। आंखों में धूप की आंच लगने लगी। चश्मे की खोज में कंधे के थैले में हाथ डाला। थैला खाली। सदा की आदत है चलने फिरने दौरान में हाथ रखा रहता है। मेरा बहुत दिनों का साथी वह चश्मा नहीं था। कलम नहीं थी। ढेरों फेंच प्रेप पेंसिल थी, बड़ी मुश्किल से विदेश में जुगाड़ किया था उन्हें नहीं थी। हां क्या गयी सब? गाड़ी पर सवार होने के बाद भी मैंने उनका इस्तेमाल किया था। वहीं सब गिर गए क्या? गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी ही थी। मैं दौड़कर डिब्बे में गयी। खिड़की के पास के गद्दे को हटा कर देखा, झुककर बेंच के नीचे देखा बर्थ पर हाथ से टटोल कर देखा—कहीं नहीं। हम लोगों के साथ एक और भी प्रौढ़ा स्त्री थी। कोने में बैठी थी। उन्हें और दूर जाना था। बोली 'वह सब चीजें आपकी थी? मैंने तो देखा, वह मोटी महिला थी न उसने अपने हैंड बैग में भर लिया।

यही बड़ी उमर वाली खूबसूरत महिला!

मन खराब हो गया। आंख मुंह बंद करके निकल आयी।

कोचबक्स से पंडे ने आवाज दी, 'बाबू जी धरमशाला चलेंगे कि किसी होटल में ठहरेंगे? मुझे अच्छे होटल की जानकारी है जाना हुआ होटल।'

बेला खूब आयी थी। बहरहाल कहीं ठहर जाना ही ठीक है। दादा ने कहा, 'आप अपने जाने हुए होटल में ही ले चलिए।

रास्ते के किनारे एक बड़े से देशी होटल के सामने तांगा रुका। बाहर से मकान का रूप देखकर ही खुश हो उठी। सीढ़ी से उतरने पर गयी। बीच में खुला आंगन चारों तरफ बरामदा, हर बरामदे पर चार चार कमरे। पलंग, कालीन, परदा सोफा से बदस्तूर सजा सजाया।

होटल मारवाड़ी यात्रियों से किलबिल कर रहा था। तीन ही कमरे खाली थे। तीन में से जिस कमरे में भी गयी बाथरूम की बेहद बदबू आ रही थी। नाक पर आंचल देकर बरामदे पर घूमी—तमाम वही बदबू। झट वहां से निकल आयी। ऐसी जगह में रात दिन रहना दूभर है।

पंडे ने कहा 'तो फिर एक धरमशाला है। नई बन रही है।

कहा, 'अच्छा, वही चलिये।

सदर रास्ते को छोडकर तागा गली-कूचे से चला—मगर धमशाला के दशन नही।

पडे ने सकुचाते हुये कहा यही कहीं पर होगी। मेरा माला उस दिन कह रहा था।

खोजते खोजते अधेरा हो आया। आखिर इट ढेले की ढेरो वाली एक धमशाला म हमे ले गया। निचले तल्ले की दीवारें खडी हो रही थी उसी के एक कमरे म आज एक यात्री परिवार उतरा था। पति को देवर को सामने बिठा कर पत्नी लोहे की अगीठी म रोटी सेंक कर खिला रही थी। कलई की हुयी पीतल की थाली म बुदिया लाकर फश पर रखती हुयी उन्होने हम देखकर हाथ-भर घूघट काढ लिया।

कबूतर के दरबो जैसे कमरे। न खिडकी, न और कुछ। बाहर भीतर आने-जाने के लिये सिफ एक दरवाजा। देखते ही वडी दी हनहनाती हुयी रास्ते पर आ गयी। बोली, ऐसे पडे के पाले पडी हू कि सारी रात घुमा कर जान लेगा। मैं पूछती हू जयपुर शहर म क्या दूसरा कोई होटल नही है ? किसी होटल मे ही चलिये—उन्होने यह कहकर पडे को डाट बतायी।

डाट खाकर पडा तत्पर हो उठा। भारी गले से वह तागवाले को ताकीद करने लगा, सीधे चलो, दायें घूमो, बायें चलो।

जिस रास्ते से आये थे, उसीसे होकर फिर शहर म पहुचे और एक होटल के सामने जाकर रुके।

—'मैं यही का हू। मेरी जान म यहा इससे अच्छा दूसरा होटल नही है। —बोलकर पडा निस्पृह भाव से खडा हो गया।

अब अच्छा हो या बुरा, रात यही बितानी है—मन म यह तै करके ही हम ताग पर से उतर पडे।

अजीब और विशिष्ट होटल। रास्ते से पतली और अधेरी सीढी सीधे दुमजिले तक चली गयी है। तल से चीकट दीवाल बदन से लगती। एक चढता है एक उतरता है। विपरीत दिशा से दो आदमी आते हो और आमने-सामने पड जायें तो एक को पीछे हटते हुये उतर आना पडेगा। ऊपर वाला आदमी चिल्लाता रहता है 'अभी कोई मत आना, मैं उतर रहा हू। मुझे अपने पुराने मकान की

याद आ गयी। सोने के सारे कमरे थे एक ओर नहान घर—हाफ-डोर से अलग किया हुआ। छुट्टी-वुट्टी के दिन अपार मर्दों की भीड़ होने पर यह नियम कर दिया जाता था कि जो कोई भी नहान घर में जायेगा उसे गाना गाते रहना पड़ेगा। नहीं तो गलती से और कोई चला जा सकता है। भानजे ने कहा, 'मैं तो गाना नहीं जानता, मेरा क्या होगा?' और दौड़कर वह लड़के के हाथ से माउथ आरगन ले आया।

होटल के दुतल्ले पर पतला कारीडोर। दोनों तरफ उसी नाप के छोटे कमरे। सीढ़ी के पास एक ही नल। दीवाल में सूराख करके डाले रबर की नली से नहान घर में पानी पहुंचाया जाता है। वहां की बालटी भर जाती है तो रबर का वह पाइप तिमंजिले पर चला जाता है। रसोई घर के बरतनों को भर लेने के बाद बरतन माजने की जगह पाइप को टिन में छोड़ दिया जाता है। तब तक नीचे के लोग चीख उठते—'नल खोलो मंजन लगाकर कब से खड़ा हूं मुंह धोऊंगा।' नहान घर का आदमी दरवाजा खोलकर बाहर झांकता—उसे थोड़ा-सा पानी और चाहिये। रसोइया चिल्लाता, 'ऐसी नौकरी से बाज आया मैं। दाल धोते न धोते पानी गायब। रसोई कैसे पकाऊं? ठीक समय पर भोजन न दो तो काना मनेजर गाली-गलौज करेगा।' हर पल, हर दिन हो-हल्ला, छीना-झपटी। जोरदार आदमी जिससे जैसा बनता, इसी हालत में बीच-बीच में पानी ले लेता।

जयपुर को लोग खूबसूरत शहर कहते हैं। चौड़े रास्ते के दोनों किनारे लाल पत्थर के दालानों प्रासादों सब करीने का, एक-सा। साफ सुथरा। कुल मिलाकर बेशक सुंदर है। लेकिन अगर कोई मुझे यहां रहने को कहता तो मैं अपने मन की खुशी से वहां घर बसाती, जहां शहर के पास सुबह की सुनहली धूप पहाड़ों से होती हुई सब कुछ को छूती चली जाती है। जिधर भी देखूं, मन शिशु मानो खुले आंगन में खेलता फिरे। कभी जाकर छिप जाए गेहूं के खेत में, कभी जाकर घोर के पेड़ की जकड़ से टिककर पांव पसारे बैठ जाय और कभी दो पहाड़ों के बीच बिछे हरियाली के आंचल में मुंह गाड़ कर सो रहे। यह विशेषता

शहर के पक्के कलेजे मे खोकर फूटा मिलने को !

तागे पर सवार होकर चलते चलते मार्नसिंह के किले म पहुचे । बीच के आने-जाने के रास्ता को छोड कर रात भर के पहाडा की पात यहा आकर दोना ओर से मिली हैं। गोया आसमान ढकी डेवढी हो। उस की फाक मे हरियाली घिरे दिगत की गाद म दूर तक विस्तीण नगर दिखाइ पडता है। पहाड के ऊपर किले म बैठकर देखा करते थे मानसिंह यह अपूव शाभा और देखा करत थे बडी दूर स आसमान म गद के बादल स दुश्मनो का आना।

बाग-बगीचा तालाब फुहारो से घिरा किला। पत्थरो का चौडा रास्ता घूमते हुए ऊपर का उठ गया है—पहाड की चाटी पर के महल के प्रागण तक। इसी रास्ते से मानसिंह हाथी की पीठ पर ऊपर जाया करत थे। राजा प्रतापादित्य को लडाई मे शिकस्त देकर वह इसी रास्त से जसार की जसारेश्वरी को राज अत पुर म ले आए थे और ले आए थ जसार की रूपसी युवती राजकुमारी का।

पडे ने कहा, 'पहले यहा देवी के सामने नर बलि हुआ करती थी। नर-बलि बद हो जाने स देवी का रजिश हुई। तभी स देवी गुस्स से गरदन टेढी किए हुए है।'

श्वेत पत्थर की सीढी, श्वेत पत्थर के खभे श्वेत पत्थर की गली-दीवाल सबको पार करते हुम श्वेत पत्थर क आगन म पहुचे। चारो ओर धप धप सफेदी, जैसे जुही-बेला की चुनाई का महल हो। बीच म विराजमान हैं मा जसोरेश्वरी। लाल चोली पहने, जसे काले रग की नई दुल्हन हो। लजीली ग्रीवा भगिमा। काली नुकीली नाक पर हीरे की कील जलती-सी रहती है। बडी ही सुदर मूर्ति। ऐसी देवी-मूर्ति मैंने कही नही देखी। इतनी सुदर भगिमा। और इसी को पडे ने कहा कि गुस्से से देवी गरदन टेढी किए हुई हैं! यही क्या गुस्से की अदा है ?

रक्त पट्टाबर धारी पुजारी दोना भाई सामने आकर खडे हुए। देवी पूजा के लिए मानसिंह एक बगाली पुजारी परिवार को भी साथ ले आए थ।

देखने मे पुजारी दोनो भाई सुदर। बगाली यात्री देखकर खुशी से दानो हसे और पडे से परिचय पूछा। अब य बगला नही बोल पाते। वशानुक्रम से यही शादी-ब्याह करके ये बिलकुल बदल गए हैं। लेकिन हा, इधर दो लडको को पढने के लिए कलकत्ता भेजा है। एक लडके का ब्याह बिहार म किया है। फिर से बगाल मे क्रिया कम करना शुरू किया है।

इस राजा के पहले जो राजा थे, वह गोविंद के उपासक थे। 'शक्ति' उपेक्षा मे पड़ी थी। वर्तमान राजा शक्ति के उपासक हैं। राजा होते ही इन्होंने मंदिर का संस्कार कराया, जयपुरी पत्थर के कारूकार्य से मंदिर की शोभा को निखारा। दोनो तरफ हरे पत्थर के ताजे पेड़ केले के। प्रवेश द्वार पर पीतल के दरवाजे पर प्रार्थना खुदवाई—

शिला देवि हो दृढ़ अचल, शंकर अचल समान।
ध्यान मान थो मान का रे मन दो बल ज्ञान।
यह किशोर विनती सुनो, हे जगजननी आप।
जयपुर पति का तपन सम, हो तप तेज प्रताप॥

गम गम करके बलि की डंका बज उठी। हम मंदिर से बाहर निकल आए।

अब घूम घूमकर मानसिंह का महल देखने लगी। मानसिंह के बारह रानियां थीं। नीचे की मंजिल मे एक आंगन के चारों ओर बारह रानी के महल। ऊंची ऊंची दीवाल। सुरक्षित। एक एक रानी के दो दो कमरे रसोई सामने छोटा-सा खुला बरामदा। लगातार एक के बाद दूसरा। बराबर बराबर बंटा, जैसे रानियों का कदखाना! हर महल मे ऊपर जाने या नीचे उतरने की एक एक सीढ़ी है। बड़ी ही मामूली खुरदरी दीवाल और फर्श। आंगन के बीच मे एक चौतरा। एक ही सुख दुःख से दिन महीना काटती एक ही उम्मीद लिए इंतजार म बैठी रहती हैं—यह चौतरा ग्यारह रानियों का कामन रूम है।

बारी बारी से बारह म स एक रानी साल मे एक महीना राजा के साथ ऊपर रहती हैं। पहले उसी एक महीने की रानी का नहान धर देखने गयी। राजा के अंक विलासिनी गुलाब जल के फुहारे म नहाती थी। अलिंद म बैठकर बाल सुखाया करती थी। कांच के कमरे म पड़ी वर्षा देखा करती थी। दरबार से अंदर महल को आते समय सुहाग मन्दिर म राजा के माथे पर फूल फेंका करती थी। सुरंग से खाने के कमरे म जाते थे, दीवालो मे तीर्थ स्थानों के दृश्य आंके हुए— उन्हीं को देखकर सभी तीर्थों का फल लाभ करके राजा रानी अगल-बगल खाने बैठा करते थे। उसके बाद शीशमहल म जाकर एक रानी लाख रानी होकर राजा के बगल मे विश्राम करती थी।

एक महीने की पटरानी के विलास के दुख से मन अनुकंपा से भर उठा।

मैं और बडी-दी रोज एक ही तरह से सजती थी। लाल कोर की तशर की साडी। सब सोचते, हम मा बेटी हैं या कि दो बहने है। ननद भौजी नहीं समझते कोई।

हाथ पकड कर चली आ रही थी—खिलखिला कर हस उठी बडी दी। कदम रोककर गरदन फेरी। देखा मानसिंह की बारह रानियो के प्रभाव से उदभ्रात होकर पडे न दादा को कस कर पकडा है। कह रहा है, 'इतने से नही होगा बाबू। अपनी दो रानियो के नाम से मुझे दुगनी दक्षिणा देनी होगी।

गोविंदजी राजभवन म हैं—शहर मे। गोपीनाथ भी शहर म ही हैं किंतु दूसरी जगह। और, मदनमोहन हैं करौली म।

ब्याह के बाद राजकुमारी ससुराल जाने लगी। वह जिद पकड बठी, 'मदनमोहन को मैं साथ लेती जाऊगी।'

राजा ने कहा, मदनमोहन को तो मैं भी चाहता हू। तुम गोविंदजी को ले जाओ, या गोपीनाथजी को ले जाओ।'

लेकिन राजकुमारी मदनमोहन के लिए ही अडी रही।

राजा ने कहा खर आख बाध देता [redacted]। उस हालत मे हाथ बढाकर जिसे छू लोगी वही तुम्हारे।'

आख मिचौनी का खेल हो जस मदनमोहन, गोविंदजी गोपीनाथजी को उलट पुलट करके रखा गया। राजकुमारी ने टटोलकर आखिर मदनमोहन का ही हाथ पकडा। वही हाथ पकडे हुए ही वह मके से ससुराल गई। उसी समय से मदनमोहन करौली मे ही है—बेटी की ससुराल मे। उनके दर्शन तो नसीब नही हुए पर गोविन्दजी का मुखडा देखा गोपीनाथ का वक्षस्थल देखा। आधे-आदमी जितनी ऊंची काले पत्थर की दो प्रतिमाए।

राजभोग और राजसुख म यो ही, सुगधित पुष्प चदन से शृगार होता है, गुलाबजल के फुहारे में स्नान करते हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के अलकारो स नित्य नये बाने में सजते हैं।

दरवाजे पर झुककर सर छुलाया। देखने की साध थी, पूरी हो गई।

बडी-दी ने कहा, 'गोविंद की सध्या-आरती होगी, देखकर ही चलें।'

बडी-दी दरवाजे पर बैठ पडी। उनके पीछे मैं भी बैठ गयी। आरती देखने के लिए कितनी ही नर-नारियां आयी। दो मणिपुरी आदमी मृदंग बजाकर उनके सामने गीत गाने लगे। गीत के सुर के साथ साथ सारे शरीर का हिलाकर नाच की अदा से हाथ पाव उठाने गिराने लगे—जैसे हवा मे पैर रखकर चल रहे हो।

दो मारवाडी स्त्रिया तब से मंदिर के श्वेत पत्थर के चौखट का दोनो हाथो से दबा रह थी—गोया गोविंदजी की पद-सेवा करके धन्य हो रही हो।

एक बूढा कोन म हजार टुकडी लकडी गुथी विराट माला फैलाए जप कर रहा था। गले म जरी की चादर डाल हाथ जोडे शहर के कई गण्य मान्य व्यक्ति खडे थे। आरती के बाद प्रसादी तुलसी चदन लेकर वे चले गए।

पुरोहित ने सब पर शांति-जल छिडका। प्रसाद बाटा।

उसके बाद दोनो तरफ के भारी परदे को खीचकर गोविंद को ओट में कर दिया।

हम लोग उठ पडे।

मंदिर पार करके आधी जोत आधी छाया वाले नीम के पेड तले से जा रही थी। आवेश विभोर बडी दी न दोनो हाथो की मुट्ठी मे दबे तसर के आचल को बढा कर मेरे माथे से लगाया। बोली, 'मैंने यह क्या पाया। यह भी क्या संभव है ? और उन्होंने आचल भरी मुट्ठी को छाती से लगाया।'

क्या पाया है, मैं जानती थी। परदा खीचते समय पता नही पुजारी के मन म क्या आया, उसने गोविंद के गले की एक जूही की माला खोलकर एक समय आखें मूद किये बठी बडी-दी की गोदी म फले आचल म फेंक दिया। उसी के साथ प्रसादी इत्र की एक फाहा भी।

तीर्थवारि

दिल्ली होत हुए फिर हरिद्वार आ गयी। अबकी और कोई बात नही, पत्ता पोथी, तिथि घडी देखा पूणकुभ के स्नान का निर्मूल योग।

इन कई दिनो मे पूरे कनखल-हरिद्वार की शकल ही बदल गयी। चारा ओर धाम धूम, हलचल, यात्रिया की रेलमपेल आनद उत्तेजना की लहर—जैसे ब्याह के घर की धूमधाम हो, उत्सव-समारोह की भोर हो।

पेड-पेड म कोमल कोपलें, आम के पल्लव मे नवीन रूप, रास्ता के पास के झूलते हुए झिर-झिर पत्तो वाले घने पडो मे लाल फूल भर गए हैं।

भार होते न होते दूसरे दिन हरिद्वार चली आती।

पद्मिनीनायके मेषे कुम्भराशि गते गुरौ।
गगा द्वारे भवेद योग कुम्भनाम तपोत्तम।

पुण्य स्नान का आज वही कुभ योग है। सूय मेष राशि मे और बृहस्पति कुभ राशि मे अवस्थान कर रहे हैं।

पहले ही गगा नहाकर हरकी पैडी मे जा बैठी। मन मे साध थी कि उस बार की शिवरात्रि की तरह सामने बैठकर साधुओ का स्नान देखूगी। उस दिन भी तो यही बैठी थी मगर घुसने मे कितनी मुसीबत उठानी पडी थी। आज इसलिये चालाकी करके पहले से ही आ बठी। अब हमारी पूछ कौन पकडे? अबकी हम लोगा की जमात भी भारी थी। मणिबहादुर फिर से आ गए हैं—बहुत सभव है रेवा-दी की जिद से। मौसी जी भी साथ हैं—रेवा दी क दो भाई-बहन भी हैं। सेवाश्रम के और भी यात्रिया के दो दल हमारे साथ हो लिये हैं। सभी मिलकर जम जमाकर बठ गए। अब फिक्र काहे की? चार-छह घटे समय काट देने मे क्या लगता है? उसके बाद तो साधुओ का स्नान शुरू हो जाएगा, पल-पल आखो के सामने दृश्य पट बदलता रहेगा। तन्मय होकर देखते-देखते शाम कर दूगी।

मगर मुझे भूख-सी तो लग रही है। साथ में कुछ पल-पल रहा होता तो क्या बुरा था ?

बगल में बैठी दो पंजाबी स्त्रियां पूरी-तरकारी खा रही थीं।

बड़ी दी बोली उधर देखो मत तो। वहां देखकर तुम्हें भूख लग आती है।'

मैं उठ खड़ी हुई। कहा जरा मेरी जगह रखना मैं जरा घूम आती हूं।'

घाट में तिल धरने की जगह नहीं। आज जैसे दिन में कितने लोगों की आंतरिक कामना है—यहां स्नान करेंगे। कैसा परम विश्वास। पानी में एक डुबकी लगाने में ही क्या इतना पुण्य होता है। हंसदेव ने कहा था, 'विश्वास हो तो सब होता है। धनी और गरीब, आज सब एक ही घाट में उतरते हैं। पड़े की एक ही फटी चटाई पर बैठते हैं, एक ही टोकरी में सब कोई अपने सूखे कपड़े रखकर नहाने के बाद पहनते हैं।

घड़ा घड़ा दूध डालकर लोग गंगा को पिलाते हैं। समय लड़का मां को पीठपर लादकर तर्पण कराता है, मां नहाकर अंजुरी में पानी लाकर अपने तीन महीने के बच्चे के माथे पर डालती है। आज के इस मंगल मुहूर्त में सबका कल्याण हो। कल्याण कामना से छाती भर आयी, मन में प्रिय परिजन तिर आये, एक चेहरा आया मं उग आया।

अपनी जगह पर लौट आयी।

बड़ी-दी ने कहा तुमने देखा नहीं, गले भर पानी में अगल-बगल खड़े होकर पति पत्नी ने अंजील में पानी ले-लेकर तर्पण किया। तर्पण के बाद एक दूसरे के गले लगकर दोनों ने आपस में कृतज्ञता जताई और पानी से निकल आये। उनके होंठों पर कैसी एक अलौकिक हंसी थी। कितनी मीठी।'

हटो हटो उठो उठो' का एक शोर मचा। चारों ओर से एक दबाव पड़ा। घबराई हुई भीड़ के लोग यह उस पर गिरने लगे। किसी को बैठने नहीं देंगे। कौन कह रहा है उठने को ? और उठने क्यों लगी ? पिछली बार तो सब यहीं बैठे थे।

पिछली बार और इस बार में बड़ा अंतर है। इस घाट, उस घाट में एक भी प्राणी नहीं रह सकता। साधुओं के आने का समय हो गया। घाट खाली कर देना है गा। पुलिस सार्जेंट दौड़ धूप करने लगा।

मगर जाए यहा ?

भीड ने ठेलना शुरू किया।

उसी के दबाव से चलते चलते देखा, पुल पार होकर गगा के उस पार चले आए हैं। आ गयी तो आ ही गयी, अब वापस जाने का कोई उपाय नही। उधर जाने का रास्ता ही बद।

बेबस-से हम लोग बार-बार ताकते रहे। ऐसा जानती होती, तो हरकी पैडी के बजाय और कही करीब मे जगह बना लेती।

गगा के इस पार विराट मेला—बाजार दूकान, सरकस खैराती दवाखाना, सेवा विभाग प्रदर्शनी पुलिस स्टेशन गाधी की जवानी लाउडस्पीकर मे कितना क्या ! कनखल से गगा पार करके साधुओ का जुलूस भी यही होकर ब्रह्मकुड जाएगा।

बाजा और भरिया की आवाज से लाखो लोगो का कोलाहल दब गया। साधु लोग आ पहुचे। दो मील लबा जुलूस। ठसाठस भीड—रण यात्रा हो मानो। हाथी, घोडा, ऊट, मोटर, चतुर्दोल सिंहासन, पताका माला, चवर छत्र—विराट व्यापार ! एक कल्पना रहित दृश्य ! इतने इतने सन्यासियो का समावेश—हरिद्वार से पहले ये इतने लोग थे कहा ?

नागा—नागा ही कितने—अनगिनती। काले-काले बदन पर गेंदे की पीली-पीली माला। पीठ पर खुली जटा, पिलपिलाते चल रहे थे सब। देखने मे कितना अच्छा लग रहा था। गेरुआधारी सन्यासी, सन्यासिनी, महत, मडलेश्वर देवता—जुलूस की कैसी बहार ! जा रहा है तो जा ही रहा है अत नही है। सूखी रेती पर खडे हम असख्य नर-नारी अधीर आग्रह से देख रहे हैं।

हठात् ख्याल हो आया जहा हम खडे हैं वह नीलधारा का सूखा नाला है। जजीर मे लकडी के तख्ते बाधकर गगा का मुह बद कर दिया गया है। देख देखकर सोचने लगी, कही एक तख्ता खुल जाय, तो क्या दशा होगी। मैं क्या करूगी ? वह जो सामने लकडी का ढेर लगा है, उसी पर चढ जाऊगी। लकडी का ता पहले ही बहा ले जायेगा। तो ? उन पत्थरो के ऊपर। उह, वह भी तो डूब जाएगा। तो फिर सबसे पहले वह वहा भाग जायेंगी, जहा बालू खत्म हो गया है और हरी घासो की रेखा दिखाई पडती है। आप ही आप खिलखिला कर हस उठी। हाय पलक मारते तो सबको बहा ले जाएगी, मौका ही कहा देगी ?

बडी-दी ने कहा, 'वह देखो, खिसकी तो मोटर बालू में अटक गयी। धौन उमस से उतर पडा—महानंद जी हैं न ? पैदल ही चल पडे। अहा, बूढे आदमी, इतनी दूर चल सकेंगे—'

यह पुल वह पुल—गंगा के सभी पुलों पर धक्कम धुक्की करते-करते तीसरे पहर तक लौटकर इस पार आयी।

साधुओं का स्नान तब तक भी चल ही रहा था। एक दल जाता, दूसरा जाता। पुलिस हलुआ-हैरान। नहाने के बाद गंगा पर बंधे पौनरे से लोग चले जाते—बीच के लंबे रास्ते को छोडकर सुबह से ही साधु-दर्शन के लिये ठसाठस भरे बैठे हैं लोग।

ठेल ठूलकर एक जगह जगह बनाकर खडी हुई। कई गुजराती प्रौढ महिलायें—शायद सवेरे से ही बैठी हैं। धूप और गर्मी से आंख मुंह बैठ गया है। काला हो गया है। बडी-बडी आंखें, ऊंचे दांत वाली महिला। सामने झुकी ऊंघ रही थी। साधुओं का दल आया तो घबरा कर बगल की संगिनी ने उन्हें सजग कर दिया। उन्होंने मुट्ठी में बंद मुरझाये फूलों को रास्ते पर फेंक दिया। साधु लोग चले गये तो उनके पैरों से रौंदे हुए फूलों को उठाकर आंचल में बांध लिया और फिर आंचल से एक मुट्ठी फूल निकालकर दूसरे दल के इंतजार में बैठी रही।

साधुओं के स्नान के बाद पवित्र गंगा में नहाने की इच्छा थी बडी दी को। परन्तु उम्मीद नहीं थी। आशा रही होती तो शायद पूरी भी नहीं होती, शौक था, इसीलिये पूरा भी हुआ। धक्का-मुक्की में कैसे जो ब्रह्मकुंड की सीढी के पास जा पहुंची, इस पर खुद को ही अचरज लगता है। बडी-दी से कहा, 'जैसी हालत में हो वैसे ही उतर पडो। कपडे बदलने का झमेला न करो।' कहते-कहते मैं भी पानी में कूद पडी।

तमाम दिन की धूल धूप थकावट थाम सब धुल गयी। ठंडा पानी कितना मधुर! मर डुबा डुबा कर नहायी। एक अधखिली कली। कुंद की बहते-बहते आंचल से आ लगी। पानी से निकल आयी। देह मन स्निग्ध हो गया।

सामने ऊंचे-पहाड की चोटी पर मनसादेवी के मंदिर के शिखर के पीछे के मेघ में सूर्यास्त का रंग चढा।

गंगा के किनारे किनारे धीरे धीरे लौट पडी। भोलागिरि आश्रम के आगे

बच्चे रास्ते में एक सूखा नाला आकर मिला है। होशियारी से डग बढ़ा रही थी—'गया, गया—किसका कपड़ा गया।' कहकर बड़ी-दी लौटकर पानी की ओर गयीं।

बहाव में मोटा लाल बूटीदार एक घाघरा बह चला था।

तीन चार मर्द नंगे बदन घुटने भर पानी में खड़े थे। बड़ी दी उंगली से घाघरा दिखाती हुई ठिठक गयी। मरी हुई का घाघरा उन लोगों ने पहले ही बहा दिया था—अब मौन निगाहों बड़ी-दी की ओर ताककर उन्होंने धर-पकड़ कर एक बोरा चिता भस्म भी गंगा में डाल दिया?

तंबू के अंदर बैठी काठ के एक पीढ़े पर अल्पना आंक रही थी—एलामाटी, गेरूमाटी, सिंदूर घुले कटोरे अपने सामने सजाये। उस दिन रामकृष्ण देव का जन्मोत्सव हुआ। तरह-तरह के फूलों की मालाओं से आसन को सजाया गया। फिर भी मेरे मन में हो रहा था, सामने यदि कुछ अल्पना आंकी गयी होती तो सर्वांग सुंदर होता। देखती रही और सोचती रही। मैं और बड़ी-दी मिलकर अल्पना आंक तो दे सकती हैं—लेकिन यह नारी वर्जित स्थान—पुरुषों के कठोर हाथ गौरव और निपुणता के साथ स्त्रियों के हाथ की आवश्यकता को क्षुण्ण करते हैं। मन ही मन हार मानती और एक जलन का अनुभव करती। उस दिन भोग के लिये आलू की भुजिया बनी—पतले धागे से तुलना की जा सकती है उसकी। एक नहीं, दो नहीं, लगभग सौ आदमी के पत्तलों पर डाली गयी यह भुजिया। सख्त हाथ में यह बारीकी कहां से आती है? देवता के गले दोनों बेला फूलों की माला डाली जाती है। माला में फूलों के रंगों का बेहतरीन मिलान। किसी काम के लिये कभी बुलाहट नहीं आती। मन में मान होता। बहुत आगा-पीछा करके मैंने अल्पना की बात उठाई। ताज्जुब है, कोई एतराज नहीं हुआ। बड़े उत्साह से बड़ी-दी भीगे अरवा चावल पीस लायीं। बोली, 'अब मन से लाल फर्श पर सफेद रंग की अल्पना आंको।' मैंने आंक भी दी थी। छह सात दिनों तक थी भी, किसी ने पोंछा नहीं। अब हमारे आने के समय शशी महाराज को ख्याल आया कि इनसे स्थायी कुछ कराके रख लें। उन्होंने बढ़ई मिस्त्री बुलवा

पर पाईन और कटहल का एक बहुत बड़ा पीढ़ा बनवाया और कुछ ही देर पहले मुझे दे गए।

सिर्फ दो दिन का समय रह गया था। पूरा करना ही पड़ेगा। सो, सर झुकाए काम में जुट गयी थी। आज सवेरे से ही बदली किए हुई थी। अच्छा ही है, मुझको छोड़कर कोई बाहर नहीं जाएगे। नहीं तो मन में खटकता रहता।

कल ऋषिकुमार के पास गयी थी—गंगा के उस पार। पढ़े लिखे, पंडित साधु हैं। गुजराती। पटना विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट—घर-द्वार छोड़कर हिमालय में तपस्या करने के लिए निकल पड़े। यह जाने कितने दिनों की बात हो गयी। भस्म रमाए, माथे पर जटा-जूट लिए अभी बालू के चौर पर धूनी जलाये बैठे हैं। देखकर कौन कह सकता है, इनका अंतर कहाँ पर है? यहीं पर एक दिन परिचय हुआ था। प्रभा-दी के जोरों की साँस फूल रही थी—यह खबर पाकर जाने कौन तो ऋषिकुमार को ले आए थे। ये रोगियों को दवा भी दिया करते हैं—जंगल से जड़ी-बूटी संग्रह करते हैं। कहते हैं 'यह भी जीवों की सेवा ही है एक प्रकार की।'

ऋषिकुमार की बातें बड़ी सहज, समझने लायक होती हैं। बोले, 'ईश्वर क्या है? शंकराचार्य, निताई, रामकृष्ण, विवेकानंद रवीन्द्रनाथ सबके मन में यही प्रश्न जमा था, मैं कौन हूँ? माया क्या है? ब्रह्म क्या है? उपनिषद ने कहा है, सर्व खल्विद ब्रह्म। सब जगह एक ही ब्रह्म व्यापक हैं। लेकिन उनके बारे में कहना जितना आसान है, अनुभव करना उतना आसान नहीं है। क्योंकि ईश्वर को यदि जानना हो तो पहले अपने आपको जानना होगा। दीन-दुनिया छोड़कर शंकराचार्य गुरु की तलाश में निकले। गुरु कमरे के भीतर थे। शंकराचार्य ने दरवाजे पर धक्का दिया। गुरु ने जोर से पूछा, कौन? शंकराचार्य ने जवाब दिया, मैं कौन हूँ मैं यदि यह जानता ही होता तो फिर आपके पास क्यों आता? गुरु ने यह जो सुना, तो हँसते हुए बाहर निकले। गले लगाकर शंकराचार्य को अंदर लिवा गए।

'*आत्मज्ञान होने से ही भगवद्ज्ञान होता है। भगवान आत्मा के आत्मा हैं*—परमात्मा। जिन्हें भगवद्ज्ञान की प्राप्ति होती है, उनका आचरण अनोखा होता है।

'एक दिन दिन भर भीख मांगने के बाद नामदेव ने शाम को कुछ रोटियां बनाइं। ठाकुर को भोग लगाकर प्रसाद पाएंगे। रोटियां सिक गइं तो वह उठकर थोड़ा-सा घी लाने के लिए कमरे के अंदर गए। इतने में ही एक कुत्ता आया और उन रोटियों का साफ कर गया। नामदेव घी लेकर लौटे और यह तमाशा जो देखा, सो हो हो करके हंस उठे। बोले ऐ भगवान, आज तुम्हें इतनी ज्यादा भूख लगी थी कि रोटियों में घी लगाने तक का भी सब्र नहीं रहा।'

ऋषिकुमार ने कहा 'कलिकाल में नाम ही एक मात्र सहारा है।'

'यह कलिकाल न धरम विवेकू
राम नाम अवलंबन एकू॥'

'सब कोई नाम का जप करो। जानते नहीं हो, नाम के प्रति 'नामी' की बड़ी प्रीति होती है। जहां नाम होता है, 'नामी' वहां जरूर ही जाते हैं। बिना गए उन्हें चैन नहीं।

'या समझिए न, यहां इतने सारे लोग हैं। लेकिन मैं जब दत्त बाबू कहूंगा तभी तो आप जवाब देंगे। ठीक इसी तरह भगवान को नाम लेकर पुकारने से वह इसी तरह से जवाब देते हैं। अपनी 'साधना' पुस्तक में रवीन्द्रनाथ भी ठीक यही बात कह गए हैं।' कहते-कहते ऋषिकुमार के स्वर में दृढ़ता आ गयी। बोले, 'इस दुनिया में जन्म लेने के बाद सभी एक न एक बार भगवान के दर्शन पाते ही हैं। लेकिन, संभवतः वह पहचान नहीं पाता। इसी पहचान के लिए कलयुग में सबसे सहज उपाय है नामजप और साधुसंग। साधु-दर्शन में भी पुण्य है। और, पुण्य का फल भी आखिर मिलता है।'

याद आ गया उदासी बाबा की बात सुनी थी। हरिद्वार में ही रहते थे वह। नानकपंथी थे। बूढ़े साधु। बड़े-बड़े महात्मा भी उन्हें आदर से देखते थे। उन्हें बहुत बड़ा साधु मानते थे।

ये उदासी बाबा बहुरूपिए की नाइं एक एक दिन एक-एक अजीब रूप बनाकर गंगा के किनारे बंधे हुए रास्ते पर घूमा करते थे। कभी पहनते बेशकीमती रंगीन रेशमी झब्बा, जूता मोजा, पैरों में घुंघरु, माथे पर मोर-पंख की डेढ़ हाथ ऊंची पगड़ी और कभी एड़ी चोटी वाली पोशाक पहने रहते थे। बूढ़े साधु का यह अजीब बाना देखकर बहुतेरे लोग उनके पीछे दौड़ते थे। मजा भी आता था उन्हें। भला

कर पाईन और कटहल का एक बहुत बड़ा पीढ़ा बनवाया और कुछ ही देर पहले मुझे दे गए।

सिर्फ दो दिन का समय रह गया था। पूरा करना ही पड़ेगा। सो, सर मुंडाए काम में जुट गयी थी। आज सवेरे से ही बदली किए हुई थी। अच्छा ही है, मुझको छोड़कर कोई बाहर नहीं जाएगी। नहीं तो मन में खटकता रहता।

कल ऋषिकुमार के पास गयी थी—गंगा के उस पार। पढ़े लिखे, पंडित साधु हैं। गुजराती। पटना विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट—घर-द्वार छोड़कर हिमालय में तपस्या करने के लिए निकल पड़े। यह जाने कितने दिनों की बात हो गयी। भस्म रमाए, माथे पर जटा-जूट लिए अभी बालू के चौर पर धूनी जलाये बैठे हैं। देखकर कौन कह सकता है, इनका अंतर कहां पर है! यहीं पर एक दिन परिचय हुआ था। प्रभा-दी के जोरों की सांस फूल रही थी—यह खबर पाकर जाने कौन तो ऋषिकुमार को ले आए थे। ये रोगियों को दवा भी दिया करते हैं—जंगल से जड़ी-बूटी संग्रह करते हैं। कहते हैं, 'यह भी जीवों की सेवा ही है एक प्रकार की।'

ऋषिकुमार की बातें बड़ी सहज, समझने लायक होती हैं। बोले, 'ईश्वर क्या है? शंकराचार्य, निताई, रामकृष्ण, विवेकानंद रवींद्रनाथ, सबके मन में यही प्रश्न जमा था, मैं कौन हूं? माया क्या है? ब्रह्म क्या है? उपनिषद ने कहा है, सर्व खल्विदं ब्रह्म। सब जगह एक ही ब्रह्म व्यापक है। लेकिन उनके बारे में कहना जितना आसान है, अनुभव करना उतना आसान नहीं है। क्योंकि ईश्वर को यदि जानना हो तो पहले अपने आपको जानना होगा। दीन दुनिया छोड़कर शंकराचार्य गुरु की तलाश में निकले। गुरु कमरे के भीतर थे। शंकराचार्य ने दरवाजे पर धक्का दिया। गुरु ने जोर से पूछा, कौन? शंकराचार्य ने जवाब दिया, मैं कौन हूं, मैं यदि यह जानता ही होता तो फिर आपके पास क्यों आता? गुरु ने यह जो सुना, तो हंसते हुए बाहर निकले। गले लगाकर शंकराचार्य को अंदर लिवा गए।

'आत्मज्ञान होने से ही भगवद्ज्ञान होता है। भगवान आत्मा के आत्मा हैं—परमात्मा। जिन्हें भगवद्ज्ञान की प्राप्ति होती है, उनका आचरण अनोखा होता है।

'एक दिन दिन भर भीख मागने के बाद नामदेव ने शाम को कुछ रोटिया बनाइ। ठाकुर को भोग लगाकर प्रसाद पाएग। रोटिया सिक गइ तो वह उठकर थोडा-सा घी लाने के लिए घमर के अदर गए। इतने मे ही एक कुत्ता आया और उन रोटियो को साफ कर गया। नामदव घी लेकर लौटे और यह तमाशा जो देखा, सो हो-हो करके हस उठे। बोले, ऐ भगवान, आज तुम्हे इतनी ज्यादा भूख लगी थी कि रोटिया मे घी लगाने तक का भी सब्र नही रहा।'

ऋषिकुमार ने कहा, 'कलिकाल म नाम ही एक मात्र सहारा है।'

'यह कलिकाल न धरम विवेकू
राम नाम अवलबन एकू॥'

सब कोई नाम का जप करो। जानत नही हो, नाम के प्रति 'नामी' की यही प्रीति होती है। जहा नाम होता है, 'नामी' वहा जरूर ही जाते हैं। बिना गए उन्ह चैन नहीं।

'यो समझिए न, यहा इतने सारे लोग हैं। लेकिन मैं जब 'दत्त बाबू' कहूगा तभी तो आप जवाब देंगे। ठीक इसी तरह भगवान को नाम लेकर पुकारने से वह इसी तरह से जवाब देते हैं। अपनी 'साधना' पुस्तक मे रवीन्द्रनाथ भी ठीक यही बात कह गए हैं।' कहते-कहते ऋषिकुमार के स्वर म दृढता आ गयी। बोले, 'इस दुनिया मे जन्म लेने के बाद सभी एक न एक बार भगवान के दशन पाते ही हैं। लेकिन, सभवत वह पहचान नही पाता। इसी पहचान के लिए कलयुग मे सबसे सहज उपाय है नामजप और साधुसग। साधु-दशन मे भी पुण्य है। और पुण्य का फल भी आखिर मिलता है।

याद आ गया, उदासी बाबा की बात सुनी थी। हरिद्वार म ही रहते थे वह। नानकपथी थे। बूढ़े साधु। बडे-बडे महात्मा भी उन्ह आदर से देखते थे। उन्ह बहुत बडा साधु मानते थे।

ये उदासी बाबा बहुरूपिए की नाइ रूप एक दिन एक एक अजीब रूप बनाकर गगा के किनारे बधे हुए रास्ते पर घूमा करते थे। कभी पहनते बेशकीमती रगीन रेशमी झब्बा, जूता मोजा, पैरो म घुघरू, माथे पर मोर-पख की डेढ हाथ ऊची पगडी और कभी एडी चोटी काली पोशाक पहने रहते थे। बूढे साधु का यह अजीब बाना देखकर बहुतेरे लोग उनके पीछे दौडते थे। मजा भी आता था उन्हें। भला

कर पाईन और कटहल का एक बहुत बड़ा पौढा बनवाया और कुछ ही देर पहले मुझे दे गए।

सिर्फ दो दिन का समय रह गया था। पूरा करना ही पड़ेगा। सो, सर झुकाए काम म जुट गयी थी। आज सवेरे से ही बदली किए हुई थी। अच्छा ही है, मुझको छोड़कर कोई बाहर नही आएगे। नही तो मन में खटकता रहता।

कल ऋषिकुमार के पास गयी थी—गगा के उस पार। पढे लिखे, पडित साधु हैं। गुजराती। पटना विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट—घर-द्वार छोडकर हिमालय मे तपस्या करने के लिए निकल पडे। यह जाने कितने दिनो की बात हो गयी। भस्म रमाए, माथे पर जटा-जूट लिए अभी बालू के चौर पर धूनी जलाये बैठे हैं। देखकर कौन कह सकता है, इनका अतर कहा पर है! यहीं पर एक दिन परिचय हुआ था। प्रभा-दी के जोरो की सास फूल रही थी—यह खबर पाकर जान कौन तो ऋषिकुमार को ले आए थे। ये रोगियो को दवा भी दिया करते हैं—जगल से जडी-बूटी सग्रह करते हैं। कहते हैं 'यह भी जीवो की सेवा ही है एक प्रकार की।'

ऋषिकुमार की बातें बडी सहज, समझने लायक होती हैं। बोले 'ईश्वर क्या है? शकराचार्य, निताई, रामकृष्ण, विवेकानद, रवीद्रनाथ, सबके मन म यही प्रश्न जमा था, मैं कौन हू? माया क्या है? ब्रह्म क्या है? उपनिषद ने कहा है, सर्व खल्विद ब्रह्म। सब जगह एक ही ब्रह्म व्यापक हैं। लेकिन उनके बारे मे कहना जितना आसान है, अनुभव करना उतना आसान नही है। क्योंकि ईश्वर को यदि जानना हो तो पहले अपने आपको जानना होगा। दीन-दुनिया छोडकर शकराचार्य गुरु की तलाश में निकले। गुरु कमरे के भीतर थे। शकराचार्य ने दरवाजे पर धक्का दिया। गुरु ने जोर से पूछा, कौन? शकराचार्य ने जवाब दिया, मैं कौन हू, मैं यदि यह जानता ही होता तो फिर आपके पास क्या आता? गुरु ने यह जो सुना, तो हसते हुए बाहर निकले। गले लगाकर शकराचार्य को अदर लिवा गए।

'आत्मज्ञान होने से ही भगवद्ज्ञान होता है। भगवान आत्मा के आत्मा हैं—परमात्मा। जिन्हें भगवद्ज्ञान की प्राप्ति होती है, उनका आचरण अनोखा होता है।

'एक दिन दिन भर भीख मांगने के बाद नामदेव ने शाम को कुछ रोटियां बनाईं। ठाकुर को भोग लगाकर प्रसाद पाएंगे। रोटियां सिक गईं तो वह उठकर थोड़ा सा घी लाने के लिए कमरे के अंदर गए। इतने में ही एक कुत्ता आया और उन रोटियों का साफ कर गया। नामदेव घी लेकर लौटे और यह तमाशा जो देखा, सो हो-हो करके हंस उठे। बोले ऐ भगवान, आज तुम्हें इतनी ज्यादा भूख लगी थी कि रोटियों में घी लगाने तक का भी सब्र नहीं रहा।'

ऋषिकुमार ने कहा 'कलिकाल में नाम ही एक मात्र सहारा है।'

'यह कलिकाल न धरम विवेकू
राम नाम अवलंबन एकू।।'

सब कोई नाम का जप करो। जानते नहीं हो नाम के प्रति 'नामी' की बड़ी प्रीति होती है। जहां नाम होता है, 'नामी' वहां जरूर ही जाते हैं। बिना गए उन्हें चैन नहीं।

'यों समझिए न, यहां इतने सारे लोग हैं। लेकिन मैं जब दत्त बाबू कहूंगा तभी तो आप जवाब देंगे। ठीक इसी तरह भगवान को नाम लेकर पुकारने से वह इसी तरह से जवाब देते हैं। अपनी 'साधना' पुस्तक में रवीन्द्रनाथ भी ठीक यही बात कह गए हैं।' कहते-कहते ऋषिकुमार के स्वर में दृढ़ता आ गयी। बोले, 'इस दुनिया में जन्म लेने के बाद सभी एक न एक बार भगवान के दर्शन पाते ही हैं। लेकिन सम्भवतः वह पहचान नहीं पाता। इसी पहचान के लिए कलयुग में सबसे सहज उपाय है नामजप और साधुसंग। साधु-दर्शन में भी पुण्य है। और पुण्य का फल भी आखिर मिलता है।'

याद आ गया, उदासी बाबा की बात सुनी थी। हरिद्वार में ही रहते थे वह। नानकपंथी थे। बूढ़े साधु। बड़े-बड़े महात्मा भी उन्हें आदर से देखते थे। उन्हें बहुत बड़ा साधु मानते थे।

ये उदासी बाबा बहुरूपिए की नाईं एक एक दिन एक-एक अजीब रूप बनाकर गंगा के किनारे बंधे हुए रास्ते पर घूमा करते थे। कभी पहनते बेशकीमती रंगीन रेशमी झब्बा, जूता मोजा पैरों में घुंघरू, माथे पर मोर-पंख की ढेंढ़ हाथ ऊंची पगड़ी और कभी एड़ी चोटी वाली पोशाक पहने रहते थे। बूढ़े साधु का यह अजीब बाना देखकर बहुतेरे लोग उनके पीछे दौड़ते थे। मजा भी आता था उन्हें। भला

लाज से परे हुए बिना कोई ऐसे बाने पर राजपथ पर घूमते हुए चल सकता है ? एक ने पूछा, 'बाबा आप ऐसी अजीबोगरीब पोशाक क्यों पहनते हैं ?' उन्होंने जवाब दिया, 'इतनी भारी भीड़ में लोगों को वास्तविक साधु का दर्शन नसीब नहीं हो पाता। साधु की पहचान पाना बड़ा कठिन है। मैं इसीलिए इस तरह से घूमा करता हूं कि बहुत आसानी से सबकी नजर पड़े। और इस तरह लोग साधुदर्शन का पुण्य लाभ करें।'

उनकी बातें सुनते-सुनते ही मैं ऋषिकुमार का स्केच बना रही थी। उनसे उस पर हस्ताक्षर कर देने को कहा। मेरे पास कलम नहीं थी। ऋषिकुमार ने बघछाले के नीचे से एक पोटली निकाल कर उसमें से कलम-दवात निकाली। फाउंटेनपन थी कभी अब उसे स्याही में बोर कर लिखना पड़ता है। लिखते समय निब की नोक पर बालू किरकिरा उठा।

सामने एक चमचमाता हुआ गंड़ासा रखा हुआ था। बैरागी साधु को इसकी क्या जरूरत पड़ती है ? देखने में अशोभन-सा लगता है। हाथ से उसे उलट-पुलट करते हुए मैं मन ही मन सोचती रही। ऋषिकुमार ताड़ गए। हंसे। बोले, 'जंगल में रहता हूं, जब शास्त्र काम नहीं आता तो शुभकार्य में शस्त्र ही काम देता है।

सफेद रंग जितना ही लगा रही थी, मन के लायक नहीं हो रहा था। पाईन की लकड़ी के तेल में मिलाकर खड़िया माटी का रंग। श्वेत कमल का अगर पंखड़िया ही नहीं निखरीं, तो बहार कैसे आएगी ? तंबू के सामने से माणिक जा रहा था। उसे बुलाकर कहा, 'अस्पताल में दवा में मिलाने के लिए जिंक आक्साइड रहता है। थोड़ा-सा वही ला दो तो इसमें मिलाकर देखूं रंग पकड़ता है या नहीं।'

माणिक कागज की पुड़िया में ले आया। बोला 'उन लोगों ने कहा, तेल में मिला यह पानी में नहीं घुलेगा।'

हथेली पर थोड़ा-सा लेकर लट्ठा मिला कर घिस कर देखा—हां, मिल तो जाता है। मजे से काम चलेगा। खुश होकर पीठ़े पर सफेद रंग लगाने लगी। ऋषिकुमार की बात कान में गूंजने लगी— तेरी भावना बड़ी विचित्र है। भगवान अंतर में हैं, बदली की छाया सूरज को ढंपन नहीं देती।'

हम लोगों के तंबू के आमने-सामने वसुमती मां का छोटा-सा तंबू। उधर नजर

दौडाते ही दिखाई पड जाती है। सब लोग उन्हे इसी नाम से पुकारते हैं। पहनावे मे एक पुरानी मामूली-सी धोती, बदन पर मामूली सूती चादर, आग की एक छोटी-सी अगीठी गोद के पास लिए एक ही ढग से एक-सा हर समय बैठी रहती हैं। भोर मे तीन बजे अगर देखती हू तो उसी तरह से बठी हैं, कभी अगर रात के बारह बजे ताक लेती हू तो भी उसी एक ढग मे बैठी। कभी सोती ही नहीं हैं क्या? माटी पर बिछी चटाई के एक किनारे एक फटा हुआ कबल बिछा है—बिछावन कहने को बस इतना ही। और कोई बला नही। रात दिन के चौबीस घटा मे बाईस घटे एक-सी बैठी जप ध्यान करती हैं। घटा दो एक के लिए उसी बिछावन की शरण लेती हैं लेकिन कब कोई नही जानता।

बडी-दी ने कहा, 'जरा एक बार देखो तो सही मैंने ऐसा प्रणाम तो कभी नही देखा। वसुमती मा किस तरह से लोट कर प्रणाम करती हैं—उस दिन-रात को बगल से गुजर रही थी तो मैंने तबू की फाक से देखा।

शशी महाराज ने बडी दी से कहा, 'जरा वसुमती मा की अवस्था देखिए। ये 'वसुमती' अखबार के उपेंद्र मुखोपाध्याय की स्त्री हैं। करोडो-करोड की दौलत है। लडका सतीश मुखोपाध्याय, पोता रामचद्र मुखोपाध्याय। सोने का ससार है इनका। एक बारगी, राजरानी राजमाता। लेकिन तकदीर कैसी! स्वामी गुजर गए, इकलौते बेटे के घर का वह एकमात्र पोता चल बसा, लडका मर गया, पतोहू मर गई। पति के मर जाने के बाद से भोजन छोड दिया है। दिन भर के बाद रात के बारह बजे दो केले और एक कटोरा दूध लेती हैं सिर्फ। इन्हे किस बात की कमी? दौलत की भरमार है। फिर भी यह राह की भिखारन हैं। यही तो दुनिया है! आखो के सामने इतना बडा एक जीता-जागता उदाहरण। इनसे सबक लीजिए आप लोग।'

जसोर की दीदी वसुमती मा को भली तरह से जानती हैं। बोलीं 'पोत-बहू ने दादी जी को नया कबल खरीद कर दिया। उसे वह घर ही दरबान को दे आई। अब देखो न, कैसा फटा चिटा कबल लिए आग से सटी बठी हैं, जसे अच्छा घर मे हो।

हम लोग इन्हे 'जसोर की दीदी' ही कहा करते हैं। काला मुखडा—सदा हसी-खुशी से उजलता हुआ। कपाल पर टुक टुक लाल सिंदूर का टीका। अधेड हैं लबा दोहरा बदन। हम लोगो को वह बडी भली लगती हैं। पति के साथ तीरथ

करने के लिए आई हैं। वास्तव में ठीक ठाक पति के साथ नहीं आईं—कहती हैं, वह बुड्ढा क्या मुझे लेकर कहीं बाहर जाएगा ? वह खुद ही यह तीरथ, वह तीरथ करता फिरेगा। मुझसे कहेगा, तुम पीछे करना तुम्हें लड़के-वाले कराएंगे। मैंने कहा, अजी आप तो तुम उड़ते फिरोगे अकेले और लड़कों के कंधे लाद दोगे मुझे यह कैसे होगा ? इस बार स्वामी जी लौगा स मैंने ही बात करके आन का स किया। उनसे कहा, चलो। तुम तो मुझे लेकर जाने के नहीं, मैं ही तुम्हें लिए चलती हूं चलो तीरथ करा लाऊं।'

जसोर की दीदी अकसर वसुमती मा के पास जाकर बैठती हैं—तरह-तरह की बातें करती हैं। कहती हैं 'इतनी बार उनसे कहती हू, एक बार पांव छूने दो मा, प्रणाम कर लू। मगर ऐसी हैं वह जिद्दी कि झट पांवों को समेट कर ढक लेती हैं। कहती हैं, नहाते समय छूना। आप ही कहती हैं वह देखो, उनचास वायु की हो कोई न कोई दवा है। दवा नहीं है केवल दो की—एक लघी वायु की और दूसरी छूतवायु की।'

यह मैंने भी सुना है। उस दिन वसुमती मा कहती थीं—'अजी, इस छूत वायु के चलते हमने कुछ कम भोगा है। एक दिन मालिक भेरे खा रहे थे। छींक आई और मुह से एक भात छिटक कर जाने कहा जा गिरा। मैंने तीन दिन तक सारे कमरे मे उथल-पुथल मचा दी। लाख खोजा, पर वह भात नहीं मिला। और एक बार का जिक्र है, धोबी को कपड़े दे रही थी। अलगनी से उतारा तो देखा पति के कोट मे हल्दी का दाग है। कुछ दिन पहले यही कोट पहन कर न्योता खाने गए थे। शायद हो कि उस पर तरकारी गिर पड़ी थी। हाय राम, उसी कोट को मैंने अलगनी पर रक्खा था ! यह तो सब कुछ जूठा हो गया। अलगनी से एक एक कपड़े को उतारा, धुलवाया फिर भी मेरे मन का खटका नहीं जा रहा था। मेरी इस बीमारी के बारे मे मेरे उनसे कोई कुछ कहता तो कहते, छोड़ो भी। उसे कुछ मत कहो। उसी के चलते हमारे घर लक्ष्मी बंधी पड़ी हैं और उसकी यह छोटी-सी वहम हम बरदाश्त नहीं कर सकेंगे ?'

मैंने पूछा, और यह लघी वायु क्या बला है ?'

वसुमती मा ने कहा, वह भी एक बेहद खौफनाक वहम है। जिसे उसने पकड़ लिया, फिर जाने का नहीं। यह है बहु घर शक करना।—शायद उसने उसकी ओर ताका—वही तो, जिसको ओर देखकर मुस्कुराई—यही, और क्या !

जभी तो कहती हू, इन दो रोगो की दवा नही—लाइलाज हैं।'

जसोर की दीदी आइ। सटकर बैठ गइ। बोली, सवेरे ही मवेरे कहने आ गई—परनिंदा तो नही होगी न ?

कहा 'परनिंदा क्यो पतिकीतन कहिए, सारे दोष कट जाएगे।'

खुलकर हसते हुए। जसोर की दीदी न कहा, ठीक ठीक जरा पतिकीतन ही करू। तीथस्थान म पुण्य होगा। अरे उस बूढ को कहू भी क्या ! सवेरे नहा तो आई दशघाट से। ठडा पानी। बूढा उतरना क्या चाह रहा था ? मैंने कहा, कसकर मेरा हाथ पकड लो। बेबस हो पडने पर मैं नही उठाऊगी। बडी-बडी मुश्किल स ता उसे नहलाया। यहा आकर झटपट गीला कपडा पसार कर वह सीधे मदिर की ओर चला। कहा अरे जरा सब्र करो मैं भी साथ चलती हू। उसने कहा नही। तुम फिर आना। साधुओ के सामने तुम्हें साथ लेकर चलने मे मुझे लाज लगती है। मैंने कहा आह हो मुझे साथ लेकर चलन मे तुम्हे लाज लगती है ? सोचत हो, साधु लोग कुछ जानत नही हैं ? मैं उन साधुओ से पुकार कर कह देती हू यह, उस बूढे का जो देख रह हैं, वह मेरा पति है। हम दोनो के बारह बाल-बच्चे हैं। लो अब साधुओ क सामन जाकर अपना साधुपना खूब दिखा लो।

घटा-बादलो से चारो ओर अधेरा। तबू के भीतर रोशनी कम हो आई। पीढे को ठेलते हुए दरवाज के पास ले गई। उसस भी खास कोई सुविधा नही हुई। बारिश की बूदो के छोटे आकर पडने लगे। एक तो सरदी तिसपर ओदी हवा। मारे सरदी के हाथ की उगलिया सिकुडती जा रही थी। मोटे कबल का गलीचा बनाकर, बदन पर मोटी चादर डालकर सिमट-सुमट कर बठी। बार-बार मन मे आता रहा गगा के उस पार खुली जगह म नगे बदन साधु लोग जान क्या कर रहे हैं।

सुना है वे सब बदन म जो राख मलते है उससे थोडी बहुत कम लगती है सरदी। मगर बारिश स वह राख धुलती भी तो जा रही है।

बडो-दी न कहा देखो, उस दिन साधु ने हम लोगो के सामने ही तो गाजे का दम लगाया। देखकर मिजाज कसा बिगड गया। मगर बाद म मैंने सोच कर

देखा, गाजा न पिये तो करे क्या ? इस देह पर इतना कुछ जो सहन करेगा, उसके लिये आखिर कोई बडा उपकरण तो चाहिए न ?'

मैंने सुना है साधु लोग सिर्फ गाजा ही नही पीते, तरह-तरह की दवायें भी खाते-पीते हैं। यह भी सुना है कि वे सखिया खाते हैं। जले सखिया की थोडी-सी राख खा लेने पर लगता है कि गगा के पानी मे ही डूबा रहू। इतना गरम हो जाता है शरीर।

बडी दी बोली, 'एक बात और भी सोचती हू। सोच देखो किसी मामूली-से कारण से हम लोग किस कदर घबरा जाते हैं। चिट्ठी मिलने म एक दिन की देर हो, तो रात को नीद नही आती। हम लोग जिस तरह से घर परिवार के पाश मन को जकडे हुए हैं ये लोग भी तो कभी वैसे ही थे। इन्हे वे सारी बातें भूल करके रहना है। माया ताडना क्या आसान बात है ? मन को बस मे करना बडा कठिन काम है।

शशी महाराज ने कहा, 'मन की बात को तो कहिए ही नही। यह देख लीजिये कि मैं छत्तीस साल से इस राह का राही हू, फिर भी क्या मन पर ठीक से लगाम लगा सका हू ? आप से कहू क्या, वही कब आठ-नौ साल की उम्र म, छुटपन मे किसके बगीचे से आम चुराये थे, उस दिन रात को भी मैंने वह घटना सपने मे देखी।

मन बडी ही भयकर वस्तु है। साधु हो जाने से ही जो मन मुट्ठी मे रहता है ऐसी बात नही। बहुत बार मन को वस म नही ला पाता। सच बताऊ आपसे, जप-तप मे आलस लगता है। वसे मैं करता क्या हू कि पूरी की पूरी गीता कठस्थ कर रखी है, उसी का पाठ शुरू कर देता हू। पाठ करते-करते किसी समय स्थिर होकर मन पकड मे आ जाता है—और तब जप पर बैठता है। इसी से कहता हू, गीता को मुखस्थ कर लीजिए। देखिएगा कितना काम देती है वह। जब भी मन विचलित हो, गीता के रटे श्लोक पढना शुरू कर दीजिए। हम लोगो की यह पूजा-अरचा भी वही है—मन को बस मे करना। फूल दिया, बेल के पत्ते चढाए, चदन घिसा, अपने को शुद्ध किया। यह सब और कुछ नही मन को स्थिर करके एक जगह पर ले आने का उपाय भर है।'

सोचा करती थी, लोग साधु सन्यासी हो जाते हैं, सब छोड-छाडकर चल देते हैं वे लोग हर पल हम लोगो की तरह परेशान नही होते।

उस दिन शाम को सतीगुड म जिन वन की अधेरी छाया मे बैठे-बठे मन म यही आ रहा था। इसीलिए गोपश्वर महाराज से कहा था, 'आप लोग एसी जगह रहत हैं कि मन आप से आप स्थिर होता है कोई गडवड नही करता।

यह सुनकर एक लवा नि श्वास फेंककर उन्होने कहा, बिटिया, जितना सहज समझती हो दरअसल उतना सहज नही है। इतन साल बिता दिए, मन की धीगा मस्ती कहा जाती है ?'

मन म आज मेरे सुर गुनगुनाना फिर रहा है—गीत की कुछ पक्तिया—

अपना हाथ बढ़ाओ, लाओ
रक्खो मेरे हाथ,
पकड़ू उसको, भर लू उसको
रक्खू उसको साथ
एकाकी पथ चलना मेरा कर दो रमणीय।

जानें कब सुना था यह गीत।

एकाएक प्राण हाफ उठा। कूची फेंक कर उठ खडी हुई।

जरा गीत—गीत सुनना होगा। अभी ही, इसी समय बहुत जरूरी है।

आश्चय है यहा ये लोग जी खोलकर गीत क्यो नही गाते ?

नामगान क समय तो सुना है बहुत का गला बडा सुरीला है। साधक हैं ये। गीत भी तो बहुत बडी साधना है। तो फिर ये चलते फिरते गीतो के सुर से समय को व्यस्त क्या नही रखते ?

एक बूढे साधु सामने आ खडे हुए। आज ही सवरे आये हैं। इस सेवाश्रम के ही कोई हैं या नही, नही जानती। कस तो कुछ और ही किस्म के। इतन लबे कि मुह उठा कर उनका मुह देखना पडता है। गले म रुद्राक्ष की माला, कमर मे बासुरी। बाले, जानती हो बिटिया यह माला और यह बासुरी ही मेरा सहारा है। माला से जब जी ऊब जाता है, तो बासुरी मे फूक मारता हू। सुर साजते हुये वह तबू मे आय। असल म रगो के कटोरो ने उन्हे दूर स खीच कर लाया था।

बडी दी ने कहा, 'कोई कीत्तन सुनाइय न ?'

हसकर उन्होंने कमर से बासुरी को हाथ म लिया और एक फूक लगा कर ही रुक गए। एकाएक उनके चेहरे पर कैसे एक असह्य दबे पड़े दुख की छाया घिर आयी। बड़ी-दी की ओर देखते हुए पूछा, 'मैं यदि कीर्तन सुनाऊ सह सकोगी ?'

बड़ी दी चुप।

साधु धीरे धीरे बाहर निकले। आम के पेड के नीचे जाकर खड़े हो गए। चुपचाप मैं भी पीछे पीछे गई। उन्होंने बासुरी म सुर बजाकर उलट कर देखते हुये गाना शुरू किया—

'कृष्ण को हेरू कृष्ण कहा ! एक कृष्ण के प्रेम मे ही डूबी रहती हू। फिर भी लोग कहते हैं राधा कलकिनी है।

ज्ञान महाराज बहुत विचलित हो पेड़े है। मुल्क से चिट्ठी आई है। गुडो ने घर पर धावा करके भाई भतीजा चाचा फूफा—सत्रह आदमियों का जनेऊ तोड़कर उन्हें कलमा पढाया। सबस लूट लिया। जो इस योग्य थे वे बहू-बेटियो को लेकर गाव छोडकर भाग गये। बूढे मा बाप मौलवी पर म पड़े हैं। न तो कोई सवारी शिकारी है न ही उन्हें चलने की क्षमता है। इसलिए सन्यासी बेटे को चाचा भाई ने बड़े दुख के साथ लिखा है—जसे भी बने उन्हें उस विपदा से निकाल कर लाओ।

नाडी का नाता। अदर से खिचाव हो रहा था। सन्यास उसका मम क्या जाने ?

ज्ञान महाराज दादा के पास सलाह लेन के लिए आये। आश्रम के जो भी साधु इस काम के लिए आगे बढे वे सबके सब अभी कद म हैं। ऐसे म किया क्या जाए ?

बसुमती मा के तबू म महिलाओ की भीड। उधर से आते हुए सुना, बसुमती मा कह रही हैं अहा, लडके का रूप कसा ! टुक टुक चेहरा बाप जसी शक्ल—ठीक जसे राजकुमार हो। पहला पोता—बडे आदमी का बेटा, सभी परशान—नाम क्या रक्खा जाय ? मैंने कहा काशी के समान धाम नही और राम

बराबर नाम नहीं। पोते का नाम रक्खा—'रामचंद्र।'

कल रात से बारिश के थमने का नाम नहीं। तंबू के चारों तरफ का कपड़ा भीग कर पानी चू रहा है। आज भी बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं। एक प्रकार से अच्छा ही है। पोटे को नीचे रख कर आकने में जुट गयी। जैसे भी हो, आज इसे खत्म करना ही पड़ेगा। नहीं तो फिर हाथ में समय कहां? मैंने राममय महाराज को पकड़ा—'आज जितना जी चाहे किस्सा सुनाइये, हाथ से काम करती रहूं और कान से किस्सा सुनूं।'

खाट पर बैठ कर राममय महाराज ने श्रीमां की कहानी शुरू कर दी। एक-एक करके लोग आने लगे। तंबू भर गया। रंग के आकर्षण से लोग दरवाजे पर आकर खड़े होते और किस्से के खिंचाव से तंबू के अंदर आकर बैठते।

राममय महाराज हंसते हुए कहने लगे—'मां को मैंने देखा, मानो वह सबके मन की बात जान जाया करती थीं और जिसे जैसा चाहिए वैसा ही उपदेश देती थीं। एक बार एक लड़की की मां ने मां को लिखा—वकील की लड़की होगी शायद—जिरह से भरी पूरे आठ पन्ने की चिट्ठी। एक लड़के ने उनकी लड़की से ब्याह करने का वायदा किया था, अब वह ब्याह नहीं करना चाहता है। लेकिन मां यदि एक बार उसे कह दें तो वह ब्याह कर लेगा। मां ने कहा, उस लड़के ने तो मगर मुझे कुछ नहीं लिखा है, उसके मन की जाने बिना मैं उसे आदेश कैसे कर सकती हूं?

'किसी का अगर ब्याह करने की ख्वाहिश होगी, तो मां कहती, ठीक तो है। ब्याह करना कोई बुरी बात है? जरूर करो। देखो न, ठाकुर ने मुझसे ब्याह किया था। सब तो दो दो हैं—राम सीता दो, लक्ष्मी नारायण दो, शिव-पार्वती दो।

'और, किसी को ब्याह करने की इच्छा नहीं होती, तो भी बहुत खुश होती—भर नींद सो कर जियोगी। नहीं तो आज इस बच्चे की बीमारी, बच्ची का रोना-धोना—झमेले का कोई अंत नहीं।'

बड़ी-दी ने पूछा, मैंने सुना है, मां विदेशियों से भी बातें करती थीं। वह तो अंग्रेजी नहीं जानती थीं।'

जगोर की दीदी माँ की शिष्या हैं। उन्होंने भी कहा कि उन्होंने मा का एक मेम म बात करते देखा है।

राममय महाराज ने कहा, 'वह और मज की बात है। कम जा व लोग एक दूसरे की बात समझते थे, वही जानते हैं। तरह-तरह के सवाल लिए कितने ही विदेशी मां के पास आया करते थे। साथ म अवश्य दुभाषिया होता था। एक बार तो मैं ही दुभाषिया बना था। लेकिन एक मिनट जाते न जाते देखा, सवाल करने वाले के पूछने ही सीधा जवाब दिए चली जा रही हैं। और वह सर झुकाए सुन रहा है। दुभाषिए को जबान खोलने की जरूरत ही नहीं पड़ी। वही तो गुरुदास महाराज हैं—ये दत्त हैं—मा के मंत्रशिष्य। मैंने उनसे पूछा, आपने मा से मंत्र जो लिया, उनकी बात आपने समझी कैसे? उन्होंने हंसकर जवाब दिया, 'understood'

गुरुदास महाराज को तो रोज ही देखा करती हूं। गोरे चिट्ठे गदाधारी बूढ़े सज्जन, दोनों शाम आम के बगीचे के रास्ते पर पायचारी करते हैं, जरा देर धूप में पड़ी बेंत की कुर्सी पर बैठा करते हैं। दूसरे साधु भी उनके पास आ जुटते हैं, आपस में चर्चा-आलोचना चलती है। सामने पड़ जाते हैं तो उनके करीब जाती हूं। गुरुदास महाराज चलते हुए रुक जाते हैं। प्रणाम करके चली आती हूं, वह भी डग बढ़ा कर आगे चले जाते हैं। सीधे रास्ते से कभी इधर-उधर नहीं। आज तक उनसे कभी एक भी बात नहीं हुई।

आज पता नहीं क्या हुआ, दूर से मुझे देखकर रास्ते से अलग घास पर से होते हुए आप ही आए। हंस कर आखा की ओर देखते हुए ओर जोर से बोले 'शिवो शिवो।'

परसों मैंने रामकृष्ण देव की वेदी के सामने रंगीन फूलों का नक्शा बनाकर सजाया था भीगी माटी का। मैंने सुना, देखकर गुरुदास महाराज बहुत खुश हुए थे। उन्होंने कहा था, 'फूलों की पखड़ियों की पांत में हाथ के ढाल पूजा के मंत्र! नई चीज है!'

इसीलिये वह इस तरह से अपनी खुशी जता गए।

दोपहर का खाने से पहले बड़ी-दी ठाकुर के मंदिर में गयीं। मैं बाहर खड़ी रही।

कुहासे सा पानी पड रहा था। आखों से दिखाई नही देता। सर के बाल भीग उठते। पास के पेड मे खिली सुनहली चमेली की भीड।

साधक नाम—जैसा नाम वैसा गुण।

बडी दी बोली, 'घटा बज गया सुना नही। जल्दी चलो।'

झटपट कोने के बक्से मे हरे पत्ते पर रखे लाल चदन का टीका लगाकर रसोई घर के ओसारे पर चली आई।

कागज मे मुडे कुछ लाकेट फल और हरी मिच लिये जसोर की दीदी सामने की कतार म आकर बैठी। खट्टा तीता चरफरा के बिना उन्हे निरामिस भोजन नही रुचता। बोली, 'गगा म मछलियो की कसी भरमार है! तेल मिच डालकर लाल कटकट झाल चच्चडी कैसे बने रानी, कहो तो?' कह कर लोभ दिखाने के लिये उन्होंने जीभ से टकाटक आवाज की।

पदमा नदी के पार की लडकी हू, रह रहकर यह बात याद नही आती, शपथ खाकर यह बात कसे कह सकती हू?

तीसरे पहर की ओर वसुमती मा उठकर इस तबू मे आयी। बाहर स ही उचक कर उन्होने पीढे को देखा। बोली, 'बन जाय, तो मुझे बताना। तुम लोगो को लेकर एक साथ बैठूगी, ठाकुर के सामने यह पीढा डालकर दो गीत गाकर आखो के आसू से जरा पूजा कर आऊगी।'

दिन भर मे वसुमती मा एक बार उठती हैं। हाथ मुह धोती हैं, नहाती हैं कभी-कभी गगाजी जाती हैं। साथ की दाई कहती है, 'पूछिये मत, एक डुबकी? डुबुर डुबुर डुबकिया ही लगाती रहती हैं और कहती हैं, देख तो, मेरे सारे बाल भीगे कि नही पूरा माथा डूबा या नही?'

सेवाश्रम के साधुओ को खिलाने का उन्हें बडा शौक है। मौका मिलते ही जलेबी का भोग देती हैं घी भात बनवाती हैं। कहती हैं, ये सब क्या भला,बुरा कुछ खाते है? दोनो जून दो मुट्ठी भात और तरकारी। कोई शौक नही। कोई अरमान नही। इन्हे न खिलाऊ तो खिलाऊ किन्हें?'

अपने लिये उनको थोडे से गिने-गुथे रुपये आते हैं। वह उन्हे इन्ही की सेवा मे खच कर डालती हैं। बाकी जायदाद हिसाब से दान खरात मे चली गयी है—पोता, पोत-जमाई को मिली है। रामकृष्ण मिशन के शिशु पालन मद म कुल

बारह सौ रुपये दिये गये हैं। इसका इन्हें बड़ा सदमा है। कहती हैं, 'संपत्ति कानून के हाथों चली गयी, मैं जी भर कर ठाकुर को नहीं दे सकी।'

मिट्टी के तेल की रोशनी में मेरा काम नहीं हो पाता। रंग नहीं दिखायी पड़ता। दादा ने कहा 'अब बंद भी करो। सो रहो। तुम्हारी दीदी कहां गईं? बड़ी देर से उनको देख नहीं रहा हूं।'

मैंने भी कुछ ख्याल नहीं किया। रंग लगी कूचियां को धोया, कुरके और पीढ़े को ठीक कर उठ गयी। ऊपर की तरफ ताका। तंबू भीगा हुआ था। कहीं रात को पीढ़े पर पानी की बूंदें टपकें? तीन चार दिन का अखबार निकाल कर ऊपर डाल दिया। अगर कागज गीला हो जाए? चार तह करके उस पर कंबल को डाल दिया। अगर कंबल भी भीग जाय? बनवास के होल्डआल को खोलकर उस पर बिछा दिया। अब कोई चिंता नहीं।

सच ही तो, इतनी रात को बड़ी-दी कहां गयी? तंबू का दरवाजा खोल कर बाहर निकल पड़ी। सब तंबू में सन्नाटा। अंधेरा। कान लगाया। वसुमती मां के तंबू में गुन गुनाहट-सी सुनाई पड़ी। फांक से देखा, ठीक ही तो। बड़ी-दी वहां उनके आमने-सामने बैठी हैं। सोचकर बचाकर मैं भी अंदर दाखिल हो गयी।

वसुमती मां गीत गाकर बड़ी-दी को समझा रही हैं *गीत गाए बिना क्या* मन में भाव जमता है। गाना—

सकटनाशिनी श्मशानवासिनी
कहां मां हृदय मसान कहां?
हृदय मसान को करके अंधेरा
ब्रह्ममयी मां, तुम हो कहां?

इस तरह से सुर के साथ ध्यान करना। साधना नीरस है, सुरस इसी से होती है।' बड़ी दी ने पूछा, 'यह सुरस आता कैसे है?'

—'कैसे आता है?'

वसुमती मां के सामने एक दियासलाई पड़ी थी। उसे उठा कर उसमें से एक तीली को जलाकर कहा, 'देख लो फुस किया और जल उठी। उस जलती हुई तीली को घुमाते हुए कहा, अब इस इतने से ही सारा कनखल जल जाएगा।

फूक्कर तीली को बुझाकर उन्होंने फेंक दिया। बोली, 'बिटिया पहले यही आग जलानी होगी। पहले मिट्टी का तयार करो, तब तो चारा रोपोगी ? मिट्टी ही यदि तयार नही होगी तो पड कस बचेगा ? ठाकुर कहा करते थे—'

पूछा, 'ठाकुर को आपन देखा है ?

— सिफ देखा है ! परस भी पाया है—पारस पत्थर का परस। श्रीमा के मके की लडकी हू मैं। दाय हाथ के बीच की इस उगली को मा की मुटठी म डाल कर छोटी-सी मैं कितनी ही बार ठाकुर के पास गयी। ठाकुर कहते थे, 'अहा, कवारी कन्या अजी पहल उस खाने को दो।'

ठाकुर की कृपा का बखान क्या कहकर खतम किया जा सकता है। इतने निग्रह मे भी उनकी कृपा पायी है। मैं निवश हू मगर वास्तव म क्या ? ठाकुर कहा करते थ 'जीते कुत्ते स मरा हुआ सिंह कही अच्छा है। मेरे वे सब मरे हुए सिंह होकर जिंदा हैं। यह सब उन्ही की कृपा है। उन्होंने दिया था, उन्होंने ही ले लिया।

मुझे ठाकुर बहुत स्नेह करते थे। मेरा ब्याह ठीक हुआ। काली लडकी। सास का मन हो नही रहा था। बोली, मेरा लडका सुदर है। काली बहू कसे लाऊ ?' ठाकुर ने कहा, 'सुनो उस काली लडकी का ही लाओ, पूतो फलेगी दूधा नहाएगी। लक्ष्मी लाभ होगा।'

मेरी मा न कहा, चावल चूल्हे का ठिकाना नही, मामा के घर पला है, उस लडके से बेटी को कसे ब्याहूगी ? बिटिया को अन्न वस्त्र क लाले रहेंगे।'

ठाकुर ने कहा चाची—मा को यही कहते थे, एक नाते से चाची होती थी—बिटिया का उसी घर म दो। तुम्हारी बेटी राजरानी होगी।'

'उन्ही की बात पर आखिर दोनो तरफ के लोग राजी हुए शादी हो गयी।

काली लडकी, काली लडकी, मेरे मन को बडी ठेस लगती थी।

छोटी थी तो क्या, बडी स्वाभिमानी थी। विवेकानद ने भी कहा था, काली लडकी स क्या ब्याह करोगे। उसके पेट से तो डोमटोली कस जाएगी। यह बात मेरे काना पहुची थी। ब्याह के बाद जब मुझसे कहा कि, नरेन आया है, जरा सुपारी काट दो। मैंने कह दिया मैं नही काटती। उसने मुझे काली लडकी कहा है। छोटी लडकी शरारती मन, उसने 'काली लडकी' कहा था, यह बात याद थी। छुटपन के सब साथी, मैं और मेरे पति ने बचपन म पूजा के लिये कितनी बार

फूल तोडे थे। एक टोले से फूल तोडकर दूसरे टोले म गयी। विवेकानद के यहा खूब बडे-बडे स्थलपद्म थे। नीद से जगकर फूल तोड देने के लिये आता था—बडी-बडी आखें सचमुच जैसे श्वेत कमल की पखुडिया हो। कितनी सुदर। एक साथ कितनी झगडा झझट की। ब्याह के बाद नयी बहू देखने आया तो मेरा घूघट हटाकर जूडा पकडकर हिलाते हुए कहा, अरे, आखिर तू अमुक की गिरस्ती करने आयी?'

'मेरा नाम भी ठाकुर का ही रक्खा हुआ है। पहले मेरा नाम था—'हाबी'। भाई का नाम था 'हेबो'। ठाकुर ने कहा, 'चाची बेटी का यह कैसा नाम रक्खा है?

'मा ने कहा, तो तुम्ही रख दो ना कोई नाम।

'ठाकुर ने कहा सुनो तुम लोगो का वह कुसुम, नलिनी कामिनी, मालती—यह सब नाम मैं नही रख सकूगा। मैंने इसका नाम दिया—भवतारिणी। दक्षिणेश्वर काली का यही नाम है। तब से मेरा नाम भवतारिणी ही रहा।

मेरे पति उस समय उमर के छोटे थे। आज के मुकाबले बच्चे ही। बाप के मर जाने से मा-बेटे ने मामा के यहा पनाह ली। तभी से वह ठाकुर के पास जाया आया करती थी। मामा से छिपाकर जाना पडता था। मामा को पता चल जाता था तो हगामा करते थे। उस समय ठाकुर को कोई पहचान नही पाया था। उल्टे सब उनको बदनाम करते थे कि अच्छे-अच्छे बच्चो को यह पगला बरबाद कर रहा है। मेरे पति को मेरे मामा-ससुर ऊपर कमरे मे बद करके ताला लगा देते थे। मगर ठाकुर का खिचाव कैसा था सो देखो, खिडकी का सीखचा तोडकर कपडे के सहारे नीचे उतर जाते थे। मा और मामी डर के मारे कभी तो बात को छिपा जाती कभी-कभी मारपीट, फजीहत हो जाया करती। इसके लिये उन्होने कितनी जो मार खायी, कोई ठिकाना नही। एक दिन गया हुआ कि मामा ने तो भानजे को ताला डालकर कमरे मे बद कर दिया, उधर भानजा सीखचा तोडकर भाग निकला। दरवाजा खोलकर मामा ने देखा, लडका तो लापता है। उस दिन वह इस बुरी तरह पागल हो गये कि—अब कोई उपाय नही। इस लडके का सत्यानश हो गया। मामा के यहा लडका आदमी नही, बदर बनता है—लोग तो यही कहेगे न? और मेरे नसीब मे यही सुनना लिखा था? क्रोध से मामा ने मामी से कहा, आज अगर तुम इस लडके

को राख के बदले भात परोसोगी तो तुम्हारे बाप के मुह मे—एक अभक्ष्य वस्तु का नाम लिया।

'क्या, बाप के नाम पर लानत ! मामी तो रो रो कर बेहाल। मा भी रोयी। उन्हे भी कुछ कम दुख नही था। उन्ही के लडके के लिये भाई भाभी के घर मे ऐसा अनर्थ हो रहा है। मामी ने खाया नहीं, पिया नही। मा ने जाकर पुरा पडोसियो से कहा, जरा आप लोग चलकर उनसे कहे न, मुह मे दो दाने डालें। एक एक से निहोरा विनती की। अपने से कहने का मुह नहीं रहने दिया था लडके ने।

'इधर लडके का भी पता नही। बेला बीत चली। ऐसे म एकाएक लडका हाजिर हो गया और सीधे मामी के पास जाकर हुमकी दी—मामी, इतनी बेला हो गयी, जल्दी खाने को दो। मैं नहाकर आता हू।

'मामी क्या करें ? भूखे लडके को खाने को नही देंगी ? और इधर मामा का शाप।

'मामी ने थाली मे भात, दाल तरकारी जैसे परोसी जाती हैं परोस दी और एक गोयठे को सफाई के साथ जलाकर अलग से थाली मे एक तरफ रख दिया। थाली मे खाना देकर चूल्हे की ओर मुह किये पीठ फेरकर बैठ गयी।

'भानजा खाने बैठा तो बोला, ओ मामी सुनती हो ? यह क्या है ? थाली म राख क्यो ? देखा नही शायद। खूब तो हो तुम ! अरे, यह क्या पीठ फेरकर क्यो बैठी हो। बोलोगी नही ? तुम्हे क्या हो गया आज ? मामी—

'मामी ने हू किया न ना। चुप बैठी रही, गोया पत्थर हो।

'भानजा कुछ देर बकबक करता रहा, फिर राख को फेंककर खाने लगा।

'इसके बाद मामी ने मुह घुमाया। कहा, बेटे तुम्हारे चलते आज मेरे बाप के मुह मे अखाद्य कुखाद्य डाला गया। मुझे तुम और कितनी सजा दोगे ?

'भानजा ने शुरू से आखीर तक सब सुना। सुनकर बोला, अच्छा मामी, तुम भात खाओ। मैं वचन देता हू कल से अब वहा नही जाऊगा।

'सो तो नही होगा। उन्होंने शाप दिया है। तीन दिनो तक मैं अन्न-जल नही ग्रहण करूगी।

'भानजा खा पीकर उठ गया। मन बहुत खराब हो गया। मामी को वचन दिया है, कल से वहा नही जाऊगा। जी मे आया, आज आखरी बार एक बार

वहा से हो आऊ। सोचते-सोचते चल दिया। लौटकर आया, तो मामी ने पूछा, अब तो नही जाओगे ?

'भानजे ने कहा, नही मामी।

उनसे तुम यह बात कह आए ?

'हा खाल कर उनको सब बता दिया।

उन्होने क्या कहा ?

'कुछ नही। आते समय सिफ पूछा हा रे, तेरे यहा मूर्ति है ? मैंने कहा, हा, गोपीनाथ की है। वह खिल पडे। बोले भोग लगता है रे ? मैंने कहा हा। वह बोले, मुझे एक दिन भोग खिलायेगा ? खाने को बडा जी चाहता है।

सुनकर मामी का प्राण डोल गया।

'तुम लोगो ने ठाकुर को छलना समझो न ? स्त्रिया किसी को खिलाने का मौका पायें तो और कुछ नही चाहती।

मामी ने पूछा तो तू क्या कह आया ?

'कुछ भी नही कहा, मैं चला आया।

ऐसा नही हो सकता। उन्होने भोग खाना चाहा। कल मैं सवेरे-सवेरे रसोई कर दूगी, तू जाकर उन्हे भोग खिला आना।

मगर मैंने जो वचन दिया कि अब नही जाऊगा ?

मामी ने लाड से कहा, अरे पागल भोग से जाने मे दोष नही है। मैं ही तो जाने को कह रही हू।

दूसरे दिन भोर होते न होते मामी ने उठकर घर का सारा काम धधा कर लिया और रसोई मे लग गयी। गाव घर की रसोई और तरह की होती है। कलिया कुरमा—यह सब तो नही। उन्होने केले के मोचे की तरकारी बनाई नीम झोल किया काइडे की सत की सब्जी बनायी खीर बनायी। यही सब बहुत कुछ। मामी के हाथ की रसोई की गाव घर मे तारीफ थी। बडे जतन से बना-बनूनकर मामी ने पुजारी को कहा, आज जरा जल्दी करो, गोपीनाथ का भोग लगा दो।

आखिर भोग का वही भात—जानती हो हो, गाव के लोग भात जरा ज्यादा खाते है—एक पीतल के बतन मे दबा-दबाकर ज्यादा ही सजाया ताकि ठडा न हो जाए। भात के ऊपर अलग-अलग कटोरे मे तरकारी रक्खी, खीर रक्खी। सब रख रखाकर उस बतन पर केले का पत्ता रखा और एक गमछे से उसे अच्छी

तरह से बांधकर भानजे को दिया। बोली तेज कदम बढ़ा कर जा ठाकुर को खिला आ और ये कुछ पैसे रख ले। गाडी का किराया। देखना, रास्ते में कहीं देर मत करना।

इस तरह से ताकीद करके भानजे को उन्हें भेजा, गोया उन्हीं को ज्यादा गरज थी। उसे भेजकर मामी बस घर और बाहर करती रही, कब लौट कर आता है।

उधर ठाकुर ठीक खाने को बैठने ही जा रहे थे कि मेरे स्वामी भोग लेकर पहुंच गये। ठाकुर की खुशी का क्या कहना। वाह, ठीक समय पर तो आया है। देखूं तो, क्या क्या लाया है। आ रसोई की खुशबू कितनी अच्छी! उनके पास जो लोग बैठे थे ठाकुर ने सबको बांटा स्वयं भी लिया। हर चीज का खाते और कहने लगे देख रहे हो, क्या खूब बनी है। मैंने ऐसा और कभी नहीं खाया। खीर कितनी उमदा बनी है। कटोरे को चाट चाटकर खा गए। बार बार यही कहते रहे, आज अमृत खाया। अरे, सचमुच ही गोपीनाथ का भोग बना है। इसी से इतना स्वाद है।

'इधर मामा उनकी खोज करने लगे। मामी और मां जो-सो जवाब देती गयीं। यहीं पर तो था अभी। आ ही रहा होगा।

तीसरे पहर भानजा लौटा। मामी दौड़ी-दौड़ी गयीं। पूछा, हां रे खिला आया उन्हें? क्या बोले?

'बोले, तुम्हारे गोपीनाथ का सचमुच ही भोग बना है। मैंने अमृत खाया। क्या बताऊं मामी, कितने खुश हुए। चाट पोछ कर खा गये। बोले ऐसी रसोई मैंने कभी नहीं खाई।

— अब क्या था। रसोई की उन्होंने तारीफ की। स्त्री का मन गल गया। ननद भाभी मिलकर लड़के के हाथ छिप छिपाकर भोग भेजती रहीं। नाव का किराया गाड़ी का किराया भी दे देतीं कि आने-जाने में लड़के को कष्ट न हो। लड़का कभी-कभी बिगड़ बैठता यह रोज रोज होकर मुझसे ले जाना न बनेगा। मां मामी निहोरा करतीं, सोना मेरे, आज एक बार जा। आज माल पूआ भोग लगाया है। आज खोए का लड्डू है आज चूड़े का पकवान है आलू का पीठा। ऐसा ही चलता रहता।

ठाकुर की महिमा! आखिर खाली भोग भेजने से ही तृप्ति नहीं, उनके पास ये लोग भी जाने लगी।

मैं बहू थी। घूघट काढकर मैं भी साथ जाया करती थी। मैंने ठाकुर को दूध की मलाई खिलायी थी।

वह उस समय काशीपुर म बीमार थे। गले म घाव हो गया था। कुछ भी खा नहीं सकते थे।

उन्होंने मलाई खाने की इच्छा प्रकट की। एक ने ला भी दी। ठाकुर ने अगुली से उसे देखा और छोड दिया। कुछ कडी-सी थी। खाने म गले म लगती। मैंने देखा। घर आकर सास से कहा एक दिन ठाकुर के लिए मलाई ले जानी है। ले जाऊ ? सास ने इजाजत दे दी। गरीब गृहस्थ का घर, आखिर दूध ही कितना होता है ? आधा सेर तीन पाव होता होगा। उसी को चूल्हे पर चढाकर आच लगायी। उफना उठने ही दूध को उतार लिया। फेन को निकाल लिया। मुझे याद था सास ने उस दिन कहा था अहा मलाई जम-सी गई थी, इसलिए ठाकुर उसे खा नहीं सके।

'एक हरी-सी काच की कटोरी थी। चार आन म वे जो चूडिया बेचनेवाले आते हैं न उन्हीं म खरीदी थी। वह कटोरी आज भी है। उसी कटोरी म मलाई ली, कागज की पुडिया म अहीरी टोला की मा शीतला की प्रसादी थोडी सी लाल चीनी ली—घर म थोडी सी ही थी उतनी ही ली। इस तरह बाए हाथ की तलहथी कटोरी ली, दाए हाथ से उसे ढका। और सास के साथ घोडा-गाडी पर चढकर ठाकुर के यहा गयी।

'ठाकुर चौकी पर सोए हुए थे। जिसे अजानुलबित बाहु कहते हैं उनके सचमुच ही वसे बाहु थे। विशाल छाती। तसवीर मे जो दिखती हो वह कुछ भी नहीं। सफेद खोल वाले एक तकिए क सहारे करवट लेकर अधलेटे से थे। बगल मे दूसरा एक तकिया था। मैं उनके करीब जाकर बठी। देखो आग मे हाथ डालने से चाहते हुए भी जलता है अनचाह भी जलता है। मैंने हाथ जलाया। उस समय भक्ति वक्ति नहीं समझती थी। दुलारी होन से ही गल जाती थी। उसी तरह से ठाकुर के पास बठी घूघट के अदर से बोली आपके लिए थोडी सी मलाई लाई है। सुनकर ठाकुर तकिया हटाकर उठ बठे। गले म घाव था। बोल नहीं सकते थे। डाक्टर की भी मनाही थी।

'हाथ बढा कर कटोरा उनके सामने रखा। चीनी दिखाती हुई बोली, यह शीतला माता का प्रसाद है। फिर हाठ फुलाकर कहा चीनी काली है। ठाकुर न

चीनी हाथ मे ली। वहाँ जो लोग बठे थे। सबको थोडी थोडी दी। कागज म जो बच रही उसे मलाई पर डालकर दो उगलिया से उठाकर धीरे धीरे सब खा गए। खाकर इशारे से पानी मांगा। कटोरे म पानी घोलकर उसे भी पी गए।

'अब खयाल होता है, फिर क्या नही ले गयी मलाई, फिर उन्हे क्या नही खिलाया? घर की बहू थी, शम स किसी म कह नही सकी। वही एक बार उन्होने मेरे हाथ की मलाई खायी। उनका भी मुझे भान हुआ—मलाई तो खा ली, भला बुरा तो कुछ कहा नही। छोड़ू क्या, शाबाशी तो लेनी होगी? मुह बढाकर फुस फुसाकर बोली, मलाई मुलायम थी। मुलायम सख्त की मैं क्या जानू? पर सास न वही जो कहा था न, जहा मलाई जमी-सी थी—इसीलिए मैंने अपनी मलाई को मुलायम कहा।

'ठाकुर ने हसते हुए धीरे धीरे अपना दाया हाथ उठा कर मेरी पीठ पर रखा। कहा तुम स्वय जो पक्की हो।

'मेरी खुशी की तो सीमा नही रही।

मैंने पूछा, 'आपने ठाकुर म ही दीक्षा ली है?'

'दीक्षा-वीक्षा तो नही समझती। मैंने एक दिन जाकर उनसे कहा, मतर लूगी। वह बोले, मेरे पास इंडिंग बोर्डिंग नही है। जाओ हर कृष्ण जपा करो। और मेरे पति का नाम लेकर बोले, अमुक जो कह, उसे सीख लो। वही हमारी दीक्षा हो गयी। मैं उसी नाम को अपने जीवन का सवस किए हुए हू।

ठाकुर की पुस्तक म तुमने पढा नही है, मेरे पति के पैर म साप ने काट लिया था। ठाकुर के शव को कधे पर लिए जो कई लोग जा रहे थे उनमे मेरे पति भी थे। जा रहे हैं कि पैर म साप न काट खाया। सभी हाय तोबा मचाने लग। मेरे पति ने दव-वाणी सुनी, उस साप को मारना मत। आज से भाग्य तुम पर प्रसन्न हुआ। सबने इस-उस चीज से उनके पाव को बाधना चाहा, पर मेरे पति ने शव से कधा नही हटाया।

'इधर घर मे तो उथल पुथल मच गयी। खबर आई कि उनको साप ने काट लिया। रोना धोना मच गया। पति लौटे। साथ के लोग बता गए इन्हे कुछ खाने को मत दीजिएगा, सोने मत दीजिएगा। पति ने कहा मुझे भूख लगी है पहले खाने को दो। मा और मामी हा हा कर उठी। उस दिन घर मे सत्यनारायण

प्रभु की पूजा हुई थी। घर के गर्म बान म प्रसाद ढका रखा था। मेरे पति ने जाकर अपन से ढक्कन उठाकर मालपुआ और ताड के बडे भर पट खाए और किवाड बद करके जमकर एक नीद ली। घर म सब बेचन जाने क्या होगा। जी भरकर सोन के बाद मेरे पति हसत हुए बाहर निकल।

'अच्छा लो तो बिटिया काफी रात हो चुकी। जो गीत लिखे, एक बार मेरे साथ गला मिलाकर गा लो तो। पहल हृदय पद्म के आसन पर उन्ह बिठाकर आह्वान कर लेना—

मा मेरे अतर मे जागो।
जागो ओ, कुल कुडलिनी—
तुम्ह हृदय मे धारू पल पल तुम्हें निहारू
अलग न रक्खू दिन रजनी
आओ मानस मदिर मे—

'इसे दो बार गाना—
फिर कहना

आओ मानस मदिर मे ऐ तारा,
ऐ श्यामा—
आओ मानस मदिर मे, ऐ काली।
तुम्हें पूजकर अपना जनम सफल कर लू मैं जननी।

'बडा लबा गीत है। तुमने लिखना चाहा इसीलिए कहा। अपनी पूजा मैं तो गीतो से ही करती हू। मन म गीतो के सुर से जसी सहजता से भाव जगता है वैसी सहजता से और किसी भी चीज से नही। कितने गीत लिखोगी ? पद भूल जाती हू। मन म भाव के आन से शब्द आप ही आ जात हैं। इसीलिए मैंने लिखकर रखन की जरूरत नही समझी।

पोते का ब्याह था। कविता म उपहार लिखना था। सब सलाह करने लगे। बेटे ने कहा अरे तुम सब क्या लिखोगे ? मा को पकडो। मा ही लिख देंगी। खैर वह सब बात छोडो। गाओ—

विरह मा सदा रग मे षटचक्र शिव-सग मे
कृपा तुम्हारी माग रही भवतारिणी, अनिवार।

'भवतारिणी तो मेरा नाम है। तुम जब गाओगी तो गाना—

'यह अधमा अनिवार—जागो मा इकबार।

—'गीत जसी कोई चीज नहीं। जब वक्त मिले तभी गीत गाना।

'अतिम पद क्या लिखा ?

चिर शांति की आशा मे यह
भवतारिणी रही खोच धार बह

'यहा भवतारिणी की जगह—विकल सुता लिखो अधमा पहले लिख चुकी हो ना एक ही शब्द बार-बार अच्छा नही लगता। हा, तो गाओ—

चिर शांति की आशा मे यह
विकल सुता रही खीच धार बह
मेरी श्यामा मा का पद है, सच्चिदानद पारावार
जागो मा इकबार।

'मैं तो यही सब म डूबी हुई थी बिटिया। बीच मे आधी के एक झपटे ने आकर सारा कुछ मटिया मेट कर दिया।

वसुमती मा के तबू से निकल कर अपने तबू म आ रही थी। बीच का थोडा-सा रास्ता पार कर रही थी अचानक बिजली कडक कर चारा दिशाआ को कपा गयी।

काशी में हमारा पहला सवेरा। सेवाश्रम के पंडे श्रीपंडा के आसरे बैठी थी। तै थे कि वह आकर हम लोगों को अपने साथ लिवा जायेंगे। काशी की गंगा में गोता लगाकर विश्वनाथजी के दर्शन उसके बाद और कोई काम। बड़ी दी की इच्छा हुई इतना कुछ जब हुआ ही, तो लौटते हुए काशी में उतरकर दो फूल और बेलपत्ते शिव जी के माथ पर चढ़ाते ही चलें। शिव जी आशुतोष हैं सदा ही संतुष्ट। उन्हें खुश करने में लगता भी क्या है? एक धतूरा और एक चुल्लू गंगाजल बस।

सुबह होते न होते भोला मामा आ पहुंचा। आश्रम का कौन सा मकान कब खरीदा गया, इस प्रेसिडेंट से पहले के प्रेसिडेंट और भी अच्छे थे गुहाल की गायें कितना दूध देती हैं वह विशाल काला सांड हाल ही में खरीदा गया है रास्ते के बगल में ही बंधा था, पता नहीं तुम लोगों ने देखा कि नहीं—आदि आदि बातें कहते और खुद ही जवाब देते चले गये। कभी भोला मामा बहुत अच्छा बगीचा लगाना जानता था—आसाम कृषि विभाग में इसके जैसे कलम की कटिंग और कोई नहीं कर सकता था। बड़ी दी ने बताया, बीच में भोला मामा बहुत सख्त बीमार पड़ा। पिताजी ने उसके इलाज में बेहिसाब खर्च किया—अचानक एक दिन भोला मामा लापता हो गया। बहुत खोज ढूंढ हुई। कहीं पता न चला। हम सबने इसकी उम्मीद छोड़ दी। समझ लिया कि वह नहीं रहा। इतने अरसे के बाद कल अकस्मात ही भेंट हो गयी।

कल जब हम सब यहां आये, आश्रम के कार्यालय में बैठकर प्रेसिडेंट से बात चीत कर रहे थे देखा, बड़ी दी अनमनी-सी हो भवें सिकोड़े हुए एक टक उस आदमी की ओर ताक रही हैं, जो कोने में खड़े होकर धूल-झाड़कर किताबों को अलमारी में रख रहा था। देखते-देखते बड़ी-दी उठकर वहां चली गयीं दोनों,

'भोला मामा ! तुम यहा ! मुझे नही पहचान सके मैं हिरण हू।'

बूढे सज्जन माथा हिला हिलाकर बोले, 'हा हा, नही पहचाना था। अब पहचान रहा हू—तुम मेरी मा हो।'

भोला मामा दादा ससुर के समय के दासी पुत्र थे। बडी दी उसकी बडी लाडली थी, बेटी जसी। शादी-व्याह, घर गहस्थी नही की। उसी घरके वाल बच्चा को लाड-प्यार करके जिदगी गुजार दी।

बडी दी ने पूछा, 'अच्छा भोला मामा, तुम हम लोगो को भुला सके ? यही कैसे चले आय तुम।'

भोला मामा ने कहा 'आसाम से जाकर दो साल चन्नाव रहा। उसके बाद यहा चला आया। गाडी म बुखार आ गया। बेहोश हो गया। होश आया, तो देखा कि इन लोगो के अस्पताल म पडा हुआ हू। चगा हो गया, तो सोचा अब कहा जाऊ, यही रहू। इन लोगो ने मुझे दफ्तर मे काम दिया। चिट्ठी-पत्तर देता लेता, टेलीफोन अटेंड करता। दोनो जून खाना मिल जाता है। दिन कट जाते है।'

गगन महाराज ने कहा, यह बुड्ढा हो गया तो क्या हुआ, अभी भी बदन म जोर कितना है ! और, बडा विश्वासी है।

हम सब तैयार ही थे। पडे के आते ही निकल पडे।

दशाश्वमेध घाट तो बिलकुल पास है। जब जी चाह आप ही जाकर हम नहा सकते हैं। आज मणिकर्णिका घाट चले—क्या ख्याल है ?' कहकर दादा ने बडी दी की ओर देखा।

यह घाट नही, वह घाट—ऐसी मामूली बात पर बडी-दी अपनी राय का महत्व नही जताती। वह चुपचाप दादा के पीछे हो ली।

यह गली, वह गली, बैठा हुआ साड चलता हुआ साड कादो पान, पान की पीक—सबस बचकर चलते चलते दम घुटने लगा। हर बार यही लगता यही शायद अत है मगर एक और आ जाती।

मैंने कहा, 'पडा जी, लौटती बेर लेकिन इस रास्त स नही।'

पडा न समझा नही— *क्या ?*'—वह घूम कर खडा हो गया। कहा नहाकर विश्वनाथ जी के मदिर मे जाऊगी, किसी साफ-सुथरे रास्त स जाना अच्छा नही होगा ?

पडे ने कहा 'काशी म इससे अच्छा रास्ता और कौन मिलेगा ? तो फिर छोडिये। कहा मैले पर पाव पड जाय तो उन्ही पावो मदिर म दाखिल होगी। —मन ही मन गजगजाती रही।

रास्ते म पडा विशालाक्षी का मदिर। पडे ने कहा देख लीजिये। यहा पर सती मा की आख गिरी थी। इसीलिए नाम पडा विशालाक्षी का मदिर। पीठ स्थान है।

छोटे से दरवाजे स अदर गयी। गली घर मदिर—सब कुछ कैसा दरब-सा। अधेरा। दायें बाये ताकने का समय नही हडबडाते हुए मदिर म घुसी, और आखो के सामने जो मिले देखो। बने तो कादो पानी स किच किच फर्श पर पाव दबाते हुए दो डग बढकर सर ठोक कर प्रणाम कर लो।

विशालाक्षी के पास महालक्ष्मी उनके पास नवग्रह। किसी तरह से एक बार घूमकर निकल आयी। खडे रहने की गुजाइश नही थी। सवेरे के स्नान के बाद ब्राह्मण पडित लोग मत्र पढते हुए प्रदक्षिणा कर रहे थे। मूर्ति के सामने जरा खडी हुई कि ताली बजाकर इशारे म हट जाने को कहा। उनकी परिक्रमा का रास्ता रुक जाता था।

अप्रतिभ होकर बाहर निकल आयी। पडे ने कहा, 'क्या, विशालाक्षी को देखा न। इधर से नही आती तो यह मदिर देख पाती ?

मणिकर्णिका घाट पहुची। एक अजीब-सी बू मिली। तुरत ही खयाल हो आया, काहे की है।

दादा ने कहा, आगे चलो। महाश्मशान देख आए।

दादा आगे बढे। हाथ जोडकर बडी दी भी चली। मैं एक कदम आगे बढती, दो कदम पीछे हट जाती। इधर उधर ताकने लगी आगा पीछा करने लगी। समझ नही पा रही थी कि क्या करना ठीक है।

इतने म दादा और बडी-दी रेलिंग घिरी उस जगह के पास पहुच गये थे। नीचे से धुए की कुडली उठ रही थी धूप म आग की लपटें धक धक जल रही थी। उन तेज लपटो के अदर औंधे झुककर क्या देखना चाहते हैं लोग ?

नगे बदन कुछ छोटे बच्चे वहा बैठे खेल रहे थे। उन्ह किसी बात की फिक्र नही। घुटना टेक कर ताली बजाते और खिलखिला कर हस रहे थे सब।

जो मन आतक से सिकुड गया था कि 'क्या देखूगी कैसे देखूगी'—सहज

शिशुओ को देखकर शम से एक ही धक्के मे वह एक बारगी आगे जा पहुचा। आखें खोलकर देखा दखा कि गगा के किनारे महा श्मशान की आग धू धू जल रही हैं—माथे की ओर जली लकडी आग राख, धुए से एकाकार। पाव की तरफ लकडियो की आच म लाल सफेद-सा वह क्या है ? महावर लगे पाव ?—वह क्या है ? लाठी की एक धक्कोर स सब उलट पुलट गया। चिड चिड करती हुई आग की चिंगारिया उडी। धुए और गध ने आख नाक को भर दिया। आचल मे मुह छिपाकर मैं भाग आई।

कपाल म रक्त तिलकधारी एक तात्रिक न एक खोपडी आगे बढाकर कहा 'यह ससार मिथ्या है माया का बधन है। सब झूठ है, सब झूठ। एक महा श्मशान ही सत्य है। जाने के समय कुछ भी साथ नही जाएगा, खप्पर मे भीख दो—यही पुण्य सिर्फ साथ जाएगा।'

श्मशान के बायी ओर नहाने का घाट। घाट पर एक जगह श्वेत पत्थर के दो छोटे छोटे पाव।

पडे ने कहा 'यहा पर विष्णु ने पचास हजार वर्ष तक तपस्या की थी, और वह जो कुड देख रही हैं वहा पर विष्णु का कुडल गिर गया था। विष्णु की तपस्या से खुश होकर महादेव ने कहा बहा रे लडके, खूब तो तपस्या कर रहे हो ! यह कहकर उन्होंने विष्णु को झकझोर दिया, उसी मे विष्णु का कुडल यहा पर गिर पडा। इस घाट का नाम इसीलिये पडा— मणिकर्णिका। और, तपस्या करते-करते विष्णु के शरीर से जो पसीना चूता रहा, उसी से यह कुड बना !—बठिये बठिये इस लकडी पर बठिये कहता हू—सुनिए।'

घाट के ऊपर तख्ता का बना पडो का मचान, मचान के ऊपर पत्तो से छाया हुआ बडा-बडा छाता। धूप बडी तीखी हो आई थी। उतनी सी छाह जो मिली, बठ पडी।

पडे ने कहा 'कपडे वपडे रख दीजिए। आराम से बठिए।'

उसके कह मुताबिक आराम से ही बठी। पडा भी हमारे पास आकर बैठा। और भी कहानी सुनने के लिए मैंने उसके मुह की ओर ताका। पडे ने कहा, उसके बाद यह जो कुड देख रही हैं, शिव के वरदान से विष्णु ने तो सब माग लिया—तो यहा जो स्नान करेगा, उसे सभी तीर्थों का फल मिलेगा। इस कुड मे नहाने के बाद गगा म स्नान करना चाहिए। पहले ब्राह्मण को पचरत्न दान

करें इस कुंड में नहाइए, जाइये। यह देखिये, सभी यात्री पंचरत्न का दान कर रहे हैं।'

सीढ़ी पर पात बना कर यात्री बैठ गए थे, पंडा एक नारियल और कागज की एक पुड़िया—बेशक पंचरत्न की होगी—यात्रियों के हाथ से छुला छुला कर फिर अपनी टेंट में खोंस रहा था।

बड़ी-दी ने कहा 'जब यहां ले ही आया, तो जो करना हो, जल्दी-जल्दी कर लो।'

— 'क्या कितना लगेगा ?'

—'सवा रुपया।'

बड़ी-दी और दादा नीचे उतर गये। बंधे हुए कुंड में फूल और बेल पत्तों से सड़ा हुआ पानी। मैंने पुकार कर कहा, 'हाथ में जरा-सा जल लाकर मेरे माथे पर छिड़क जाना, मेरा उसी से चल जायेगा।'

पंचरत्न दान न करके पुण्य को तो अंगूठा दिखाया जा सकता है लेकिन पंडे को ? घाट के पंडे ने कहा 'घाट पर जो बैठे, उसकी दक्षिणा दीजिए।'

गंगा के घाट की सीढ़ियां पंडों के तख्तों से भरी। छौनी-छाता से ठसाठस। सभी चिल्लाते, 'यहां आइये, यहां कपड़े रखिए।'

अब की किसी की नहीं सुनी। सरसराती हुई घाट के नीचे तक उतर गयी। नियम तोड़कर लोग साबुन से कपड़े सींचकर नहा रहे थे। वहीं पर जाकर सूखी सीढ़ी देख कर कपड़े रखे और टपाटप दो डुबकी लगाकर ऊपर आ गई।

घाट से वीरेश्वर मंदिर की सीढ़ी ऊपर तक चली गयी है।

सीढ़ियां चढ़ते चढ़ते बड़ी-दी ने कहा, 'मालूम है, इन्हीं वीरेश्वर की मन्नत मान कर विवेकानंद की मां ने विवेकानंद को पाया था।'

यहां भी वही हाल। मंदिर के भीतर भी छोटी छोटी गली छोटे दरवाजे। उन्हीं में से एक से अंदर जाते ही पंडे ने कहा, 'अब सामने से बायें को चले जाइये, वहीं वीरेश्वर मिलेंगे।'

घुपघुप अंधेरा। थोड़ी देर तक ठिठक कर खड़े रहने के बाद दिखायी दी दरबे-सी एक कोठरी। फर्श पर एक चौबच्चा। स्नान करके लोग यहां कमंडलु से गंगा का जल डाला करते हैं। वह चौबच्चा फूल और बेल के पत्ता से भरा था—वीरेश्वर उसमें कहां हैं ? हाथ बढ़ाकर पानी में टटोला, पत्थर जैसा हाथ में कुछ लगा। तो क्या यही वीरेश्वर हैं ? गीले हाथ को अपने माथे से लगाया। पानी में

से एक मुट्ठी फूल उठा लिये। कात्यायनी वीरभद्र की प्रदक्षिणा करके बाहर की रोशनी मे निकल आइ। मुट्ठी खोल कर देखा, अक्वन मे फूल थे।

सक्टा-मदिर पास ही पडता है। बडी-दी ने फुसफुसा कर दादा से पहले ही कह दिया, 'सक्टा देवी के मदिर म कुछ ज्यादा दक्षिणा देना।'

मदिर के दरवाजे पर पाव रखते ही मन्त्रा की मद्र ध्वनि सुनायी पडी। देवी के सामने कुशासन डालकर दल के दल ब्राह्मण पडित बठ गए थे—पन्ने उलटते हुए चडी पाठ कर रहे थे।

बडी-दी ने कहा, 'देखो-देखो, एक-एक ब्राह्मण का कैसा रूप है, कैसा रग ?'

पहनावे मे पट्टाबर, कपाल पर सिंदूर का तिलक, देखने से सम्मान से आप ही सर मुक आता है।

मदिर में प्रवेश करते ही सबसे पहले सकटा देवी के सोने का बाया पाव दिखायी देता है। दाया पाव फूल और पत्तो से ढका। बदन, छाती, हाथ—सब जगह गहने और फूलो की माला। दीये के प्रकाश मे सुनहले गाल पर सिफ हवी की नथ झलमल करती है।

धूप और फूलो की सुगध और मत्र-गान से गूजती हुई जगह। जी मे होने लगा, किसी कोने मे चुपचाप बैठकर सिफ मत्र पाठ सुनू।

विश्वनाथजी का द्वार बद हो जाएगा। ज्यादा समय नही था। हम लोग जरा तेजी से चले। रास्ते म ही खोइचे मे फूल और बेल-पत्ता खरीद कर रख लिये थे।

कुछ दूर जाते ही एकाएक कैसी तो एक भीड मे पड गयी। बडी दी और मेरा हाथ छूट गया। भीड-के ऊपर से यह उसकी ओर हाथ बढ़ाती, फिर खो जाती। जसे डुबकी लगाते-लगाते सर उठाते हो। बहुत बहुत कसरत करने के बाद एक ने दूसरे को कस कर के पकडा।

बडी-दी ने पूछा, 'वे लोग कहा हैं ?'

कहा, मैं भी तो यही सोच रही हू, वे लोग कहा हैं?'

कहा कहा, करते-करते देखा, वे लोग भी, वे सब कहा, वे सब कहां, करते करते आए और खप् से हाथ पकड लिया।

अपना मोटा शरीर लिए मदिर मे घुसते हुए पडे ने कहा, 'आप लोग मेरी कमर पकडकर चले आइए।'

थोडी-सी जगह और एक ही साथ अनगिनती लोग घुसना चाहते। जाए क्या ?

आपस मे मार पीट, धक्कमधुक्की, रेल-पेल, झक्झक—सब विश्वनाथजी के सामने ही। एक पद्राह स्त्री की लाल कुरती की बाह ही भीड़ म गायब हो गयी। देख कर मारे गुस्से के उसने गगा जल भरा लोटा बगलवाले को दे मारा। उसे होश ही नही रहा कि जो जल उसने शिव के माथे पर चढाने के लिये लाया था, उसे किसके माथे पर डाल दिया !

मदिर मे हम न जा सकें तो मानो पढे का ही ज्यादा नुकसान है। परिस्थिति देखकर वह अपने विशाल शरीर को दाए-बाए हिलाने लगा। वैसा हिलने से देखत ही देखत उसके पीछे एक गह्वर-सा हो गया। बडी-दी मैं और दादा उसी म आ गए। पलक मारते वह गह्वर भर गया।

जो फूल ले गयी थी, विश्वनाथ के माथे पर उछलकर बाहर निकल आई। दो हाथो से हमें अगोरे पडा अगने म खडा रहा, कहा, 'यह देखिये, यह है बाबा का चादी का दरवाजा और वह रहा मदिर का सोने का शिखर।

विश्वनाथजी के पास ही मा अन्नपूर्णा का मदिर। देवी के दशन करके जिस रास्ते से गयी थी उसी रास्ते से डेरे लौटी। पत्थरो का बधा रास्ता, दो पत्थरो के बीच मे पतली पतली फाक। उन्ही फाको मे से एक मे मने का एक नन्हा-सा बच्चा पडा था, अभी पखन भी नही उगे थे उसने। यात्रियो के पैरो से कुचलकर उसके दो पाव सिकुड गए थे, जसे जुडे हुए हाथो को छाती से चिपका लिया हो।

दुतल्ले पर कमरा। सुनसान दोपहरी। खिडकी के पास चौकी पर लेटी थी। पुरानी इमली, नीम की काली-काली डालिया आसमान पर कोमल कोपला का जाल बुन रही थी। आज ही चावल के साथ नीम-बैगन खाया था। तो, गरमी शुरू हो गयी !

धूप के तीखेपन से कौए बोलत—का-का। सुनकर गला सूख आता। दोना आखें मीचे बिछौने पर पडी रही। बेल के पेड की आड से पाडकी बोल उठी। घुघुच्चु। मन वहा दौड पडता, जहा जाने को इतना मना करती।

बद आखो को खोल दिया। हरे पर चीकने पत्ता पर धूप की झिलमिल, जैसे आखो के सामने सपनो की छवि।

गीले कपडो को धूप म सुखाकर बडी-दी तह करके घर मे रख रही थी, लोटे

म, सुराही म पानी भर कर रख रही थी। विभिन्न देवी-देवताओ क आशीर्वाद। फूल बेलपत्ती को अखबार मे फैलाकर बरामदे पर पडने वाली धूल की ओर खीच दे रही थी। घर लौटने पर सबको थोडा थोडा देना होगा। उन्हें सुखा नही लेने से इतने दिना मे सड जाएगे। बडी-दी के कामो का अत नही पता नही, कसे तो वह काम निकाल लेती हैं। कहती हैं, 'इसके बिना तो मेरा समय नही कटता।'

दादा न कहा, 'तयार हो लो। चलो केदारेश्वर देख आए।'

दादा घडी की सुई के हिसाब से चलते हैं। घूमन को निकलने पर भी उससे इधर उधर होने का उपाय नही। सात बजकर दस मिनट पर लौटने की बात है, तो सात बजकर आठ हो मिनट पर लौट आएगे। कहते हैं, 'देर करके आने स दो मिनट पहले आना हो अच्छा है।'

ज्ञान महाराज की मां ने कह दिया था, दो रिक्शे से चले जाइए। छह छह बारह आने लगेंगे।' वह कुछ ही पहले आई थी। अपरिचित थी, पहले पहचान नही पायी। ज्ञान महाराज ने कह दिया था, 'काशी जा रही हैं, मेरी मां स मिलिएगा। सबेरे उनके यहा गई थी। भेंट नही हुई। मदिर चली गयी थीं। दोपहर को इसीलिए खुद आइ।

कहा ज्ञान महाराज की मा—सोच रखा था, सारा सर सफेद, सिंदूर स लिपी-सी एक थुलथुल बुढिया होगी।'

उन्होन हसकर कहा, 'और अब क्या सोच रही हैं?'

— अब तो सोच रही हू, मेरी ही छोटी बहन हैं।'

सुदर, हसमुख महिला। पति-पत्नी सेवाश्रम के पास ही रहती हैं। ज्ञान महाराज 'मां' कहते हैं। देर तक बठ कर हम लोगो से गपशप कर गयी। उन्होने ही कहा केदारेश्वर देखकर एक ही बार मे तिल मांडेश्वर भी देखती आएगी। आस ही पास है।'

किंतु रिक्शावाला ताड गया कि ये लोग अनाडी हैं।—'ऐ रिक्शावाले, केदारेश्वर जाओगे? कितना लोगे?' सुनते ही वे बोल उठे, ढाई रुपया।'

बडी मुश्किल स एक कनवाय पार हो जान के बाद दो रिक्शा म समझौता हुआ। केदारेश्वर गए। यहा यह एक अजीब अचरज है, दूर से मदिर का शिखर यहा नही दिखाई देता। गली से जाते जाते एकाएक एक दरवाजे के पास रुककर रिक्शावाले न कहा, मदिर आ गया।'

सिर झुकाकर अंदर गई, अंधेरे और फिसलन के रास्ते से आगे बढी, और भी अंधेरा, और भी सर झुकाया—तब कही केदारेश्वर को देखा। फर्श पर ऊबड़-खाबड एक गोल पत्थर—गिरिगोवर्धन जैसा। पत्थर का कटा छंटा जैसा शिवलिंग होता है, यह वैसा भी नही, स्वाभाविक पत्थर।

केदारेश्वर के ऊपर से फूल-बेलपत्ता हटाकर पडे ने कहा 'यह देखिए, यह जो ऊंची-नीची जगह है, यहा गौरी हैं। हर और गौरी।' कहकर उसने मेरा हाथ खीचकर केदारेश्वर के माथे पर रगड दिया। काई से भरा, सर-पैर समझ मे नही आया।

पडे ने कहा, 'एक बार केदारेश्वर आने से अट्ठारह बार केदार बदरी जाने का फल होता है।'

दादा ने झट केदारेश्वर को छूकर कहा, 'एक बार भी जाना हो कि न हो, अट्ठारह बार जाने का फल तो हो जाय एक ही धक्के मे।'

पडा तब तक बड़ी-दी के पीछे पड गया, 'मा जी, बाबू जी को हुकम कीजिये, केदारेश्वर को ढाई रुपये का भोग दें।' दादा हसे। बोले, 'कैसी गजब की महिमा है देखो। मैं जो हुकम का बदा हू बीवी का, पडे ने पल मे ही भाप लिया।' और बड़ी-दी के हाथ में रुपया देकर दादा वहा से खिसक पड़े।

'—ऐ बाबू, मा का सिंगार देख जाइये।' पीछे पीछे दूसरा एक पडा दौडा।

कुतूहल से मन अटक गया। काठ के छेद से पडे ने दिखाया, 'वह देखिये।'

कमरे के भीतर वह वहा, दूर पर पडा गौरी को साडी पहना रहा था। गुलाबी रग की सूती साडी, चुनन देकर घुमाते हुये आचल को दबाकर कमर मे चादी का कमरबद लगा दिया। माला चदन पहनाया, सिंदूर का टीका दिया, धूप-बत्ती जलायी। सध्या की आरती के पहले शृगार का काम समाप्त हुआ।

पडे ने कहा, 'वाह-वाह! यह क्या! चल दिए? मा का शृगार जसी चीज दिखा दी, अच्छी दक्षिणा दीजिये।'

तिल-माडेश्वर मे लेकिन यह सब बला नही। केदारेश्वर से यहा आने पर इसीलिए मन को इतना अच्छा लगा।

विराट तिल माडेश्वर। कमरे के पूरे सफेद फर्श पर एक काली गुबज हो जसे। इनका शृगार हो चुका था। लाल पीले सफद फूलो की ढेरी मे हरे बेल-पत्तो को कितने करीने से सजायी हुई पात पालिश किए हुये काले पत्थर पर। बीच

में रुद्राक्ष की माला को घुमा कर ऐसा कर दिया है, ठीक जैसे माथे पर जटा हो।

आरती से पहले पुजारी श्वेत पत्थर के फर्श को धो-पोछकर साफ कर रहा था। अंदर जाना अभी मना था। इतना साफ सुथरा कि जी भी नहीं चाहता जाने को। दरवाजे के पास बैठकर केवल याद आ रहा था, अवनीद्रनाथ अपने कथावाचक जी के बारे में कह रहे थे—'काला कुचकुच शरीर यह जब पाठ करने बैठता, तो लगता, ठीक जैसे तिल माडेश्वर हो। यह नाम मैंने वहीं सुना था, आज देखा।

तिल माडेश्वर ने सबके मन में प्रसन्नता ला दी, लिहाजा आज बाबा विश्वनाथ की आरती देखी जाए। अभी भी समय है। पहुंचा जा सकता है। विश्वनाथ की आरती, सुना है देखने ही योग्य होती है।

बड़ी-दी ने कहा, 'पिछली बार आई थी तो लोगों के सर के उपर से झाक-ताककर जैसे-तैसे जरा देखा था। एक झलक—वही कितनी सुंदर!'

श्रीपडा हमारा असली पंडा था। बड़ी दी ने उनको पकडा 'पंडा जी हम लोगों को बाबा की आरती दिखा देनी होगी।

पंडा ने कहा, 'बेशक। मैं ही तो दिखाऊगा। मैं नहीं तो और कौन दिखलाएगा? चलिए मेरे साथ।'

उसने हम लोगों को ले जाकर मंदिर के चार दरवाजे में से एक के पास बिठा दिया। बोला बैठे रहिए। उठकर कहीं जाइए मत। दूसरा कोई जगह दखल कर लेगा।'

दिन भर के कादो से पानी से मंदिर किचकिच हो रहा था। भीड को रोककर दो पुजारी उसे साफ कर रहे थे। ढेर के ढेर शिवकुंड से फूल और बेलपत्ते टोकरी में निकाल रहे थे। लाल कपडे के टुकडे से पोछ पोछ कर फर्श को सुखाया।

भीतर से शायद चांदी के बंधे शिवकुंड के नल को खोल दिया था। उस रास्ते से दूध मिला सादा पानी धीरे धीरे बह रहा था। और भीतर से विश्वनाथजी धीरे धीरे अपना सर निकाल रहे थे।

'हर हर बम', 'शिवशंभू' कहते-कहते एक छोटी आकृति का ब्राह्मण घुटने गाढ कर दोनों हाथों से शिवजी को साफ कर रहा था।

पानी घटता गया। अब ताम्रवेदी दिखायी दी। दोनों हाथ माथे के ऊपर उठाकर बूढ़े ब्राह्मण वज्र की तरह गरज उठे—'दाता शिवशंभू की जय हो।'

उस गरज से बाहर भीतर थर-थर काप उठा। वह गरज थमी नही, गूजती रही। वह आवाज। जैसे काले मेघ की गरज हो जैसे गाज गिरने की पहली सूचना हो। वह सूचना छत, दीवाल, हवा, आदमी से टकराती हुई फिरती रही। विराम नहीं।

पुजारी लोग बाहर निकल गए। बाहर रह गया सिर्फ वह मुग्ध बूढा। एक किशोर अदर आया—एक घडा दूध, एक टोकरी माला, भरे थाला भाग वत्ती—पूजा के भाति भाति के सामान लिए। बूढे का ध्यान मगर किसी तरफ नही—वह तन्मय होकर विश्वनाथ को देख रहा था और मन ही मन हसता हुआ वदन हिला रहा था।

किशोर ने आगे बढकर पूजा के उपकरणो को नजदीक खीच लिया। घडे को उठा कर बूढे के हाथ मे दिया। बूढे ने भभ् भभ् करके दूध उडल कर विश्वनाथ को नहलाया। दूध के बाद पानी। पानी के बाद दही चोआ, मक्खन। स्नान का अध्याय समाप्त होने पर प्रसाधन। चादी के कटोरे मे भरा चदन कुकुम हाथ मे उथल कर शिवजी के माथे पर चढाया। भीगा अरवा चावल छिडक कर तिलक किया। चदन लगे बदन पर सादे चावलो के सट जाने से अनोखी बहार खुली। मजे हाथ का शृगार। गरदन घुमाकर देख-देखकर बूढे का कैसा गदगद् भाव! वह किशोर पूजा की एक एक सामग्री बूढे के हाथ मे देता जाता और अपने को भूला-सा एक बमभोला दूसरे भोलानाथ की पूजा करता। चदन लगाकर जब वह अपनी अजली सामने लाकर बार बार कपाल से लगाता तो भक्ति का वह रूप दर्शक के हृदय को भी डुला देता। पत्थर के देवता पर उन दो हाथो का कैसा कोमल स्पर्श! अगुलियो की नोको पर कुछ ऐसा दर्द सा कि कही चोट न लग जाए!

किशोर ने अब धतूरे की माला बूढे की ओर बढा दी। बूढे ने बडे जतन से उसे शिव के माथे पर सजा दिया। धतूरे की झालर शिव के माथे के चारो ओर बिखर पडी। उस पर गेंदे की माला रखी गेंदे की माला पर फिर धतूरे की माला। फिर गेंदा फिर धतूरा। इस प्रकार नीचे से ऊपर तक चौडी से पतली एक चोटी-सी खडी हो गयी धतूरे की। जैसे गौरीशकर के शिखर पर तुषारपात हुआ। अत मे अकवन के फूलो की एक माला शिवजी के माथे पर से होती हुई दूध और पानी के कुड मे तरने लगी।

'हर हर शंकर' 'जय जय हर' की गूंज से पूजा शेष हुई।

दो पंडे दीवाल से सटे खड़े थे। उन्होंने झपट्टा-सा मारकर बूढ़े के गले से माला फेर दी, लुचक कर शिवजी के माथे से गेंदा और धतूरे के फूलों को उठा लिया चंदन कुंकुम को खुरच कर कटोरे में रक्खा हड़बड़ाते हुए ग्यारह पुजारी भीतर आ गए।

असली आरती अब होगी। ग्यारह पुजारियों की फूलों की डालियों, दूध के घड़े, पानी की कलसी पंचप्रदीप दही मिठाई आसन डमरू से सारी जगह भर गयी। ग्यारह पुजारी विश्वनाथजी को घेरकर बैठ गए। ग्यारह घड़े दूध और पानी उड़ेला। ग्यारह कटोरे ताजा चंदन और मक्खन लगाया। ग्यारह गुच्छे बेल के पत्ते और तुलसी की मंजरी चढ़ाई। ग्यारह मालाएं गले में डाल दीं। चांदी के पांच सांपों वाला मुकुट लाकर माथे पर लगा दिया। पांच सांपों के पांच फन शिवजी के माथे पर शोभा देने लगे। फन फन पर माला और मालाओं से भर गया मूंड।

ग्यारह घंटे बजाकर ग्यारह प्रदीप जलाकर ग्यारह पुजारी आरती करने लगे। कपूर की लौ जोरों से लहक उठी नाच की तानों पर हाथ और छाती की पेशियां नाचने लगीं। मंत्र-गान की सिहरन से हवा कांपने लगी। डंका बजने लगा डमरू, घंटा शिंगा बजने लगे। चांदी की थालों में तुलसी के ग्यारह पत्तों का भोग। जोरों से जय ध्वनि करके सब खड़े पड़ गए। विश्वनाथजी की संध्या आरती इस तरह समाप्त हुई।

प्रसादी माला कुंकुम चंदन मिठाई लेकर खुले रास्ते पर आ गयी। लगा, जैसे एक त्योहार एक अभिनय एक नाटक देख आयी। ब्रजरमण ने कहा 'मात्र अभिनय नहीं, अभिनय अभिनय।'

बड़ी-दी ने कहा, 'कितने जन्मों का पुण्यफल था, जभी ऐसा सर्वांग सुंदर दर्शन हुआ।'

पंडे से पूछा, 'अच्छा, पुजारियों ने तो पूजा की, लेकिन पहले जो बूढ़े से सज्जन थे, वह कौन थे ?'

— वह एक भक्त हैं। पंडों से उनका समझौता है। वह विश्वनाथजी की पूजा रोज सबसे पहले करते हैं। वह लड़का उनका पोता है।

— और वह लड़की ? वह, जो कम उम्र की, उन्नीस बीस साल की कुमारी—

खुले बाल, कपाल पर सिंदूर, पहनावे मे तसर की लाल कोर की साडी, दो बाबुओ के साथ आयी—बाप-दादा हो शायद।' साधु मा', 'साधु मा' कह करके आपके भतीजे पडे ने उसे दरवाजे के पास बिठा दिया, वह कौन थी ?'

— वह हममे से किसी को नही मालूम। बाबा का ख्याल, कितना रूप धर कर आते है वह, हम सब क्या कहे ?'

बडा अच्छा नहाने घर—सोने के कमरे के साथ लगा। नल का पानी, झकझक करता हुआ फर्श साफ काच की खिडकी—इस तरह से नहाकर विलासी मन को आराम मिलता है।

सवेरे साबुन-साडी लेकर जाने लगी कि वनी-दी ने आकर डाट बताई—'यहा क्या नहाओगी ! गगाजी चलो।'

मैंने कहा, आज रहने दो—'

— नही, आज षष्ठी है। बासती पूजा का पहला दिन। यह बात कहनी नही चाहिए कि गगा नही नहाओगी।'

उसके दूसरे दिन सप्तमी। भला सप्तमी के दिन बिना गगा नहाए चल सकता है ?—महा अष्टमी म तो गगा नहाये बिना गुजारा ही नही। ऐसी-वसी तिथि ! महाअष्टमी तिथि !'

अष्टमी के बाद नवमी। यह ऐसी वैसी नवमी नही। रामनवमी। रामचद्रजी का जन्मदिन। दिन दिन दुनिया रसातल को जा रही। धम जगत मिट रहा है किस पाप से घर-घर यह दुर्गति कौन जाने ! तुम घर की बहू हो, मेरे भाई का मगल हो चलो ऐसे दिन म पहले दो डुबकी लगा आए।

छुटकारा नही।

विध्याचल जाने की इच्छा थी। मोड पर बहुत सारी टक्सिया खडी थी। घाट जाते-आते किराया पूछती। आने जान का अस्सी रुपया मागने लगा। सवेरे ले जाएगा शाम को यहा पहुचा देगा।

कहा कुछ कम नही होगा ?'

ड्राइवर ने कहा जो बताया, कम करके ही बताया। वह भी इसलिए कि आप लोग बगाली है मैं भी बगाली हू। तिथि है इसलिये इस समय हरदम कितने ही लोग विध्याचल जा रहे हैं। आकर स्टैंड म खडे रहने की नौबत

नही आती। दर भाव की तो छोडिए, ले जाने के लिए लोग खुशामद करते हैं। अगले दो दिनो में लिये तै हुआ है। परसो चलिए। अभी जाकर भी क्या कीजिएगा? बेहद भीड है। जाने से भी देवी का दर्शन करना मुश्किल है—अदर ही नहीं जा पाएगी।'

—'हा-हा जा पाएगी' कहता हुआ बगल की टैक्सी का ड्राइवर उतर आया। बोला, वहा पडे हैं। उनको पकडिये, जरूर दर्शन करा देंगे। मैं पचहत्तर रुपये पर चलने को तैयार, चलिये।'

पहले वाला ड्राइवर बिगड गया, 'कल मैं गया। अपनी आखो देखा आया कि भीड किसका नाम है। कपडे-कुरते की खबर नही। सब पसीने पसीने। आप जाना चाहती हैं, जाए। दर्शन कर सकेंगी कि नही, नहीं कह सकता।'

भाडा और भीड को सुनकर उत्साह जाता रहा। बडी दी इतनी दूर स ही देवी को हाथ जोडकर प्रणाम कहने लगी—'अपराध क्षमा करना मा। इस बार तुम्हारे दर्शन नहीं कर सकी, मगर उम्मीद भी नही छोड रही हू। फिर खीच लेना।'

बडी-दी उगली पर गिनने लगी, काशी मे और कौन-कौन देवी-देवता बच गए। गगन महाराज ने कहा, 'शाम क समय मुझे फुरसत है। मैं साथ चलकर दुर्गाबाडी दिखा ला सकता हू। उधर जाने से और भी बहुत स मदिर देखे जा सकते हैं।'

पहले सकटमोचन' गयी। वीर हनुमान का मदिर। पहले यहा जगल था। अभी भी चारो ओर घनी झाडिया हैं। तुलसीदासजी ने यही महावीरजी का दरस पाया था, महावीरजी ने उन्ह बताया था कि कहा जाने पर श्री रामचद्र के दर्शन मिलेंगे।

गगन महाराज न कहा, 'कहावत है न, भूत के मुह म राम नाम। एक भूत ने तो तुलसीदास को इष्टदेवता के दर्शन की तरकीब बतायी। अहा, इसकी एक फिल्म बनी है। देखी है आपने? बडी सुदर है।'

'कहा जाता है प्रात कृत्य के बाद तुलसीदास लोटे के बचे पानी को एक पेड की जड में डाल देते थे। एक बार वह बीमार पड गए। तीन-चार दिनो तक घर से निकल नही सके। चगा होने के बाद उन्होने जब फिर उस पेड की जड म पानी डाला, तो एक भूत पेड पर स उतर आया। बोला, मैं यही पानी पीकर

यहा हू। इधर तीन चार दिन पानी नही मिला। बडा कष्ट हुआ। आज पानी मिला तो बडी तृप्ति हुई। मुझे बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा उपकार कर सकता हू ?'

तुलसीदास ने कहा, 'मेरी एक ही आकाक्षा है—रामजी के दशन करना। तुम मुझे उनको पाने का रास्ता बतादो।'

भूत हसा। बोला, 'यदि मुझे यही ज्ञान होता तो क्या मैं भूत बना रहता ? तुम रामभक्त हनुमान की शरण गहो, वह तुम्हे इसका उपाय बता सकेंगे। उस मदिर मे रोज नामगान होता है राम का। भीड के एक किनारे एक कोढी बैठे रहते हैं। सबसे पहले आते हैं और सबसे अत मे जाते हैं। वही महावीरजी हैं।'

तुलसीदास ने जाकर उस कोढी के पाव पकड लिये। पीब और लहू लगा बदन मगर तुलसीदास ने उसकी परवाह न की। आखिर महावीरजी नकली बाना छोडकर प्रकट हुए। कहा, 'चित्रकूट मे जाकर साधना करो उनके दशन पाओगे।'

तुलसीदास चित्रकूट चले गये। मशहूर दोहा है—

'चित्रकूट के घाट पर, भइ सतन की भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसैं तिलक देत रघुबीर॥'

'भक्तो की घर गिरस्ती अपने इष्टदेवता पर होती है। इस पर हम लोग अवाक होते हैं। लेकिन उनके लिये यह कितना सहज।'

इष्टदेव को पाने के सकट से तुलसीदास को चूकि उबार लिया था, इस लिये महावीरजी यहा सकट मोचन' हैं। भक्तशिरोमणि तुलसीदास ने रामभक्त की तपस्या करके प्रभु को पाया।

बगल मे रामचद्रजी का मदिर, छोटा सा। सकटमोचन' की ही ज्यादा प्रधानता है। गगन ? ज कहा, देखिये, भक्त के सामने भगवान यहा कितने छोटे हो गये है।

तुलसीदास की समाधि की प्रिक्रमा करते-करते दादा ने कहा, 'एक बगाल को छोडकर भारत मे और सभी जगह तुलसीदास की महिमा का प्रचार हुआ है। बगाल को निमाई ही बहा ले गये।'

'अरे, कहिए मत बगाल अगर तुलसीदास की महिमा समझता, तो क्या उसकी ऐसी दुगत होती ? वह प्रदेश तो 'हरे कृष्ण करत-करते ही मर गया।' कहकर गगन महाराज आगे बढ गये।

वष्णव व्रजरमण के मन म यह बात लग गयी । बोले महाप्रभु—'

—अजी महाप्रभु की बात छोडिये। उनकी बात और है। मैं उनके अनुयायियों की कह रहा हूं।'—कहते हुए गगन महाराज उतरकर खडे हो गय ।

बरगद का विशाल पेड । जड उमकी जान कब घिस गयी है । जटाए झूल झूलकर एक क बदले जान कितनी जडें हो गई है उमकी ।

इसी के नीचे बठकर तुलसीदास साधना किया करत थ । जटाओं म जो सबसे मोटी थी, उसक नीच स एक मुटठी मिट्टी उठाकर बडी दी ने मेरी थली म रख दी । बोली, पवित्र माटी है गलती म फक मत दना ।

वहा स पैदल ही दुर्गाबाडी गई । मदिर म मटा एक बडा ही पुराना इमली का पेड । पता नही पहल कान म कैसा था । अभी ता जम उमठी हुई मन की डोरी हो । रग्गा रग्गा म जजर हुयी जड सिकुडी डालें सूखा भूखा पेड । मदिर के लाल पत्थर की चुनाई क साथ जितना ही उस पड को दखती उतनी ही मुग नदन्दा के उस चित्र की याद आती—भूखा काल माता अन्नपूर्णा क द्वार पर खडा है । हूबहू वसा ही चित्र । इस गाछ की छाल म गाया के दो खोखनाक दात तक दिखायी पडत है ।

बरामदे की दीवाल पर कतार के कतार बदर । गगन महाराज न कहा, कहीं बदर आकर टूट पडे तो और कुछ नही हाथ फलाकर चुपचाप खडी रह जाएगी । मुट्ठी बद रहने से ही वे सोचते हैं उसम खान का कुछ है ।'

अजली म फूल थ । पूछा य बदर फूल ता पहचानत है न ?

— सो पहचानत है । —गगन महाराज न भरोसा दिया ।

सोन की दुर्गाजी । सोने की ही धूम ज्यादा है । सभी कहत है सान की दुर्गा देखी है ? चलो, साने की दुर्गा दख आए ।'

सोने के माथे पर सान का मुकुट । जगमग जगमग । तीसरे पहर की आभा गाल और ठोढी पर पडन से हसता हुआ सा भाव । प्रकाश का यह खेल बडा मजेदार है । इसी कारण मूर्ति कभी गभीर दीखती है, कभी उसम रजिश सी लगती है और कभी खुशी से झलमलाती हुई ।

उस दिन शाम को 'कालभरव' देखने गयी । ज्ञेपेश्वर महाराज न कह दिया था, 'काशी म उसी का प्रताप अधिक है । वही यह ठीक करता है कि विश्वनाथ के पास

कौन रहेगा, कौन नही रहेगा। बडा गुस्सैल है। पहले उसी के पास जाकर अपने मन के आस अरमान बताइएगा। उसे सतुष्ट रखन से ही विश्वनाथ से पटरी खाएगी।

इसीलिए उस दिन वहा गयी। सोचा था न जाने कैसी भयकर मूर्ति होगी, काले पत्थर की कुछ अजीबो गरीब-सी। जाकर देखा, गलत ही ख्याल था। सोने जैसा चमकता हुआ मुखडा, गहने-कपडा से ढका शरीर, बहुत ही सहज निडर आबहवा। आरती होन लगी। दरवाजे के पास खडी देखने लगी। भीतर पुजारी की काली पीठ के उस तरफ छाती के पास पचप्रदीप के हिल उठते ही वह जोत कालभैरव की नाक, कपाल गाल मूछ गले पर पडी। मुह जगमगा उठा, मानो पचप्रदीप की पाच शिखाए वहा लगी। अब कालभैरव का रूप निखर उठा।

ताकती रही, और सोचती रही, भय करू कि नही।

आरती के बाद सब अदर गए। पास का बडा प्रदीप रात दिन जलता रहता है—ऊपर से ढक्कन झूलता रहता है। उसी ढक्कन से लोगो ने काजल लिया। लोगो की देखा देखी मैं भी काजल लेने गयी तो कालभरव के आमने सामने हो गयी। देखा नही तो चेहरा वसा डरावना सो नही है। बल्कि हसमुख-सा भाव है। बगल के प्रदीप ने इस समय गाल पर हसी निखार दी थी।

दुर्गामदिर के अगना म जा छाया हुआ बरामदा है वह गले म रस्सी लगे बकरो से भरा था। ये कै दिन यहा अनगिनती बलि हो रही थी।

—नही मिलेगा जाओ। पर मत पकडो।'—कहकर दादा पैर झाडकर हस पडे। उन्होने देखा, एक आदमी बदर के बच्चे को गोदी मे लिए बाबू समझ कर उनका पैर पकड रहा है—भोजन चाहिए। दादा ने सोचा था, भिखमगा होगा कोई। एक काले पाठे को दबाकर यूपकाष्ठ के सामने पुजारी उसके माथे पर मत्र पढा हुआ फूल सिंदूर दे रहा था। अभी फिर एक बलि होगी।

मैं झट बाहर के दरवाजे की तरफ बढ गई। गगन महाराज ने कहा, 'या चल देने से काम नही चलेगा। साक्षी गोपाल के पास साक्षी रख जाइए कि यहा आई थी।'

देखा, हर मदिर मे एक साक्षी हैं। विश्वनाथ के भी साक्षी हैं—गणेश। हिसाब मे कोई भूल होती है तो ये गवाही देते हैं कि 'हा, ये आपके पास आये थे।'

हनीफ की मां भी कहती थी—उस दिन आयी थी। देखा, चेहरा सूखा हुआ

है। पूछा 'बात क्या है ? खाया पिया नही है ?'

वह बोली, खाए क्या ? रोज़ा चल रहा है न !'

मैंने कहा, 'अभी-अभी तो एक महीना रोजा रक्खा। ईद भी खतम। फिर रोज़ा कैसा ?'

—साखी-मबूत रखना होगा न ! मरने पर जब विचार होने लगेगा, तो अल्ला पहले मानेंगे नही। कहेंगे, नही, तुमने रोजा नही रक्खा था। वैसे म, एक महीने के रोजा के बाद य जो छह दिन रोजा रक्खा, ये गवाही देंगे। कहेंगे, नही नही हम मालूम है इसने रोजा रक्खा था। ये गवाही देंग, तब ठीक ठीक विचार होगा।'

चलते चलते पीछे छूट गयी। गगन महाराज न आवाज दी, उस दिन आपने तैलग स्वामी को देखा। अब उनके मुकाबले के भास्करानद को देखिएगा, आइए।'

वेला ढल चुकी थी। पश्चिम का सूरज सीधे भास्करानद की श्वेत पत्थर की मूर्ति पर आ पड़ा था। जसे मणिक की जोत छिटक रही हो।

दुबला शरीर। तैलग स्वामी का ठीक उलटा। नुकीली नाक।

दादा ने कहा, 'ये शायद पजाबी थे।'

जो आदमी नही है—हजार जाने के बावजूद लगता है यह रहे वह। इन सबो का ऐसा ही एक प्रभाव है।

घडी-दी न पूछा, हो क्या गया ? हस रहे हो ?

कहा, 'कल्पना करो एक दिन रास्ते मे इस गोरे आदमी ने काले तलग स्वामी को आलिंगन किया था। हाथो स लपेट कस सके थे ?'

कहानी सुनी थी। तैलग स्वामी और भास्करानद—दो जने दो छोर पर हैं। दो प्रान्त मे। दोनो के मन म जाने कसी एक समस्या उत्पन्न हुई—एक ही समय म। दोनों ही एक दूसरे से समस्या का समाधान कराने के लिए रवाना हुए। बीच रास्ते मे दोनो की भेंट। आवेगवश दोनो ने एक दूसरे का आलिंगन किया। परस्पर के स्पश से उनके मन का सशय आप ही दूर हो गया। कुछ कहना नही पड़ा—हसते-हसते दोनो अपनी-अपनी राह लौट पडे।

तलग स्वामी को भी तो आखो नही देखा। फिर भी मन मे लगता है, देखा है उन्हें। बचपन से मा-मौसी के मुह से कितनी ही कहानिया तो उनकी सुनती आ

रहो ह। सुना है वाशी व घाट म डुबकी लगाकर उसी एक ही डुबकी म वह किसी दूर प्रन्श व घाट म उठते थे जाकर। शिव के माथे पर अपकर्म करते थे। ग्रीष्म की चिलचिलाती धूप म बालू पर पडे रहते थे। जाडा म गगा म तैरते रहते थे।

गगन महाराज ने कहा सो क्या एक दो दिन ? छह छह महीने मरी भैंस की तरह चित वहन ही रहते थे पानी मे।

तीन सौ साठ वर्षों तक जीवित रहे थ वह। काशी म ही समाधि हुई। शाम के बाद देखने गई। अधेरी गली। चादनी का अदर जाने की राह नही मिलती। राह व इस किनार व घर की लबी छाया उस किनार के घर के बरामदे को परस्पर ढक दिया करती। भवे तरर कर परा पर पनी निगाह रखते हुए आगे-पीछे पाव रखती हुई पतली से पतली गली म चल रही थी। गगन महाराज ने अचानक एक झरोखा दिखाकर कहा वह देखिए तैलग स्वामी बैठे हैं।'

कहा ? —मैंने अनमनी-सी होकर गरदन घुमाई।

गगन महाराज ने कहा वही तो। पीछे छोड आइ। कोई बात नही, देखेंगे। सदर दरवाजे से अदर जाएगे। रास्ता जरा घूमना होगा। और क्या।'

सदर दरवाजे से घुसकर दो सीढी चढी, एक उतरी। चार डग बढी और दो डग फलागे। इस तरह से चौतरे पर पहुची। फश पर काले पत्थर की एक विशाल मूर्ति। सारा शरीर गरुए वस्त्र से ढका। माटी के दीए की क्षीण लौ मे रेखा मिला कर देखा। नाक मुह कपाल, ठोर—सुदर-से युवक। सदाबहार जवानी। उस सुदर मे काले मुखडे पर दो सफेद आखें चकमक कर रही थी। लगा नही कि यह पत्थर की मूर्ति है। अधकार से बदन का रग मिलाए मानो सचमुच ही तैलग स्वामी बठे है। कैसा अनोखा व्यक्तित्व। छोटी-सी मैं उनके आगे और भी छोटी हो गयी।

गगन महाराज ने हाथ बढाकर अधेर म टटोलते हुए मूर्ति के पाव छुये। मैंने भी हाथ बढाया। बठी हुई मूर्ति की जाघ से हाथ लगा। सिहर उठी। मैंने सुना है तपस्या की कठोरता से महात्माओ का शरीर पत्थर की तरह सख्त हो जाता है। लगा मैंने उसी सख्त बदन का स्पश किया।

मूर्ति के पीछे वाली माता का मदिर। यही देवी उनकी उपास्या थी। कभी इह उही के हाथ की पूजा मिली थी। सामने के छोटे से प्रागण म एक विशाल

शिवलिंग। एक पहलवान दोनो हाथो से उसे नही पहुच पाता। मैंने इतना बडा शिवलिंग पहले कभी नही देखा।

गगन महाराज ने बताया, 'इसी शिवलिंग को एक दिन गगा से निकाल कर बगल मे दबाकर ले आये थे तलग स्वामी। तब से यह यही हैं।'

एक आदमी से इतना वजन उठा लाना कैसे सभव है! शिव देवता तो हैं, मगर पत्थर भी तो हैं। तो क्या, पत्थर का कोई वजन नही है?

क्या पता, सोचने से सोच बढती है, सहज विश्वास से शात हो रही।

सकटमोचन से दुर्गावाडी, दुर्गावाडी से भास्करानद की समाधि—यह कुछ कम दूर नही। थकावट महसूस होने लगी। पत्थर के ठडे बरामदे पर धप्प से बैठ पडी।

दादा ने कहा, 'भास्करानद की भी अजीब-अजीब कहानिया हैं, मैंने उनकी जीवनी म पढी हैं। वह लोगो को दवा-दारू दिया करते थे।'

सुना है बडे बडे साधु सत बहुत बार रोगियो को जडी बूटी दिया करते है। यह भी सुना है कि उससे लोग चगे भी होते हैं। अब सवाल यह है कि यह गुण जडी बूटी का कितना है और कितना योगबल का। योगबल जो बिलकुल है ही नही, यह तो नही कहा जा सकता। कितनी ही बार तो ऐसा देखने मे आया है कि हजारो दवाओ से जिस रोग मे कोई लाभ नही हुआ, वह रोग एक जडी धुल मामूली पानी से छूट गया। इसको क्या कह?

दादा ने कहा मैंने सुना है ऐसा ही एक आदमी आकर भोलागिरि [illegible] रोने धोने लगा। उसे आखा से बिलकुल दिखाई ही नही देता था। उसी [illegible] चाहिए। भोलागिरि को उस पर दया हो आई। सामने के घेरे पर [illegible] लतराई थी। उसी को दिखाकर बोले, जा, इसी के पत्ते का रस [illegible] अपनी आखो म डाल। और, सचमुच ही उसकी आखें अच्छी [illegible] दिनो के बाद वैसा ही एक और आदमी भोलागिरि के पास आया। [illegible] से देख नही पाता था। भोलागिरि उस समय जप कर रहे थे। [illegible] इस बेचारे को नाहक ही क्यो बिठाए रक्खे हैं। लत्तर तो [illegible] के पत्ते का रस जाकर आखा म लगा। वह आदमी [illegible] था कि भोलागिरि बाहर निकले। देख कर हसे। कहा [illegible]

गगन महाराज ने कहा, 'साधु सयासी को [illegible]

एक रोग-सा हो गया है। यह आदत मैं पढ़े लिखे लोगों में भी देखता हूं। एक बार का वाकया है मेरे अपने ही साथ गुजरा। सहारनपुर में हमारे एक परिचित मित्र का मकान है। बड़े ओहदे पर हैं। उनकी मां बार-बार लिखती रहीं, बेटे, तुम एक बार हमारे यहां आओ। कितनी ही बार जाता, मगर उनसे भेंट नहीं होती। किसी काम से जाता। काम होते ही लौट आता। सुनकर उन्हें तकलीफ होती। एक बार सिर्फ उन्हीं से मिलने के लिए ही सहारनपुर गया। मेरे मित्र की मां बेहद खुश हुईं। उन्हें पता था कि मुझे खाने का बड़ा शौक है। अच्छी अच्छी चीजें बनाकर मुझे खिलाने बैठीं। मैंने खाना अभी शुरू नहीं किया था। तरकारी में कुछ चावल मिलाया ही था कि एक पंजाबी स्त्री पच्चीस छब्बीस साल की होगी, बगल के मकान की—वह आकर मेरे सामने हाथ जोड़कर जोर-जोर से रोने लगी। मैं तो बड़ी परेशानी में पड़ गया। खाने को बैठा हूं और एक औरत सामने खड़ी इस तरह से रो रही है—और मैं उसकी भाषा भी नहीं समझता। मैंने मित्र की मां से पूछा, बात क्या है? वह बोली, यह तुमसे एक दवा मांग रही है। इसके बच्चे हो-होकर जच्चाघर में ही मर जाते हैं। तुम साधु हो इसलिए खबर पाते ही दौड़ी आई है। मैंने कहा यह तो बड़ी मुसीबत है। मैं तो दवा-कवा कुछ जानता नहीं। मगर वह बहू क्या सुनने लगी? वह तो हाथ जोड़े दया की भीख मांगती रही और रोती रही। मित्र की मां ने कहा अहा, बेचारी इतना रो रही है कुछ बता दो न उसे। मैंने कहा, आखिर क्या बताऊं? झूठ-मूठ का कुछ बता देने से तो कोई लाभ नहीं होगा। मैं कोई दवा नहीं जानता, भगवान यह जानते हैं और भगवान यह भी जानते हैं कि यह स्त्री संतान के लिए आकुल है। हां मैं यह कामना कर सकता हूं कि ईश्वर इसकी मनोकामना पूर्ण करें।]

कुछ दिनों के बाद मेरे मित्र की मां ने लिखा कि उस बहू के बच्चा हुआ है और बच्चा जीवित है। अब आप इसे क्या कहेंगी? मैं तो खूब जानता हूं कि इसमें दवा या योगबल की कोई करामात नहीं है।'

दादा हंसे। बोले, लेकिन एक ऐसे महत्व का समाचार यों ही गया! किसी अखबार में छपता, तो आपकी शोहरत हो जाती।'

रास्ते में विष्णुमंदिर में प्रणाम करके जगन्नाथ मंदिर गयी। काशी में जगन्नाथजी

का यही एक मदिर है। रथ के समय यहा मेला लगता है।

गगन महाराज ने कहा, 'चलिये। अबकी जो मूर्ति दिखाऊगा, उसे देखकर डर जायेंगी।'

जगन्नाथ मदिर के पीछे ही एक और मदिर। मदिर मे छत तक ऊची नृसिंह भगवान की एक मूर्ति। अचानक देखने से सचमुच ही चौंक उठना पडता है। घुटने के पास छोटा-सा प्रह्लाद पडा है। नृसिंह भगवान का दाया हाथ उसके माथे पर पडा जैसे उस बालक के प्रति उन्हे बडी ममता हो। बाए हाथ से अभय दान। इसके सिवाय शरीर म और कही दया माया का चिह्न नही।

ब्रजरमण बोले, श्रीभगवान के इस रूप को देखकर स्वय लक्ष्मी भी डर गयी थी, उनके पास फटकने की उन्हे हिम्मत नही हुई। एक यह प्रह्लाद ही निडर होकर उनके समीप जाकर खडा हुआ था।'

हम लोगो के साथ तत्वानद स्वामी भी थे। वह बोले, 'नृसिंहदेव के तो दो ही आखें होनी चाहिये थी। यहा तो इनके कपाल पर चादी की एक और आख देख रहा हू। त्रिनेत्र मूर्ति तो मा भगवती की होती है। ये पुरुष वेष म—'

पुजारी को भी इसका जवाब नही मालूम था। वह पूजा ही करता जा रहा था। खर, नसिंहदेव तीन आखें लिए ही रह। हम अब बाहर चलकर सास लें।

पूरब ओर कोने मे दीवाल से लगा एक बडा ही अच्छा पीपल का पेट था। लाल लाल कोमल पत्तो से डालिया भरी हुई थी। लबी डठलो पर झूलते हुए पत्ते हवा मे हिल रहे थे। जैस कोमल शिशु की एक टोकरी हसी हो लाल गाल की।

साझ के धुधलके म ईटा के रास्ते स सर झुकाये कितना क्या सोचती हुई चली जा रही थी। रास्ते के दोना ओर की ढालवा जमीन पर छोटे-बडे तरह-तरह के पेडा के बगीचे। दो मातायें बच्चो को छोडकर घूघट उठाये आमने सामने बैठी बातें कर रही थीं। दोना बच्चे पैरो के अगूठो पर भार दिए खडे होकर माडे हुए कागज शून्य मे उडा रहे थे। कागज की मुडी परतो म हवा लगने से फट-सी आवाज होती और वे उमग से चीखकर—वह गया, वह गया।—खिलखिलाकर हस पडते। गोया कल्पना मे ऊपर से कुछ उतार रहे हो—आवाज से ही खुश।

नजदीक जाकर उनकी आखो मे आखें डालकर ऊपर की ओर ताका। देखा,

हरे टिकोला से पेडा का हर कोमल पल्लव छा गया है। कब कैसे मजर आए।

कू ऊ, कू ऊ।

कोलतार की सडक। रास्ते के दोनो किनारे पक्के की दालानें, बिजली के तारों से जजर ऊपर का आसमान। ऐसे म कोयल कहा बठी कूकती है ?

घूम घूम कर ताकने लगी।

वह रहा, दुतल्ले के बरामदे की टूटी हुई चिक की आड म लोहे का पिंजडा—उसी मे पूछ झुलाए बैठी कोयल बोल रही है।

काशी मे शाम को नाव की सैर का रिवाज-सा है। जो भी आते हैं एकबार नाव पर बैठ कर गगा म सैर करते हैं। आधे चद्रमा के आकार की गगा से घिरी जो काशी नगरी है, उसकी शोभा देखते हैं।

आजकल करते-करते आज तक जाने का मौका नही लगा। अब मौका भी मिला और सुविधा भी हो गयी। यहा आनदमयी मा का आश्रम है, काशी के प्राय दूसरे छोर पर। गगा पर ऊची पडी नीव पर खडा दुमजिला महल। एक तरफ एक मदिर। अभी-अभी कुछ दिन पहले आनदमयी मा ने बहुत बडा सावित्री-यज्ञ किया था, उसी की धूनी की आग अभी भी तालाबद मदिर म जल रही है। यज्ञ समाप्त होने के उपलक्ष्य म यह आग लगातार कई सालो से जल रही है। यज्ञ प्रतिष्ठा के समय आनदमयी मा ने पाच महात्माओ का वरण किया था—उन पाच मे से एक थे हरि बाबा।

प्रागण के सामने वासती प्रतिमा—बहुतो की भीड थी वहा।

गगा के किनारे की ओर एक जगह सुरग की तरह नीचे को सीढी चली गई है। बाहर ढेरो जोडे जूते पडे थे। उन्ही को देखते हुए मैं और बडी-दी भी उतर गयी।

एक विशाल कमरा। गगा से जो दीवाल ऊपर को गयी है उसी पर यह लबा कमरा। उतरते हुए ऐसा लगता है, जैसे गगा मे ही उतर आई। दीवाल छूकर जाती हुई गगा छल छल करती रहती है।

पता नही गरमियो मे यह जगह कितनी ठडी रहती है। कमरे के चारो तरफ

की दीवालो म आनदमयी मा की तसवीरें—किसी मे जूडे मे फूल की माला लगाये हाथ मे मुरली लिये कृष्ण के रूप मे, किसी मे तरह-तरह के आभूषणो से सुसज्जित राजरानी की नाईं सिंहासन पर, किसी म भाव विभोर-सी दोनो पाव पसारे ओसारे पर, कही प्रसन्न आखो से गुरुप्रिया की ओर ताकती हुई। इन सब म एक तसवीर मुझे बडी अच्छी लगी—आनदमयी मा समुद्र के किनारे टहल रही हैं, लहरो से पैर भीगते जा रहे हैं, भीग रही है साडी की लाल कोर, सर के खुले-बिखरे बाल उड रहे हैं, सहज ढग स्वाभाविक हसी—गवयी औरत जसी कस-कसा कर पहनी हुई साडी।

बडी दी ने कहा, 'यह तो हमलोगो के गाव की बहू हैं सादी सीधी अनपढ—आमतौर पर जसी होती हैं। ससुराल आयी, रसोई करने लगी तो किसी भाव म तन्मय हो गयी, बाकी काम पडे के पडे रह गये, चूल्हे पर तरकारी जलने लगी—उन्हे कोई ख्याल नही। सबने कहा, बहू पागल है। लोगो म असतोप फैला। किसके भीतर कौन-सी साधना रहती है कौन जानता है ? आखिर पूवजन्म पर क्या यो ही विश्वास करती हू ? नही तो गवयी गाव की वह बहू ऐसी कसे हो गयी कि देवघर के बालानद स्वामी के कधे पर सवार हो गई। बालानद स्वामी ने हसकर कहा 'यह बिटिया तो सिंहवाहिनी है।

एक कम उम्र की घरनी ने आकर बडी दी को प्रणाम किया। बडी दी के तो बोलती बद। अवाक होकर ताकती रही। बोली, तुम यहा ? हम लोग ता मारे सोच के मर गये। एक पूरा परिवार एकाएक लापता हो गया। चिंता का अत नही रहा। लडकिया कहा हैं ?

लडकिया भी यही हैं। उन्ही लोगो के लिये तो भाग आयी। मिन्ना ने राय दी किसी को कानोकान भी खबर न होने दो कि चली जा रही हो। फिर तो रोक लेंगे। इसीलिये एक दिन मके जाने के बहाने पाकिस्तान की सीमा पार करके काशी भाग आयी। मके या ससुराल मे किसी को बताकर आने का भरोसा नही हुआ। क्या पता, किसी को मालूम हो जाय और अत मे राह मे ही मुसीबत न डाल दें। आ तो खर गयी, पर अब गुजारे की कठिनाई हो रही है, खाए क्या, पहनें क्या ? शहर मे ही एक कमरा लेकर रह रही हू। आश्रम के स्वामी जी ने ही ठीक कर दिया। स्वय ही घूम घूम कर इसके-उसके कपडे सिल सिला देती हू, मगर ऐसे कितने दिन चलेंगे ?'

ओट मे आकर बड़ी-दी ने मुझसे कहा, 'जानती हो, यह हमारे अमुक की मौसी है। बेहद खूबसूरत दो लडकिया, कालेज म पढती थी। प्रदेश का बटवारा हो गया। गुडा के मारे इज्जत पर आन पडी। आखिर बहुत बडा काम-कारोबार छोडकर रातोरात मा-बाप दोना बेटिया को लेकर भाग निकले। और इधर हम लोग जो सोचकर मरे जा रहे हैं। इनकी हालत बडी अच्छी थी, अब देख लो, क्या दशा है?'

आनदमयी मा के घाट ही मे नाव मिल गयी। आदमी पीछे दो आना किराया। दशाश्वमेध घाट पहुचा देगा।

नाव स्रोत के उलटे चली। मल्लाह दोनो हाथो डाड खेने लगा। छप् छप् करके डाडो के साथ नाव धीरे धीरे बढने लगी। उस पार शात, स्थिर। आकाश से ढका दिगत, जैसे किसी रहस्यमयी कुहेलिका का आवरण हो। केवल राजभवन की एक तेज रोशनी काले दानव की एक आख-सी अधेरे मे जल रही थी।

माथे के ऊपर आसमान मे झुड के झुड हस उडते चले जा रहे थे। उनमे से दो एक कुछ पीछे रह गये थे, वे बोल-बोल कर अगला को सूचित कर रहे थे। पतवार के पास अकेली मैं—उनके रास्ते की ओर निगाह दौडाने लगी। रास्ता खो गया, राही खो गए।

पानी मे एक माला बहती जा रही थी। किस देवता के गले की माला, जाने कहा जाकर लगेगी।

घाट पर नहाने उतरी तो राजकुमारी ने फूल की पखडी से लगाकर अपना केश पानी मे बहा दिया। स्रोत के बहाव मे बहता हुआ वह केश देश देशातर पार करके दूसरे एक घाट मे राजकुमार की छाती से जा लगा। राजकुमार ने फूल को उठा लिया। उस एक केश ने राजकुमार को पागल कर दिया। आखिर खोजते खोजते उस केशवती राजकुमारी को ढूढ निकाला।

मैंने माला को पकडने के लिए हाथ बढाया। साझ की चमेली की माला—हिलते डोलते मेरे हाथ की पहुच के बाहर चली गयी।

गुम्-गुम् की आवाज से चौंक पडी। शहर के करीब आ पहुची। घाटो पर लोगो की भीड, आरती की ध्वनि। जीवत प्राणो से स्वय स्फुटित होनेवाली आवाज। जोरो का कोलाहल। लगा, जाने कौन-सा महाध्यान तोडकर हाट मे

आ पहुची। मा ने मानो गोदी के शिशु को धम्म से नीचे उतार दिया।

गगन महाराज न कहा, 'वह देखिये, फ्लड-लेबुल। वह जो ऊचा मदिर है, दीवार पर सफेद दाग, सन् अडतालीस म बाढ का पानी वहा तक उठ आया था। शहर डूब गया था, हमलोगा के आश्रम से नाव चलती थी। कल्पना कीजिय कि कैसी भयकर बाढ आयी थी।'

नीचे, गगा के पानी मे बडा सा एक शिवमदिर। नाटमदिर को लेकर छाती भर पानी मे करवट-सी लिये हुए है। हर क्षण ऐसा ही लगता है, अब गिरा, अब गिरा। कहा, *उसी बाढ म शायद ऐसा हो गया होगा।'*

—'अरे नही-नही, मैं तो बचपन स ही देख रहा हू यह मदिर ऐसा ही है। जिन लोगा ने हमस भी पहले देखा है, व भी यही कहते हैं।

'एक बात कही जाती है एक आदमी ने अपनी मा के नाम से मदिर बनवाकर शिवजी की प्रतिष्ठा करके कहा, इतने दिना के बाद मैं मातृ ऋण से मुक्त हुआ। इतना कहना था कि मदिर नीचे धस गया। तब से यह मदिर एक ही जैसा पडा है। उस बार उस जोर की बाढ जो आयी आते समय आपने देखा ही तो कि किनारे के और सब घाट किस बुरी तरह से टूट गये हैं अब उन्हे बालू के हजारा हजार बोरे डालकर किसी तरह से रोक रक्खा गया है—मगर यह मदिर जितना भर झुका था, उतना ही झुका रहा बाल भी इधर-उधर नही हुआ।'

'मातृ ऋण स उबार नही होता।'—कहकर व्रजरमण ने लबी उसास ली।

बडी-दी ने घाट म उतरकर आख मुह मे पानी छीटा। बोली, तुम भी पानी डाल लो। आराम मिलेगा। उम तरह से झुककर उधर क्या देख रही हो ?

कहा 'वही राख रगवाली बिल्ली।'

आज सुबह ही जब नहान आ रही थी तो देखा था, फटी साडी की नक्शादार कोर को कमर म लपेटे एक जमादारनी इस मरी बिल्ली को घसीटती हुई सामने से लिए चली जा रही थी। अभी घाट की लकडी से आकर वह अटक पडी है।

घाट पर एक दूकान म बिजली बत्ती के नीचे भीड जमी थी।

फ्रेम मे बधी दुर्गाजी की एक तसवीर। तसवीर म दूकानदार ने जाने कौन-सी

बल लगायी है कि यह टिप टिप चलती है और उसकी ताल-ताल पर दुर्गा की गरदन, हाथ की तलवार और गोर्न पर रक्खे दाए पाव का पजा हिल रहा था।

आखिर विध्याचल जाना नसीब हो गया। रास्ते म जनत फिरत गाडी पर नजर पडत ही पूछनी, विध्याचल चलोगे ? क्या लाग ?' यह एक आग्त-सी हो गयी थी जम। आज जब गगा नहाकर लौट रही थी, तो रास्ते म एक स्टशन वेगन देखा। पूछा, विध्याचल चलोग ?' एक ही बात म वह राजी हो गया। मगर पाच सवारी और एक ड्राइवर—छह स ज्यादा आदमी लेने को तयार न हुआ। बोला, 'गाडी बडी है। जा तो बहुत से आदमी सकते ह, मगर पुलिस पकडेगी तो कौन सम्हालेगा ? उसकी जिम्मदारी आप लोग लेंगे ?'

दादा न कहा, 'छोडो भी। इतनी बातो की क्या पडी है। कई जने हम, तत्वानद स्वामी और गिरिजा ब्रह्मचारी ने भी जाने की इच्छा जाहिर की थी। उनको लेने स ही काम चल जाएगा।

बडी-जी ने कहा, 'अहा, बरीशाल से जो एक ब्रह्मचारी आय हैं उन्होने भी हमलागा के साथ जाना चाहा था।'

दौडकर गयी। गीले कपडो का बरामदे पर डाल आयी। आकर गाडी म बठ गयी। वेला बढ गयी थी। सूरज माथे पर आ गया था। गरम हवा के झोके आख मुह को झुलसा रहे थे। ऊचा-नीचा रास्ता। फटी हुई गद्दी पर नाचती-नाचती-सी चली। खिडकिया के काच खड खड बजने लगे।

शहर की हलचल स बाहर बडे लोगा के बडे-बडे टूटे फूट महल बाग। किवाड, खिडकी क शीशे टूटे हुए। फूलो के पेडो से भरा सुनसान टोला। इसस भी आगे हम खुली राह पर आ निकले। दाना आर दूर दूर तक कसे खेत, किसान पकी फसल को काटकर घर ले जा रहे थे। कडी धूप की मरीचिका छाती मे लिए सूने खेत हा-हा कर रहे थे।

पुराने नीम, इमली, पीपल के पडो की छाया से ढका रास्ता। उसके भीतर से चीरती हुई गाडी चली जा रही थी।

आखों मे ऊघ आने लगी। माथे को पीछे टिका दिया, पैरा को सामने फला

दिया। एक अवश आलस से अपने को निढाल सा कर दिया।

महुआ की महक आयी मानो। महुआ फूलने लगे क्या ?

हमारे आश्रम म इन दिनो महुआ के नीचे कितनी भीड होती है! रात भर महुए पेड तले बिछे रहते हैं। भोर से पहले ही संतालिन आकर खाइचे म उन्हे चुनती हैं। टटका खाती हैं। जो बचते है उन्हे सुखा कर रख देती हैं। असमय म खाने म और मजा आता है।

लेकिन इसी बीच महुए फूलने लगे ? फिर तो लौटकर सखुआ के फूल भी नही देख पाऊगी ! वह भी इसी समय फूलता है। लौटते-लौटते फूलने और झडने का अध्याय ही खत्म हो जायेगा। जाने से पहले एक दिन साल-वीथि मे टहलते हुए देखा, एक संतालिन बास के ऊपर हसिया बाधकर चिकचक हरे पत्ते समेत भटभट करके सखुआ की डालें ताड रही थी। सूखी काठियो से पत्तो को खोस-खोस कर खाने के पत्तल बनाएगी। देखकर मैंने उसे डाट दिया, मरी, यह क्या कर रही है? कुछ ही दिनो मे फूल खिलेंगे। भला इस तरह से सामने की डालें तोडी जाती हैं ? पत्ता की जरूरत है तो अदर के उन पेडो से जाकर तोड लो।'

फूलने के दिनो साल वीथि की क्या बहार खुलती है ! फूलो की पखडियो से पेडो के नीचे बिछौना बिछ जाता है, जैसे कटे सादे ऊन की मोटी गद्दी लाल ककडियों पर पडी हो। भौरा का गुनगुन, फूलो की खुशबू हवा से झडती पखडियो का झरना—वह एक दिन का महोत्सव, मन को मतवाला करनेवाला सुर का कीर्तन।

जब लौटकर जाऊगी तो देखूगी कि सर पर कडी धूप लिए अपने को पूर्णतया लुटाकर खाली पेड खडे है, वैशाखी अधड के झोको को अपनी छाती पर सहन के लिए। लाल धूल पर सूखे पत्ता की खडखड, लौटने पर क्या सिर्फ यही पाऊगी ?

नही मधुमालती है। रास्तो के मोड मोड पर उदास मन को आकुल करेगी। आगन मे बेली के फूल हैं। हवा म मुचकुद का आमत्रण—चिंता किस बात की ?

गीली-सी हवा आख मुह मे लगी। आख खोलकर देखा, गाडी धीरे धीरे सावधानी से गगा पर से जा रही है।

लोहे के पीपों पर बधा हुआ पुल। बरसात मे हर साल खोल दिया जाता है, पानी

घट जाने पर फिर बांध दिया जाता है। उस पार मिर्जापुर शहर, उससे भी आगे विंध्याचल।

कितनी स्वच्छ गंगा। टलमल पानी। हरिद्वार के सिवा ऐसी गंगा और नहीं देखी। काशी की गंगा में आनंद दनवानवाली वह चकार नहीं है, सब कुछ को वहा ले जाने की उच्छल गति नहीं है। वह मोया म्हाशोला मा हो, सबका अपने कलेजे से लगाए हुए है—स्थिर, गंभीर।

बड़ी-दी ने कहा, 'चलो, पहले विंध्याचल की गंगा का परसें।'

कहा 'सिर्फ परसना नहीं, सर डुबाकर नहा ही लूंगी।

लेकिन अलग से कपड़ा जो साथ नहीं लायी। सो हो। इतने दिनों तक इतने घाट में नहाया, इतने लोगों का नहाना देखा, आज नहाने में उन्हीं की कोई तरकीब काम में लायी जाए।

कूद पड़ी पानी में। उफ, कितना आराम ! धूप की ज्वाला जुड़ा गयी।

बड़ी-दी ने कहा, 'बदन काहे से पोछोगी ?'

मैंने कहा, 'पोछने की जरूरत क्या है ? गरम हवा में बदन का पानी बदन में ही सूख जाएगा, देख लेना।

देखा-देखी दादा भी पानी में उतरे। वे लोग भी उतरे। बोले, 'इस गरमी में ठंडे पानी का लोभ सम्हालना मुश्किल है।'

नहाने के बाद विंध्यवासिनी देवी के दर्शन को चली—जिनके लिए इतना कुछ करके यहां आना हुआ। भीड़ का सर एक ही ओर दौड़ रहा था, लोग लौटते और रास्ते से हाँफ। रास्ते के किनारे मेला लगा है। दोनों तरफ कतारों में दुकानें। बीच का पतला रास्ता जाते जाते विंध्यवासिनी देवी के मंदिर के सामने रुक गया है। बुजुर्ग जैसे एक पंडे की शरण गही। वह हमलोगों को लेकर मंदिर में गया। ऊपर जाकर हम दीवाल के पास खड़ा करके दोनों हाथों से भीड़ को रोके रहा।

छोटा-दरवाजा। लोग सर झुकाकर अंदर जा रहे थे। मुस्तंडे पंडे स्वयंसेवक भीड़ को सम्हालने में यह उसकी गर्दन पर औंधा गिर पड़ता था। जैसे यहां पगली हवा की झुमकी चल रही हो, उसे रोके, यह मजाल किसकी ? तुमुल ताडंव, कौन किसे बचाए ? लोग पसीने से नहाकर लहू से तमतमाता हुआ चेहरा लिए बाहर निकलते। अंदर जल क्या रहा है ? सोचते हुए चौंक पड़ी। अंदर घुस कर जिंदा लौट पाऊंगी ?

घुटने मोडकर उझककर देखा, छोटी-सी कोठरी मे ठसाठस जोडा जोड पाव। काले-गोरे, सख्त नम सलवार ढके, बिछुआ झाझन वाले पाव धीरे धीरे बढते हुए पीछे हट रहे हैं, बायी तरफ को टलमला रहे हैं।

देवी के पास तक जाना तो दूर, दूर से भी लोग देवी के झाकी के दर्शन नही कर पा रहे हैं लौटे आ रहे है। किसी तरह से मदिर मे प्रवेश कर गए सतोष का यही एक सहारा।

देवी के द्वार पर यह कसी विडबना ! लोगो की इतनी आशा आकाक्षा, ऐसा अदय भी क्या ? जरा-सा दर्शन पाव छूकर जरा भक्ति जताना, इतना ही तो चाहते हैं लोग। इसमे इतनी बाधा क्यो ? दीवाल की परतो मे घेरे की यह आड क्या ?

हाय राम, कब तो हम सब कोठरी म जा पहुचे। कोठरी ही नही, कोठरी के भीतर पीतल के सीखचो से घिरी और जो एक सकरी कोठरी है विंध्यवासिनी देवी उसमे हैं। उसके सामने जाकर खडी हुयी।

साडी और फूलो से सब ढका। बडी-दी टटोलने लगी, मा के पाव कहा है ?

मूर्ति दिखाई नही पडती। सिर्फ चेहरे पर नाक की बनावट का कुछ अदाज लगाया जा सकता। यह गोया किसी मूर्तिकार की बनायी हुयी मूर्ति नही, पत्थर घिसकर आप ही प्रकट हुयी है। स्वयभूता।

जस अदर गयी थी, वसे ही बिना झमेले के निकल आयी।

बडी दी तो आनद से अधीर। बोली, री रानी किसके पुण्य के जोर से आज ऐसा हुआ ? देवी के चरण छूए और बदन पर जरा आच भी नही आयी।'

मैंने कहा 'वह मैं हरगिज नही हू बडी दी। मैं तारक भट्टाचार्य की छोटी मा हू।' तारक भट्टाचार्य की दो मा हैं। घरजमाई कुलीन बाप ने छोटी मा को ब्याहा था पहले ससुर से झगड कर दूसरे गाव म। उसी छोटी मा की एकमात्र लडकी दुली—साल पूरा होते न होते विधवा होकर लौट आयी। पडोसिन का गला पकड कर छोटी मा जार जार रोने लगी। 'दीदी जी, मेरा यह कैसा सवनाश हुआ ! दीदी दिलासा देने लगी—क्या कीजिएगा, जिसका जैसा नसीब भाग। किस्मत को कैसे टाल सकती हैं ? दुली के नसीब मे दुख लिखा है, आप क्या अपने आसू से उसे धो सकती है ? उससे तो अच्छा है अपना कलेजा मजबूत कीजिए, लडकी का ख्याल करके अपने को धीरज दीजिए। उसकी तकदीर खोटी

है कौन क्या कर सकता है ? नहीं तो यह दखिए न आप तो सफेद वाला म सिंदूर पहन रही हैं अब तक ? छोटी मा बोली मां दीदी अपने नसीब क जोर स नहीं। मेरा जन्म घोर अमावस्या के दिन हुआ ? सबने कहा, यह लड़की ब्याह की ही रात विधवा होगी। मैं तो अपनी मौत के नसीब के जोर स मांग म सिंदूर पहने हू।'

मदिर के बाहर एक आर यज्ञकुड म सात हवन जल रहे थे। आज पूर्णाहुति है। भस्मा की ढेरी मानो छोटे-मोटे मदिरो के शिखर हो जैसे। मिट्टी की हाडी खरीद कर सात हवन का भस्म लिया।

बडी-दी न कहा, गाव घर, आपद विपद म य कितने काम आते हैं।'

पास ही माटी क टील पर एक बडा-सा नीम का पेड। उसकी जड म गड बास की फुनगी पेड स ऊपर उठ गयी है उस पर लाल झडा फहरा रहा है।

पडे न कहा, 'यहा पर प्रणाम कीजिये। नवरात्री मे मा इसी झडे पर आकर रहती हैं।'

दादा न कहा 'हाय रे फिर इतनी तकलीफ उठाकर अन्दर क्या गए ? तब तो हम मा क दशन नहीं नसीब हुए।'

पडा न हस कर कहा, 'नहीं नहीं, दशन तो आपको हुए। जरा ही देर पहले दशमी पड गयी न मा मदिर म लौट गयी।

पडे स तै था कि हमे देवी के दशन करा देगा।

उसकी बात सुनकर हसते हुये दादा ने पीछे मुडकर बडी दी की ओर ताका। बडी दी तब तक उगली स नीम की जड खोदन लगी थी। वहा की थोडी-सी मिट्टी लेंगी।

ढाई मील की दूरी पर अष्टभुजा का मदिर है—पहाड के ऊपर।

विंध्याचल मे तीन देविया अधिष्ठित हैं—तीनो ने एक दूसरे से ढाई-ढाई मील की दूरी का व्यवधान रखा है। बडी-दी के भाई न देखा होता तो कहते, 'बुद्धिमती नारी।

तीन देविया—विंध्यवासिनी, अष्टभुजा, योगमाया। एक को देखने से बाकी दोनों को भी देखना पडता है, नहीं तो शायद वे कुपित होती हैं। इतना झमेला

झेलकर जब आयी हो तो फिर किन्हीं को नाराज करने से क्या लाभ ?

खड़ी सीढ़ी से ऊपर चढ़ने लगी। छाती पर दबाव-सा पड़ने लगा। रुक रुक कर, पीछे उलट कर दूर का दृश्य देखने लगी। साथियों को रोका। कहा, 'देखो, देखो, उस हरे भरे वन के छोर पर बालू के चीर को चीरती हुई टेढ़ी मेढ़ी होकर नील गंगा कैसी बह रही है। गंगा के बजाय यह जमना होती तो फबती।'

घने जंगल में ऊंचा पहाड़। उसके ऊपर देवी का मंदिर। तिथि-त्योहार पर ही लोगों की भीड़ होती है, और समय ज्यादा कौन आता है ? आबादी यहां नहीं है। आस पास कोई नजर तो नहीं आता। सुना था इस पहाड़ पर आनंदमयी मां का आश्रम है। ज्यादातर वह यहीं रहती हैं। उस ओर पहाड़ के किनारे वह जो सफेद-सा मकान दिखाई दे रहा है वहां-सा तो क्या वही उनका है ? रहने योग्य ही मनोरम स्थान है। बिना किसी बाधा विघ्न के कितनी दूर तक नजर चली जाती है। और अगर छोड़ दीजिए तो भी मन चला जाता है।

मंदिर का घंटा सुनाई पड़ा। पहुंचने में अब शायद देर नहीं। उत्साह से उछल-उछल कर सीढ़ियां चढ़ने लगी और अष्टभुजा के द्वार पर आ पहुंची। पहाड़ पर गुफा। गुफा के भीतर देवी। नीची, दबी हुयी-सी। घुप घुप अंधेरा। कमर तक झुककर, घुटना से छाती दबाए पा पा करके बढ़ती हुई गुफा के अंत तक पहुंची। सीधे खड़े होने की गुंजाइश नहीं। उसी हालत में गरदन उठायी। माटी का एक ही दीया। उसी की रोशनी में अष्टभुजा का मुंह देखा—जैसे काली रूपवती लड़की हो। भय से मां ने अपने को बड़ी सावधानी से इस काले पत्थर के कलेजे में, एक अंधेरे कोने में छिपा करके रक्खा है।

बड़ी दी बोली, 'ठीक हमलोगों की हालत, पूर्वी बंगालवाली !'

उंगली से खुरच कर पत्थर से दीप शिखा का काजल ले आयी। बाहर आकर आंखों में लगाया। आंखों में लहर सी हुयी और पानी भर आया।

अब पहाड़ के दूसरे छोर पर योगमाया रह गयी। जाने के दो ही रास्ते—एक नीचे की ओर ढालव से दूसरा पहाड़ के ऊपर ऊपर। इतनी ऊपर आ चुकी, फिर नीचे का ढालू रास्ता पकड़ूं ? चलो ऊपर वाले रास्ते से ही चलें। चल तो पड़ी, लेकिन रास्ता खत्म ही नहीं होने लगा। जा रहे हैं तो जा ही रहे हैं। प्यास से गला सूख आया। थोड़ा-सा पानी कहां मिले ? दूर पर दो एक घर दिखाई

पडे । किंही धनी लोगो ने कभी शौक से बनवाया होगा । गिरिजा ब्रह्मचारी ने कहा, पानी की हो तो मुसीबत है। पहाड पर पानी कहा से मिलेगा ? ये लोग जरूर ही नीचे गगा स पानी लात हाग ।'

पत्थरा की पगडडी पर ठोकर खायी । पड की छाह म बैठ गयी । सूखी घास खोद खोद कर उखाडती रही । फिर चलना शुरू किया । बगल मे धोए-पडे की दूकान थी । यात्री लोग यहा पीपल की छाह म बठ कर मिठाई खाते हैं, पानी पीत है, सुस्ता लेते हैं ।

दो पछाही आदमी—या तो जुडव या पीठ पर के भाई होगे—देखने मे हू-ब-हू एक स, एक ही तरह के पतल कपडे का कुरता बदन पर, खासी अच्छी तदुरस्ती लबे चौडे—बडा ही अच्छा सामजस्य । उम्र लगभग मेरी ही । पीतल के लाटे म डारी बाध कर कुए से पानी भर रहे थे ।

मैंने नजदीक जाकर पूछा, यह पानी अच्छा है ?'

पानी भरते भरते बडे ने गरदन हिलाई, 'ऊ हु, बडा खारा है ।

खारा ! तो फिर ये भर क्यो रहे हैं ? बुद्धू जैसी दोना की ओर ताकने लगी । देखा, दूसरा भाई पतली मूछा की आड म मुस्करा रहा है । थके शरीर म मजाक समझन म भी भ्रम हुआ इस पर शम आयी । पहले वाले भाई ने भर लाटा पानी भर कर कहा, 'तीरथ को आयी हैं, अगर इस कुए का पानी ही नही पीया, ता तीरथ क्या हुआ ? यह पानी सबको पीना पडता है । एसा मीठा पानी और कही नही है ।

मैंने चुल्लू बनाकर मुह के सामन किया, उसने उस चुल्लू मे पानी डाला, गट-गट करके लाटे का सारा पानी पी गयी । उसने और एक लोटा भर दिया । हाथ-मुह धोया, सर पर थोपा ।

उसने पूछा, 'आर दू ?'

कहा, 'नही । और नही ।'

पानी पीकर मैं शीतल हुयी । उसके चेहरे पर तृप्ति सी झलकी ।

तमाम रास्ता आखा से उसके चेहरे का वह भाव लगा रहा। ऐसा कैसे होता है !

फिर चलना शुरू किया । पहाड के नीचे स एक दपती ने हमलोगो का साथ पकडा था । काला, हट्टा-कट्टा प्रौढ, सुख आखें, हरे मोजे पर पप जूते पहन कर

गटागट चल रहे थे। बीमार दुबली स्त्री ताल मिलाकर चल नहीं पा रही थी—दौड़-दौड़ कर वह मेरा और बड़ी-दी का आंचल पकड़ती। कहने लगी, मैं क्या कुछ कम चल सकती थी ? कितनी अच्छी तदुरुस्ती थी !

'अब उमर भी हो गयी बावन—और फिर ।

मैंने कहा, 'ऐसी क्या उम्र हुयी ? बावन भी कोई उम्र है ? मेरी ही उम्र तो बावन है !'

बड़ी दी ने बढ़ावा दिया चलिए। लंबी लंबी डगें भर कर चलिए। आप तो अभी बच्ची हैं। मुझे नहीं देख रही हैं ? बासठ की हूं !'

उन महिला ने अच्छी तरह से एक बार हमलोगों का मुंह देखा। बोली, मगर उस लिहाज से आपलोग कितनी जवान हैं। असल में मेरे दांतों ने ही गिर कर मुझे घायल कर दिया है। अभी तो मैं अपने उनसे कहा करती हूं जिसके दांत गए, उसके सब कुछ गए।

इलाहाबाद से बंगालिन सधवा विधवाओं का एक दल आया था। आज ही रात की गाड़ी से वह सब लौट जाएगी। हम भी बंगाली हैं यह देखकर हम लोगों के साथ होकर उनलोगों ने दल को और भारी कर दिया।

बड़ी दी ने बातचीत शुरू कर दी 'आपलोग कहां की हैं ?

सामने का एक दांत टूटा सांवले रंग की एक प्रौढ़ा विधवा ने कहा 'दल में हमलोग कई जगह की हैं। वह जसोर की है यह मैमनसिंह की वह कुमिल्ला की मैं बरीशाल की।'

बड़ी-दी ने कहा, हाय हाय इस बार जो हालत हुयी है बरीशाल की। पूर्णानंद स्वामी कल वहां से आए हैं। उनकी जबानी वहां की जो कहानी सुनी—सब मटियामेट, एकाकार। कुछ भी बाकी नहीं बचा। माटी के कलेजे पर लहू की गंगा बह गयी। हम सब भी पूर्वी बंगाल की हैं क्रिया-कर्म सब वहीं, चारों ओर अपने-सगे लोग बिखरे पड़े हैं। फलां मित्र के बारे में जो सुना, रोंगटे खड़े हो गए। गुंडों ने चारों ओर से घर को घेर लिया। बचने का जब कोई उपाय नहीं रहा, तो जवान क्वांरी लड़की ने चीख कर कहा, बाबू जी, तुम मुझे इन हत्यारों के हाथ में मत पड़ने दो उससे पहले अपने हाथ से मुझे काट डालो। गुंडे अंदर पिल पड़े। बाप ने झट दाव उठाया और दोनों लड़कियों का गला काट दिया। जैसा होना चाहिए, वैसा बाप ! उन्होंने बहुत सही काम किया। वे गुंडे औरतों

के आबरू से खिलवाड कर रहे हैं। जानवरों से भी गए बीते !'

आचल से आखें पोछकर उस विधवा ने कहा, 'कुछ कहिए मत। सोने का घर, सोने की गिरस्ती। आखिर सब छोड़कर चली क्या आयी ? कुछ कम दुःख से आयी हू ?'

योगमाया का मदिर पहाड के नीचे है। सीढ़ियां से उतरकर वहाँ गयी। कैसी बीभत्स मूर्ति। लाल कपडे म लिपटा काला पत्थर, नाक नहीं, आख नहीं, है सिर्फ सिंदूर पुता दो मोटे होठो के ऊपर की ओर विशाल एक हा'। जैसे किसी विराट गह्वर का सुरंग-पथ हो। सर्वग्रासी एक भयंकर भाव। असहनीय दृश्य।

पंडों ने घेर लिया— इतना दो, उतना दो प्रणामी दो। हाथ के इशारे से बड़ी दी को दिखाकर मैं खिसक पड़ी। उन्हीं के पास जाए ये। बड़ी-दी को साहस है वह ढूंढ़ भी मा कह करके पुकारेंगी।

अब लौटें तो किस रास्ते से ? वह कालका रास्ता तो मालूम नहीं। गाड़ी अष्टभुजा के नीचे खड़ी है। दादा ने कहा, 'वहीं पहलेवाले रास्ते से ही चलो। जाना चीन्हा रास्ता दूर नहीं लगता।'

घुटना सिकुड़ आने लगा। दोनों हाथों से घुटने दबाये एक एक सीढ़ी गिनने लगी।

किसी चीन्हे हुए फूल की महक मिली। दोनों तरफ हरी हरी घनी झाडियां। फूल कहां है ? जी लगा कर सांस खींची—यह तो मेरा बड़ा ही अपना-सा है मेरे बहुत दिनों का चीन्हा-पहचाना। आखिर कौन ? फिर से उसकी महक ली। अरे हां, यह तो वही वन जूही है, जो मेरे घर के कोने में है। कितने वर्षों से उसे रक्खे हुए हूं पहचान में भूल हो सकती है भला !

कहा बड़ी-दी, वही झाड़ी वन जूही की है। छोटा छोटा तारो जैसा मिर्च के भी फूल से छोटा छोटा सादा फूलपत्ता की आड से पथिका के मन को मतवाला किये देता है।

आकर मोटर पर बैठ गयी। तत्वानंद स्वामी ने कहा, 'बड़े शुभ दिन और शुभ घड़ी में देवी के दर्शन हुए। नवरात्रि, नवमी तिथि, मंगलवार—शुभ ही शुभ।

वही रास्ता, वही घाट, वही पुल, वही खेत—सब कुछ वही। हम फिर उन्हीं

को पार करते हुए चले। नवमी की चादनी—मीठी जोत से दिग् दिगत को चमका-सी रही थी। पेडो की काली छाहो की फाको से खिल खिलाकर हसती हुयी वह रोशनी औचक ही पीछे भाग जाती। खेल मे माती हुई सी खेता मे थिरकती चल रही थी। कैसी अनोखी शोभा ! छलके हुए प्राणो को खुशी का ज्वार छू जाता। आवेश मे सपने के उस राज्य से चली जा रही थी। मोटर की भो भो भौरो के गुनगुन-सी लगती।

दिन खत्म हो आए। अब बोरिया-बसना समेटा। घर से कडी ताकीद आयी, भाग कर आए हुए घर-बारहीनो से शहर नगर भर गए है। वे सब कहा रहे, क्या खाए इसके इतजाम के लिये दादा बडी दी की मौजूदगी जरूरी है। तुरत रवाना हो जाना चाहिए।

टालना चाहते हुए भी टालने का उपाय नही। मन के अदर की दबी हुयी बेचनी उथल-पुथल मचाती रही।

दादा ने कहा, 'ऐसा मन लिये कौन से तीरथ मे घूमू ? चलो, लौट ही चलें।

बडी-दी ने कहा, 'तो एक बार दौडकर विश्वनाथजी को देख आऊ।'

मगर मात्र विश्वनाथजी ही नही—रास्ते म काली, रक्षाकाली, भद्रकाली, कात्यायनी—कोई भी नही छूटी। आज मानो सभी पुजारियो से बडी दी का नए सिरे से परिचय हुआ। घर-बार के बारे म पूछ-ताछ की, इन उन बहाना से देवी-देवताओ के द्वार पर ज्यादा समय लगाया।

आज भी विश्वनाथ के सामने उतनी ही भीड। स्नान के बाद उसी तरह स लोग, लोगा के सर के ऊपर से हाथ बढा कर विश्वनाथ के माथे पर जल डाल रहे थे। दुदुभी बज रही थी, हर-हर बम-बम की गूज। 'बाबा' पुकार का तो विराम ही नही। दफ्तर-कचहरी जाने की हडबडी, गीला अगोछा कधे पर डालकर जल्दी जल्दी मदिर का चक्कर, चारो दरवाजा पर माथा टेक कर वही पुकार—'बाबा'। भीड के भीतर से उचक झाक कर भीड मे दबे विश्वनाथजी को देख लेते—भीतर जाने का समय नही, बाहर ही दीवाल पर माथा रखकर कहन—'बाबा'। बाहर निकलते निकलते गरदन घुमा कर सोने के शिखर को देखकर

बोल उठते— 'बाबा'। जैसे तिमजिले से ऊपर से बाप को पुकार कर कह जाता हो कि 'मैं जा रहा हूं।'

फूल वाला फूल बेचने में मशगूल। दो पैसे, चार पैसे के हिसाब से रखे हुए फूल-पत्ते यात्री को थमाते हुए एक कोई फूल-पत्ता खींच लेता—ज्यादा हो गया है।

उमर के बोझ से झुकी कमर वाली एक गरीब बुढ़िया आँधी-सी घुर घुर कर रही थी। टोकरी से जो एकाध फूल-पत्ता गिर जाता वही चुन-बीन कर आंचल में रख लेती। फूल और बेल-पत्ता तो हो गया अब दो तुलसीदल मिल जाएं तो काम बने। फूलवाले के आगे हाथ फैलाते ही डांट खाती। वह हुमा में साथ से छड़ी घुमा देता।

इधर-उधर देखती हुई आगे बढ़ती गयी। बार-बार जी में आता रहा कि लौट कर दो पैसे का फूल खरीद कर बुढ़िया को दे आऊं। सोचते सोचते बुढ़िया को पीछे छोड़कर और कुछ आगे बढ़ गयी।

रास्ते के दोनों तरफ जो सजी-सजायी दूकानें थी, उनसे लकड़ी के खिलौने खरीदे, पीतल की तश्तरी खरीदी, पान में कत्था चूना लगाने का छोटा चम्मच खरीदा, पत्थर के कटोरे, मेलुलायड का टीका, काले धागे का फुंदना, जरदा, पान का मसाला। यह-वह खरीद कर झोले को भारी बनाकर लौट आयी।

गली के मोड़ पर श्रीपंडा ने रोका। बोला, 'ठहरिए। जाइए मत। आपलोगों का थोड़ा-सा काम अभी बाकी है।'—कहकर लपाक से वह दूकान के सख्ता बंधे मचान पर बैठा और झट अपने दोनों पांव आगे की ओर बढ़ा दिए।

बोला, मेरे पांव छूकर प्रणाम कीजिए। मैं अनुमति दूंगा, तब तो जाइएगा?'

कतार की कतार भिखमंगिनें, वैष्णवी, संन्यासिनी गली के दोनों ओर की दीवालों से सटी बैठी थी।

मजीरा बजाते हुए वैष्णवी ने संन्यासिनी को केहुनी की ठोकर मारी, 'चुप-चाप क्यों बैठी है, गाना गा। और उसने स्वयं शुरू कर दिया—

'रंगे चरण में स्वर्णिमनूपुर रुनझुन रुनझुन बाजे।'

दादा और बड़ी-दी प्रणाम कर चुकी। मैंने भी प्रणाम किया। श्रीपंडा ने दोनों हाथों से मेरे कंधे को दबाया। कहा, 'उठो, मत। मैं आपका तीर्थ गुरु हूं। मुझसे पूछिए—मेरी तीर्थ यात्रा पूरी हुयी ?'

बड़ा अच्छा लगा। समझे में मन बदल गया। माटी पर सर टेककर जोर से बोली, मेरी तीर्थयात्रा पूर्ण हुयी ?'

हाथ उठाकर श्रीपंडा ने कहा, 'हां, पूर्ण हुई तुम्हारी तीर्थ यात्रा। अब अपने घर लौट सकती हो।'

वही मोटा लाल कुत्ता चौरास्ते पर पड़ा पड़ा सो रहा था। रिक्शा कतराकर जाता, साइकिल बचाकर निकलती उसे, लोग लांघ जाते—उसे कोई फिक्र नहीं। आंखें मिट मिट करता हुआ जोरों से सांस खींचता।

भट्टाचार्य जी से भेंट हो गयी। बहुत बड़े पंडित हैं। मंदिर प्रतिष्ठा कराने के लिए पटना गए थे। कल लौटे हैं।

दादा ने उन्हें प्रणाम करके विदा मांगी। कहा 'जा रहे हैं। आशीर्वाद दीजिए कि उनकी कृपा पा सकें।'

भट्टाचार्य जी जाने के लिए दो डग बढ़ चुके थे। पलट कर खड़े हो गए। बोले, 'क्या कहा आपने ? कृपा ? उनकी कृपा क्या ऐसी कोई चीज है कि लड्डू की तरह उठाकर हथेली पर रख लेने से देख पाइएगा ? कृपा क्या मिली नहीं है ? आप जो इतनी जगह घूम आए, इतना कुछ देखा, जाना, कहीं बदन पर खरोंच भी नहीं लगी ? यह क्या उनकी कृपा नहीं ?'

दादा ने सर हिलाया। उनके चेहरे पर आनंद का आभास झलका। उन्होंने पंडितजी को दुबारे प्रणाम किया। बोले, 'वे कदम-कदम पर आंखों में उंगली गड़ाकर समझा देते हैं, मगर हम फिर भी नहीं समझते।'

वक्त ज्यादा नहीं था। गाड़ी लाने के लिए आदमी जा चुका था। रेल का टिकट पहले ही खरीदा जा चुका था, गाड़ी खुलने के ठीक समय पर भी स्टेशन पहुंचने से काम चल जाएगा। बड़ी-दी से मैंने कहा, 'गाड़ी पर सामान चढ़ाते-चढ़ाते मैं आ जाऊंगी। जाती हूं, दौड़कर दुर्गाप्रसाद को प्रणाम कर आती हूं।'

आते समय देख आयी थी, श्रीमा की संतान दुर्गाप्रसाद बरामदे में बैठे हैं। हूबहू गुरुदेव (रवीन्द्रनाथ) की शक्ल। ऐसा सादृश्य कम देखने को मिलता है। थोड़े से और लंबे होते तो कोई खामी ही नहीं रहती।

मोटर का भोंपू बज उठा। दुर्गाप्रसाद ने अपने दोनों हाथ मेरे सर पर रखे।

उनके चरणों की धूल लेकर गाड़ी पर आ बैठी। भोला मामा ने जाने क्या तो लाकर थोड़ा-सा मेरे हाथ में थमा दिया। गाड़ी हवा हो गयी।

मुट्ठी खोलकर देखा, एक खूबसूरत स्त्री की तसवीर वाला हिमानी स्नो के विज्ञापन का गुलाबी रंग का एक स्याह-सोख्ता, मासिक पत्रिका से काट कर ली गयी विरजानंद की एक तसवीर, और फटे लिफाफे में मुड़ा एक मगनोलिया— आज ही बगीचे में फूला था, शायद इसी लिए उसने सबकी नजर बचाकर रखा था।

आसमान में काला धुआं उड़ाती हुयी गाड़ी हुस हुस करके भाग रही थी। फिर खिड़की के पास सर पर हाथ रखकर बैठी थी। मन में सोच रही थी, सीताराम दास ने कहा था, धार में नाव छोड़ दी है, लहरों के धक्के से वह तो डोलेगी ही। हर पल। लेकिन डाड खेते हुए आगे बढ़ता जाना होगा। रुकने से नहीं चलेगा।'

देखते-ही देखते अपने प्रांत में आ पहुंची। लता के पास किसानों की बस्तियां, चरवाह बालक गायें चराते हैं। मांझी और मांझिन रोज-मजूरी की तलाश में राह पर निकलते हैं—उनके चलने की ताल पर बहंगी पर झूलता शिशु पेंगें खाता है। रोशनी की छुअन में अजय नदी का सादा बालू झिलमिल कर रहा है। बस, और थोड़ी दूर, उसके बाद ही पहुंच जाऊंगी।

हंसता हुआ अभिजित आकर सामने खड़ा होगा। अब वह बड़ा हो गया है। असबाव को जतन से सम्हालकर मां को रास्ता दिखाते हुए ले जाएगा।

याद आया सखी से पूछा था सखी, जिस हिसाब को भूलने के लिए तुम राह में निकली थीं उसे भूल सकी थी क्या ?'

'कहां भूल सकी' कह कर बड़ी ही करुण हंसी हंसकर वह गा उठी थी—

मैं भूल न देखूं, मान न देखूं।
देखूं काला शशि रे, देखूं काला शशी
आंसू से ही भर ली मैंने कलसी।